सत्यसुकृत, आदि अदली, अजर, अचिन्त, पुरुष,
मुनीन्द्र, करुणामय, कबीर, सुरति योग, संतायन,
धनी धर्मदास, चूरामणिनाम, सुदर्शन नाम,
कुलपति नाम, प्रबोध गुरुबालापीर, केवल नाम,
अमोल नाम, सुरतिसनेही नाम, हक्क नाम,
पाकनाम, प्रकट नाम, धीरज नाम,
उग्रनाम, दया नाम की वंश
ब्यालीसकी दया.

अथ श्रीबोधसागरे

द्वादशस्तरंगः

श्रीग्रन्थ निरञ्जनबोध

★

ज्ञानी वचन चौपाई

काल निरंजन निर्गुणराइ । तीन लोक जिहि फिरे दुहाई ॥
सात द्वीप पृथ्वी नौ खण्डा । सप्त पताल इक्कीस ब्रह्मांडा ॥
सहज शुन्यमें कीन्ह ठिकाना । काल निरंजन सबहीने माना ॥
ब्रह्मा विष्णु और शिव देवा । सब मिल करें कालकी सेवा ॥

चित्रगुप्त धर्म बरियारा । लिखनी लिखे सकल संसारा ॥
चौरासी लाख अरु चारों खानी । लिखनी लिखे सकल सब जानी ॥
पशु पक्षी जल थल विस्तारा । बन पर्वत जल जीव विचारा ॥
काल निरंजन सब पर छाया । पुर्ष नामको चिह्न मिटाया ॥
सत्तर युग एैसेहि चलि गयेऊ । पुर्ष शब्द एक चित्तमें ठयेऊ ॥

पुर्ष वचन

तबही पुर्ष ज्ञानी सों कहेऊ । धर्मराय अति प्रबल जो भयऊ ॥
यह तो अंश भया बरियारा । तीन लोक जीव कीन्ह अहारा ॥
नाहि मारकै देव उठाई । जग जीवनको लेहु छुडाई ॥

ज्ञानी वचन-साखी

दोहा—करि प्रणाम ज्ञानी चले, करन हंसके काज ।
जोपै काल न मानि है, तुम्हीं पुर्षको लाज ॥

चौपाई

मान सरोवर ज्ञानी आई । काल कठिन तब छेकी धाई ॥
काल कठिन गर्जे बहु बारा । मस्तिक साठ सूंड बरियारा ॥
सत्तर योजन गर्जे दंता । प्रलय जो कीन्हो कोट अनंता ॥
काल एक आँखे चौरासी । औ मुख आठ हाथ लिये फांसी ॥
छिनमें नाम नाहि पुन जानी । बोले वचन बहुत हलवानी ॥
तीन दम फाडके फेरी । यहि विधि तीन लोक किये जेरी ॥
एक दम पाताल चलाशा । तहां जाय वासुकको खावा ॥
दूसरे दम पृथ्वी चलि आई । देव ऋषि जग दैत्यन खाई ॥
तीजो दम भयो आकाशा । चन्द्र सूर्य खाये कैलासा ॥
[illegible] बेद बहुत तहां आये । शंकर ध्यान करत तब खाये ॥
तीन्हें खाय विष्णु को धाई । सकल खाय पुनि धूरि उडाई ॥
गर्जे [illegible] अगिन सम आई । तीन लोक खाई दुनियाई ॥

ज्ञानी वचन

ज्ञानी देखे दृष्टि पसारा। यातें नाहिं बचे संसारा ॥
ज्ञानी बोले शब्द बरियाई। तुहा काल खाइ दुनियाई ॥

निरञ्जन वचन–साखी

दोहा

जाहु ज्ञानी घर आपने, मानों वचन हमार।
तीन लोक पुर्षहि दिये, स्वर्ग पताल संसार।

ज्ञानी वचन–साखी

चौपाई

बोले ज्ञानी शब्द अपारा। मोकहँ दीन्हा पुर्ष टकसारा ॥

साखी

मैं जो पठयो पुर्षको, करन हंसके काज।
कालहि मार सिगार हों, दीन्ह सकल मोहे साज ॥

चौपाई

मारा काल शब्दका झारा। टूटे दन्त न करे पसारा ॥

निरञ्जन वचन

तबै निरञ्जन बोले बानी। कैसे हंस छुडाई ज्ञानी ॥
जगके माह कीन्ह हम बासा। पशु पक्षी जल थलमें आसा ॥
तीन सौ साठ पैठ हम लाई। तामें सकल जीव उरझाई ॥
जे दिनते हमने पैठ लगाई। दिन दिन उरझे सुझत नाहीं ॥
तापर काम क्रोध हम डारी। तृष्णा सकल जीवकहँ मारी ॥
इनमें जीव बन्धे सब झारी। कैसे हंसहि लेव उबारी ॥
तापर कीन्हो एक हम काजा। पाप पुण्य थापे हम राजा ॥
शुभ अरु अशुभ दोउदल साजा। ऐसे अलख निरञ्जन राजा ॥

ज्ञानी वचन

सत्त शब्द हम बोले बानी । वचन हमारे छूटे प्रानी ॥
गहे शब्द जब मन चित लाई । भाजे काल जीव लेव छुडाई ॥

काल वचन

तबै काल अस बोले बानी । सकल जीव वस हमरे ज्ञानी ॥
तीन सौ साठ पैठ उझेंग । कैसे हंसन लेव उबेरा ॥
गङ्गा जमुना सरस्वती जानी । पुष्कर गोदावरी कुछका मानी ॥
बद्री केदार हम का ठाऊं । जहां तहां हम तीर्थ लगाऊं ॥
मथुरा नगर उत्तम जो जानी । जगन्नाथ जस बैठे ध्यानी ॥
सेतुबन्ध पुन कीन्ह ठिकाना । पुष्कर क्षेत्र आय जम थाना ॥
हिंगलाज जिव जैहै सोई । कालका नगरकोठ महँ होई ॥
गढ गिरना दत्तको थाना । ताहि घेर जम बैठ निदाना ॥
कमरू माह कमिक्षा देवी । नीमखार मिसरख जम लेवी ॥
नगर अजुध्या रामहिं राजा । खैहैं दहन बांध सब साजा ॥
याही पैठ जग जीव भुलाई । किहि विधि हंस देव मुक्ताई ॥

ज्ञानी वचन

तब ज्ञानी अस बोले वानी । जमते जीव छुडावहुँ आनी ॥
पुर्ष नामको कहुँ समभाई । जमराजा तव छोड पराई ॥
घाट वाट बैठे उरझेरा । हम शब्दतें होय निवेरा ॥
सुना रे काल दुष्ट अनयाई । शब्द संग हंसा घर जाई ॥

निरञ्जन वचन

का ज्ञानी दहो अधिकारा । हमरी नहि छूठे जम जारा ॥
पांच पचीस तीन गुण आही । यह लै सकल शरीर बनाई ॥
तामें पाप पुण्यका वासा । मन बैठे ले हमरी फांसा ॥

जहां तहां सब जग भर्मावे। ज्ञान संघ कछु रहन न पावे॥
एक शब्दकी केतक आसा। हमरे हैं चौरासी फांसा॥

ज्ञानी वचन

बोले ज्ञानी शब्द बिचारी। छूटै चौरासी की धारी॥
छूटै पांच पच्चीस गुन तीनो। ऐसो शब्द पुर्ष मुहि दीन्हो॥

निरञ्जन वचन

हे ज्ञानी का करों बड़ाई। हमते नाह छूट जिव जाई॥
इतने जुग भये का तुम देखा। ज्ञानी हंस न एकै पेखा॥
का तुम करो का शब्द तुम्हारा। तीन लोक प्रलय तर डारा॥
साधु सन्त हम देखी रीती। प्रलय परे सकल सब जीता॥
कर्म रेख बांधे सब साधा। सुर नर मुनि सकलो जग बांधा॥

ज्ञानी वचन

ज्ञानी कहै काल अन्यायी। शब्द बिना तु खाय चबायी॥
अब तुम कस खैहो बटपारा। पुर्ष शब्द दीन्हीं टकसारा॥
जनके जीवत लेउँ उबारा। कर्म रेख तोरो घर न्यारा॥
पांच पचीस और गुन तीनों। इतने मोर हम लेउँ छीनो॥
पांच जनेकी मेटों आसा। पुर्ष शब्द भाषौं विश्वासा॥
शुभ अरु अशुभ काकरे निबेरा। मेटी काल सकल उरझारा॥

निरञ्जन वचन

तिगुन काल तब बोले बानी। उरझ जीव सकल जमखानी॥
कै कैसे तुम शब्द पसारो। कौनसी विधि तुम जीव उबारो॥
ऐसे जीव सकल हैं करनी। कैसे पहुँचैं पुर्षके सरनी॥
जगमें जीव क्रोध विकरारा। कैसे पहुँचैं पुर्षके द्वारा॥
क्रोधी जीव प्रेत अभिमानी। धरी है जन्म नर्कको खानी॥

लोभी होय सर्प विकरारा । कैसे पावै मोक्ष को द्वारा ॥
लोभ जन्म सूकर अवतारा । कैसे पावै मोक्ष को द्वारा ॥
विषई विषै सब विषकी खानी । ए सब कहिये जम सहदानी ॥
ज्ञानी करै करहु बरियारा । हमते कीन सकल निर्वारा ॥
जोई ज्ञान होय हमारा । काम क्रोध तें होय नियारा ॥
तृष्णा लोभहिं देय बहाई । विषै जन्म सब दूर पराई ॥
उनको ध्यान शब्द अधिकारी । काम क्रोध सब होय नियारी ॥
नाम ध्यान हंसा घर जाई । कहा दूत जस करों बड़ाई ॥
उनपै जम की परै न छाहीं । तासे हंसा लोकहिं जाई ॥

निरंजन वचन

कहैं निरंजन सुन हो ज्ञानी । कथि हों ज्ञान तुम्हारी बानी ॥
जुग्त महातम सबै बताऊँ । नाम तुम्हारे पन्थ चलाऊँ ॥
तुम तो एक पन्थ प्रकासा । हम दशपन्थ काल जुगफांसा ॥
जगके जीव सबै भर्माऊँ । ज्ञानवंत को कर्म दृढाऊँ ॥
मार जीव को करे अहारा । काम क्रोध तें होय नियारा ॥
करे कर्म विषै बस भाई । चार वर्ण ले एक मिलाई ॥
कुलको त्याग होय सों न्यारा । चार वर्णको एक विचारा ॥
ज्ञान हमारा रहे तन छाई । ते सब जीव काल ले खाई ॥
बेखबरन की करिहैं हांसी । ते जीवन पर हमारी फांसी ॥
फिर फिर आवै जमकी खानी । वे सब सग्न हमारी ज्ञानी ॥
कैसे पहुँचै पुर्षके सरनी । ज्ञान संधि हमहू दे बरनी ॥

ज्ञानी वचन

कहै ज्ञानी सुन कैल विचारा । हंस हमार होय नहिं न्यारा ॥
निसवासर रहै लौ लीना । शब्द विचार होय नहिं भीना ॥
हंस हमार शब्द अधिकारा । पुर्ष प्रताप को करे सम्हारा ॥

नाम जपै अरु सुर्त लगाई । मिले कर्म लागे नहिं घाई ॥
शब्द मान है शब्द सरूपा । निश्चै हंसा होय अनूपा ॥
उनको नाम भक्तिकी आसा । ताते निरख चलै विश्वासा ॥

निरञ्जन वचन

ज्ञानी मोर अपरबल ज्ञाना । वेद किताव भरम हम साना ॥
इनको माने सब संसारा । कलि मे गंगा मुक्ती द्वारा ॥
देहीं दान जो उतरे पारा । ऐसे सुमृत कहैं विचारा ॥
यहीं विधि जग जीव भुलाई । जग मरन सब बंध बँधाई ॥
सूतक पातक वेद विचारा । पग्छ वेदमे करहि सम्भारा ॥
एकादशी मुक्ति की भाई । जोग जग्य करवे अधिकाई ॥

ज्ञानी वचन

सुनहु काल ज्ञानका सन्धी । छोरों जीव सकलकी फंदी ॥
जब निज बीरा हंसा पावै । जोग बर्त तप सबै नसावै ॥
वेद किताबकी छोड़ आसा । हंसा करे शब्द विश्वासा ॥
ताके निकट काल नहिं आवे । निज बीरा जा सुर्त लगावे ॥
बीरा पाय भये वटपारा । शब्द सन्ध परखै बकसारा ॥
जोग बरत तपहूँ है छारा । अद्भुत नाम सदा रखवारा ॥
जेते हंस सरन हम आई । भक्ति करे तो मिटै धुआई ॥

निरञ्जन वचन

अब तुम ज्ञानी भली सुनाई । मेरो उरझो सुरझो नहिं जाई ॥
जो जीवनको भक्ति दृढ़ै ही । शब्द भेद तुम ताहि लखै ही ॥
पावै शब्द होय अभिमानी । कैसे लोकै जैहै सो प्रानी ॥
शब्द पाय नहिं करै विचारा । कैसे पहुँचे लोक तुम्हारा ॥
शब्द पाय कर कर्म जगावे । कैसे ज्ञाना निज घर पावै ॥
शब्द पाय कर चलै न राहा । ज्ञानी कहाँ मुक्ति की थाहा ॥

ज्ञानी वचन

तब ज्ञानी बोले मुख बानी । सुनिये काल निरञ्जन आनी ॥
हंसा भक्ति जो करे हमारो । राखों सदा शब्द निज धारो ॥
काम क्रोध अहङ्कार बिकारा । इनको तजे है हंस हमारा ॥
शब्द हमार छांडे फन्दा । पहुँचे लोक मिटै जमदन्दा ॥
बीरा नाम पुर्ष को सारा । निर्मल हंस होय उजियारा ॥
आवागवन बहुरि नहिं होई । काल फांस तज न्यारा होई ॥
पहुँचे हंस पुर्ष दर्बारा । अरे काल तोको तज डारा ॥

निरञ्जन वचन

निरंजन बोले गर्भ सों भाई । मोर फंद टारे को जाई ॥
कर्म जंजीर बँधा संसारा । जो पुन हम जगजाल पसारा ॥
तीन लोग जो इन औतारा । आवागमनमें फिर फिर पारा ॥
उपजे विनसै रहे भुलाई । देव ऋर्षी मुनि सकल जो खाई ॥
सिद्ध साधु अरु बडे जो ज्ञानी । बांध बांध कर तोपि समानी ॥
कर्म रेख ते कोई न न्यारा । तीन देव सुर असुर पसारा ॥

ज्ञानी वचन

कहै ज्ञानी सुन काल लबारा । करिहौं टूक जञ्जीर तुम्हारा ॥
हंसन लैहौं तुर्त उबारी । पुर्ष शब्द दीन्हों मोहे भारी ॥
ताहि हुक्म सों मारों तोही । सब संसार तू खाया द्रोही ॥
खण्ड खण्ड कर तोरों बाना । मारों काल करो पिसमाना ॥
हंसन की मैं करों मुक्ताई । बहुरन जन्महि भौजल आई ॥
पुर्ष हंस नोतम है अंशा । ते जग प्रकट कहावै वंशा ॥
तिनके सरन हंस जो आई । कोट कर्म सब देयँ बहाई ॥
हंस संधि लखि होवें न्यारा । चलतै पावे नहिं बटपारा ॥

निरञ्जन वचन

मानों ज्ञानी वचन तुम्हारा । हंस ले जाव पुर्ष दर्बारा ॥
चौदह काल जगतमें म्हारे । घाट बाट बैठे रखवारे ॥
सुर नर मुनि आवें वहि घाटा । दशहि और जो जोवे बाटा ॥
दुर्ग जगाती बड़ा सिरदारा । विना जगात कोइ उतरन पारा॥
भोजन नदी घाट नहिं थाहू । उतरन काज कहे सब काहू ॥

ज्ञानी वचन

कहैं ज्ञानी सुन काल सुभाऊ । हमरे हंस की बात सुनाऊ ॥
बखतर ज्ञान शब्द हथियारा । मार दूत को चले अगारा ॥
कोट सिद्ध तेज है हंसा । जब परवाना आवे बंसा ॥
बंस छाप जब पावहिं प्राणी । ताहि न रोकै दुर्गा रानी ॥
कहा काल तुम करो विचारा । हंस हमार उतरि है पारा ॥
सार शब्द है हंस बहोरी । ता चढ़ि जायकाल मुखतोरी ॥
संधि न पावे ते बटपारा । हंसा पहुँचे लोक दुवारा ॥

निरंजन वचन

तुमको काल निरंजन राई । हे ज्ञानी का करो बड़ाई ॥
पांव पताल शीश अकाशा । सोरह योजन अग्निप्रकाशा ॥
गर्जे काल महा विकरारा । सत्रह लाख लो पांव पसारा ॥
लपके जीभ जिमि टूटे तारा । जस बिजली चमके अँधियारा ॥
सूँड़ बढ़ाय दंत अति बाढ़ा । मध्य घेर ज्ञानी कह ठाढ़ा ॥
हमरे पौरुष हम बरियारा । तुम ज्ञानी का करो हमारा ॥

ज्ञानी वचन

ज्ञानी पुर्ष शब्द कियो जोरा । पकड़ सूँढ़ दांत गहि मोरा ॥
मारेउ शब्द पांव कर पेली । तोर सूँढ़ समुद्र गहि मेली ॥
पुर्षरूप तबही पुन धारा । जौन सरूप काल औतारा ॥

निरञ्जन वचन

भया अधीन दोइकर जोरी । तुम सतपुरुष सरन हम तोरी॥
तुमसों बाल बुद्धि हम धारा । अब तुम करहु मोहिं उद्धारा ॥
बालक कोटि भांति गरियावत । मात पिता मन एक नहिं आवत॥
तुमहीं पुर्ष दीन मोहे राजू । औ पुनदीन्हसकलमोहिंसाजू ॥
तिहिं पर हमने गाउं बसावा । लीन्हे सुन्न ठिकान बनावा ॥
तहां हम साहब जाय रहाई । बिन आज्ञा कछु नाहिं कराई ॥
अबलग साहब मैं नहिं चीन्हा । सत्त पुर्ष तुम दर्शन दीन्हा ॥
दोइ कर जोरि चरणचितलावा । धन्य भाग हम दर्शन पावा ॥
अब मोहिं साहब भेद बताई । पाऊं चिह्न हंस पहुँचाई ॥

ज्ञानी वचन

सुन रे काल निरंजन राई । पुर्ष नाम है बीरा भाई ॥
जो हंसा चित भक्ति समोई । ताको खूट गहे मत कोई ॥

साखी

जो निज बीरा पाय है, आवै लोग हमार ।
ताको खूण्ट गहो मत, सुनो काल बटपार ॥

निरञ्जन वचन

चौपाई

सुनो गुसांई विनती मोरी । बीरा पाय करै कछु औरी ॥
ज्ञान कथै अन्त चित वासा । आवागमनकी राखों आसा ॥

ज्ञानी वचन

सुनी निरंजन वचन हमारा । नहीं सत्त वह जीव तुम्हारा ॥

साखी

जा घरते जिव आइया, ताह सुध गई खोय ।
गोहराय कहों मैं जीवसों, जो शब्द पारखी होय ॥

निरंजन वचन

चौपाई

कहै काल तुम भली विचारी । संप देख हम कांध उतारी ॥
उनके निकट दूत नहिं आई । साहब हंस देहों पहुँचाई ॥

साखी

साहिब सबको एक है, साहिबका कोइ एक ॥
लाखन मध्ये को गिने, कोटिन मध्ये देख ॥

ज्ञानी वचन साखी

जाहु काल घर आपने, शब्द कहौं चितलाहु ॥
जो फिर सीस उठाय हो, बांध रसातल जाहु ॥

चौपाई

जो पुन गह्यो हंसकी बांही । बांध रसातल पठाऊँ तोही ॥

निरंजन वचन

जब तुम रूप दिखावा मोहा । तब हम पुरुष चीन्हा तोही ॥
प्रथमें ज्ञानी हम नहिं जाना । बन्धु जान कान्हा अभिमाना ॥

ज्ञानी वचन

धर्मदास तब सों हम आये । गढ़ रैदास मो धारा पाये ॥
प्रथमहि सतयुग लागा भाई । नृप हरचन्द्र भये तहां राई ॥
तहां जाय शब्द गुहराई । जो चीन्हा सो लोक पठाई ॥
सतयुग सत्त नाम मोरो नाऊं । देही धर हम मनुष्य कहाऊं ॥

धर्मदाससों वचन

धर्मदास सुनि टेके पाई । तुव प्रताप सकल सुधि आई ॥
काल चरित्र सकल हम जाना । पुर्ष लीला सबही पहँचाना ॥
जब आपुन आये भौमाहीं । हंस काज जो भयो अब भाई॥

इति श्री कबीर साहिब और निरंजनकी गोष्ठी समाप्त

सत्यपुरुषाय नमः

अथ श्रीबोधसागरे

त्रयोदशस्तरंगः

ग्रन्थ ज्ञानबोध

*

कबीर वचन

साखी-सत गुरु जीव प्रबोधके, नाम लखावे सार।
सार शब्द जो कोई गहे, सोई उतरि है पार॥

चौपाई

भौसागर है अगम अपारा। तामें बूड गया संसारा॥
पार लगन को सब कोइ धावे। बिना नाम कोइ पार न पावे॥
यह जग जीव थाह नहिं पावे। बिना सतगुरु सब गोता खावे॥
जग जीवों से कहो गुहराई। सतगुरु केवट पार लगाई॥
यह जग बूड गयो मँझधारा। सतगुरु भक्त भये भवपारा॥
सत्तनाम जो करे पुकारा। जब भव जल उतरेंगे पारा॥
सत्तपुरुष है अगम अपारा। ताको सब मैं कहों विचारा॥
आदि अनाम ब्रह्म है न्यारा। निराधार महँ कियो पसारा॥
ताहि पुरुष सुमरो रे भाई। तन छोड जिवलोक सिधाई॥
कहै कबीर नाम गह सोई। भरम छोड़ भव पारहिं होई॥

साखी

आदिब्रह्म हिय परखिय, छोड़ो भरम अजान।
कहें कबीर जग जीवसे, गहिले पद निरवान॥

सोरठा

भवसागरको पार, विना नाम उतरै नहीं।
गहिलेव नाम अपार, कहँ कबीर सब जीवसे॥

चौपाई

कहैं कबीर सुनो धर्मदासा। आदि नाम मैं कहौं सब पासा॥
यहि जगसे मैं कहा चिताई। अज्ञानी नहिं माने भाई॥
जौन जीव को ज्ञान न होई। कहे वचन माने नहिं सोई॥
और कहे जुलहा मति हीना। ब्रह्मा विष्णु शिवराम न चीन्हा॥
ऐसे भक्त न देखे भाई। ब्रह्मा विष्णु शिवहिं बिसराई॥
जिन्दा हर का मरम न पाई। जुलहा भक्ति न जाने भाई॥
ब्रह्मा विष्णु शिव जग उपजाई। इन तीनोंकी यह दुनियाई॥
रावन छली रामकी नारी। रामचन्द्र कीन्हा रण भारी॥
हर सीताको रावण लाये। राम लंकपति चिह्न मिटाये॥
कहांलों वरणों वार न पारा। तीन देवका सकल पसारा॥

साखी–रामचन्द्र वर्णन करूं, त्रयलोकी हैं नाथ।
जग जिव कहँ समझायके, सुनिये जुलहा बात॥

चौपाई

ऐसे सब जग कहँ गुहराई। धर्मदास मैं तुम्हैं सुनाई॥
आदि नाम मैं भाख सुनाई। यह जग जीव न चेता भाई॥
आदि नाम सबको दरसाया। जग जीवों को ज्ञान सुनाया॥
यह जुलहाको भेद न पाये। अज्ञानी क्यों रार मचाये॥
आदि नामकी सुधि बिसराये। मायामें सब जग लपटाये॥
सच्चा साहिबको नहिं पाये। रामकृष्ण जग ध्यान लगाये॥
ऐसे भूल गये संसारा। कैसे उतरें भव जल पारा॥
कहैं कबीर गहो निज नामा। जब पहुँचे अमरापुर गामा॥

साहब पै जग धरे न ध्याना । तिहुँ पुर काल ठगो हम जाना ॥
सब कोइ नाम गहो रे भाई । छोड़ो दुरंगति और चतुराई ॥
भरम जाल मनही ना लाओ । सत्तपुरुषमें ध्यान लगावो ॥
दुनियामें भरमो मति हीना । जम घर जायँगे नाम विहीना ॥
यही मता हम जगहि लखाये । धर्मदास विरले जिव पाये ॥

साखी—कहैं कबीर जनगायके, सुनो जगत यह ज्ञान ॥
नीचे त्रयलोकी रहत, ऊपर सतगुरु नाम ॥

कहैं कबीर सुनो धर्मदासा । जग जीवोंकी कथा प्रकाशा ॥
आदि नाम हम भाख सुनाया । मूरख जीव मरम नहिं पाया ॥
राम वरन जग कीन्हा भाई । तुम सुनियो मैं देऊँ बताई ॥
जगत कहै जुलहा अज्ञानी । हरिहरका कछु भेद न जानी ॥
नीच जात और भक्त कहाई । हरि के दरस कबहुं ना पाई ॥
वेद पुराण गीता हम जाना । हमसे नाहक करे बखाना ॥
हमरो वेद कहे निज बाता । रामचंद्र समरथ है दाता ॥
चार वेद ब्रह्माने ठाना । जुलहा भूल गया अभिमाना ॥
ब्रह्मा विष्णु शिवसे और न देवा । ऋषि मुनि करें सबै मिल सेवा ॥
ले अवतार जीव जग आये । शालग्राममें सुर्त लगाये ॥
ब्रह्मा विष्णु शिवहि जग धाये । जुलहा उलटा ज्ञान चलाये ॥
वेद शास्त्र में हमने जाना । ब्रह्मा विष्णु महेश्वर माना ॥
सार वेदमें देखा भाई । रजगुण तमगुण सतगुण सांई ॥
गीता भागवत पुस्तक नाना । निशिदिन जाप करें भगवाना ॥
आदि भवानी तीनों देवा । इनकी सब मिल साधे सेवा ॥
ऐसा ज्ञान हमारा होई । जुलहा कहा न मानो कोई ॥

साखी—तीन देव निजके गहे, राखे देवी आस ।
सोइ जीव सुख भोग हैं, हंसा करै विलास ॥

चौपाई

ऐसे जग जिव ज्ञान चलाई । धर्मदास तोहि कथा सुनाई ॥
यही जगत की उलटी रीती । नाम न जाने कालसों प्रीती ॥
वेद रीति सुनियो धर्मदासा । मैं सब भाख कहों तुम पासा ॥
वेद पुरान में नामहि भाषा । वेद लिखा जानों तुम साखा ॥
छऊ शास्त्र मिलि झगरा कीन्हा । ब्रह्मरूप काहू नहिं चीन्हा ॥
चीन्हो है जो दूसर होई । भर्म विवाद करें सब कोई ॥
मूल नाम ना काहू पाये । साखा पत्र गह जग लपटाये ॥
डार पत्रको जो कोई धरही । निश्चय जाय नरकमें परही ॥
भूले लोग कहैं हम पावा । मूल वस्तु विन जन्म गमावा॥
जीव अभागि मूल नहिं जाने । डार पत्र में पुरुष बखाने ॥
पढ़े पुराण औ वेद बखाने । सत्त पुरुष जगभेद न जाने ॥
वेद पढ़े औ भेद न जाने । नाहक यह जग झगड़ा ठाने ॥
वेद पुराण यह करे पुकारा । सबहीसे इक पुरुष नियारा ॥
ताहि न यह जग जाने भाई । तीन देवमें ध्यान लगाई ॥
तीन देव की करहीं भक्ती । जिनकी कभी न होवे मुक्ती ॥
तीन देवका अजब खयाला । देवी देव प्रपंची काला ॥
इनमें मत भटको अज्ञानी । काल झपट पकड़ेगा प्राणी ॥
तीन देव पुरुष गम्य ना पाई । जगके जीव सब फिरे भुलाई ॥
जो कोइ सत्त पुरुष गये भाई । जा कहँ देख डरे जमराई ॥
ऐसा सबसे कहियो भाई । जग जीवोंका भरम नशाई ॥

साखी-रूप देख भरमो नहीं, कहैं कबीर विचार ।
अलख पुरुष हृदये लखे, सोइ उतरि है पार ॥

चौपाई-जो जो वस्तु दृष्टिमें आई । सोई सबहि काल धर खाई ॥
मूरति पूजै मुक्त न होई । नाहक जन्म अकारथ खोई ॥

यह जग करै मूर्तिकी पूजा । करै गर्व हमसे नहिं दूजा ॥
पण्डित भक्त भये जग माहीं । पाथर पूजत जन्म गमाहीं ॥
ऐसे भक्त भये अधिकाई । पीतरकी निज मूर्ति बनाई ॥
इनसे भक्त और नहिं कोई । जिन अपनी दुरमति नहिं खोई ॥
आदि ब्रह्मको भेद न पाये । पढ़ पढ़ पंडित जग भरमाये ॥
अन्तकाल जम घेरे आई । तब विद्या कछुकाम न आई ॥
पाथर पूजें पढ़े पुराना । पढ़ गुण अर्थ विवेकहि ज्ञाना ॥
ज्ञान कथे है वार न पारा । सतगुरु भक्त न जान लबारा ॥
ऐसा मत ब्राह्मणने धारा । जले जात हैं यमके द्वारा ॥
आदि नाम भूलो मत भाई । असुर अंश दुरमतहि लखाई ॥
धर्मदास देखो जग रीती । सांचा छोड़ झूठसों प्रीती ॥

साखी

सार शब्द ना जान है, कहैं कबीर बखान ।
यह जग भूले बावरे, गहे न सतगुर मान ॥
ब्राह्मण भूले बावरे, सरगुण मतके जोर ।
लख चौरासी भोगिहैं, पारब्रह्मके चोर ॥

सरगुण माहिं सार नहिं कोई । निरगुण नाम नियारा होई ॥
निर्गुणसे सरगुण है भाई । सरगुणमें यह जग लपटाई ॥
रजगुण सतगुणतमगुणकहिये । सब मिटजाय ज्ञान जो लहिये ॥
तीनों गुण से सरगुण होई । चौथा पद निरगुण है सोई ॥
निर्गुण नाथ निरंजन राई । निज उत्पत्ति बनाके खाई ॥
ताके परे इक नाम नियारा । सो साहब हैं मूल अपारा ॥

उन्हें जगत नहिं जाने भाई। काल अंश राखे भरमाई ॥
ब्रह्मा विष्णु शिवहि जग झाँके। सत्य कबीर नाम रस छाँके ॥
नाम अमल रस चाखे कोई। ताको जग मग्न ना होई ॥
सतगुरु भक्ति करे जो कोई। जाति वर्ण दुरमति सब खोई ॥
आदि नामको नित गुणगावे। भवसागर में बहुरि न आवे ॥
आदि नामको गहे जो आसा। सतगुरु काटे काल कि फांसा ॥
आदिनाम है गुप्त अमोला। धर्मदास मैं तुमसे खोला ॥
गुप्त मता पावे जो कोई। गेही तज बैरागी होई ॥
आदि नाम गुप्त संसारा। जो पावै जग मे हो न्यारा ॥
धर्मदास यह जग बौराना। कोइ न जाने पद निरवाना ॥
यहि कारन मैं कथा पसारा। जगमे कहियो नाम नियारा ॥
यही ज्ञान जग जीव सुनाओ। सब जीवोंका भरम नशाओ ॥
अब मैं तुमसे कहों चिताई। त्रयदेवनकी उतपति भाई ॥
साहब कीन्ह इक अजब तमाशा। सो सब कहुँ मैं तुम्हरे पासा ॥
कछु संक्षेप कहों गुहराई। सब संशय तुम्हरे मिट जाई ॥
भरम गये जग वेद पुराना। आदि नामका भेद न जाना ॥
राम राम सब जगत बखाने। आदि नाम कोइ विरला जाने ॥
राजाराम सबको यह जग जाने। तुम से ताको भेद बखाने ॥
ज्ञानी सुन सो हिरदै लगाई। मूरख सुने सो गम्य न पाई ॥
मा अष्टंगी पिता निरंजन। वे जम दारुण वंशन अंजन ॥
पहिले कीन्ह निरंजन राई। पीछेसे माया उपजाई ॥
मायारूप देख अति शोभा। देव निरंजन तन मन लोभा ॥
कामदेव धर्मराय सताये। देवी को तुरतइ धर खाये ॥
पट से देवी करी पुकारी। साहब मोहे करो उबारी ॥
टेर सुनो सतगुरु तहँ आये। अष्टंगी को बंद छुड़ाये ॥

धर्मराय को हिकमत दीन्हा । नख गेखासे भगकर लीन्हा ॥
धर्मराय करें भोग विलासा । मायाको सु रही तब आसा ॥
धर्मराय अरु माया माजे । तीन लोक तासे उपराजे ॥
तीन पुत्र अष्टंगी जाये । ब्रह्मा विष्णु शिव नाम धराये ॥
तीन देव विस्तार चलाये । इनमें यह जग धोखा खाये ॥
पुरुष गम्य कैसे के पावै । काल निरंजन जग भरमावै ॥
तीन लोक अपने सुत दीन्हा । सुन्न निरंजन बासा लीन्हा ॥
अलख निरंजन सुन्न ठिकाना । ब्रह्मा विष्णु शिव भेद न जाना ॥
तीन दव सो उनको धावें । निरञ्जनको वे पार न पावें ॥
अलख निरञ्जन बड़ बटपारा । तीन लोक जिव कीन्ह अहारा ॥
ब्रह्मा विष्णु शिव नहीं बचाये । सकल खाय पुन धूर उड़ाये ॥
तिनके सुत हैं तीनै देवा । आंधर जीव करत हैं सेवा ॥
रामहिं रूप धरी है माया । जिन लंकाको गाय सताया ॥
दश औतार माया ने धरिया । काल अपर्बल सबको छलिया ॥
काल पुरुष काहू नहिं चीन्हां । काल पाय सबही गह लीन्हां ॥
एसा राम सकल जग जाने । आदि ब्रह्मको ना पहिचाने ॥
तीनों देव असुर औतारा । ताको भजे सकल संसारा ॥
तीनों गुणका यह विस्तारा । धर्मदास मैं कहों पुकारा ॥

साखी

गुण तीनों की भक्ति में भूल परो संसार ।
कहँ कबीर निज नाम विन, कैसे उतरे पार ॥

सोरठा

जगजिव है अज्ञान, आदि नाम नहिं जानहीं ।
मायामें लपटान, जीव जमपुरी जावहीं ॥

चौपाई

ऐसा राम कबीर न जाना । धर्मदास सुनियो दै काना ॥
सुन्न के परे पुरुष को धामा । तहँ साहब है आदि अनामा ॥
ताहि धाम सब जीवका दाता । मैं सबसों कहता निज बाता ॥
कहत अगोचर सब के पारा । आदि अनादि पुरुष है न्यारा ॥
आदि ब्रह्म इक पुरुष अकेला । ताके सग नहीं कोइ चेला ॥
ताहि न जाने यह संसारा । बिना नाम है जमके चारा ॥
नाम बिना यह जग अरुझाना । नाम गहे सो संतसुजाना ॥
सच्चा साहब भजु रे भाई । यहि जगसे तुम कहो चिताई ॥
धोखा में जिव जन्म गँवाई । झूठी लगन लगाये भाई ॥
ऐसा जग से कहु समझाई । धमदास जिव बोधो जाई ॥
सज्जन जिव आवै तुम पासा । जिन्हें देव सतलोकहि बासा ॥
ज्ञानहीनके सुन षट करमा । धर्मदास उनके ये धरमा ॥
भरग गये वे भव जलमाहीं । आदि नाम को जानत नाहीं ॥
पीतर पाथर पूजन लागे । आदि नाम घटही से त्यागे ॥
तीरथ बर्त करे संसारे । नेम धरम असनान सकारे ॥
भेष बनाय विभूति रमाये । घर घर भिक्षा मांगन आये ॥
जग जीवनको दीक्षा देहीं । सत्तनाम विन पुरुषहि द्रोही ॥
ज्ञान हीन जो गुरू कहावै । आपन भूला जगत भुलावै ॥
काम क्रोध मद लोभ विकारा । इन्हैं न त्यागे साध बिचारा ॥
ऐमा ज्ञान चलाया भाई । सत साहबकी सुध बिसराई ॥
यह दुनियां दो रंगी भाई । जिव गह शरण असुरकी जाई ॥
तीरथ व्रत तप पुन्य कमाई । यह जम जाल तहाँ ठहराई ॥
यहै जगत ऐसा अरुझाई । नाम बिना बूडी दुनियाई ॥
जो कोइ भक्त हमारा होई । जात वरण को त्यागे सोई ॥

तीरथ व्रत सब देय बहाई । सतगुरु चरणसे ध्यान लगाई ॥
काम क्रोध मद लोभ न तेही । सोई पावै परम सनेही ॥
मनहीं बांध स्थिर जो करही । सो हंसा भवसागर तरही ॥
भक्त होय सतगुरुका पूरा । रहै पुरुष के नित्त हजूरा ॥
यही जो रीति साधकी भाई । सार युक्ति मैं कहु गुहराई ॥
साखी-सत्तनाम निज मूल है, यह कबीर समझाय ॥
दोई दीन खोजत फिरें, परम पुरुष नहिं पाय ॥

सोरठा

सत्तनाम गुण गाव, गहै नाम सेवा करै ।
सहज परम पद पाव, सतगुरु पद विश्वास दृढ ॥

चौपाई

पाथर पूज हिंदु भुलाना । मुरदा पूज भूले तुरकाना ॥
कहैं कबीर ये दोउ भुलाना । आदि पुरुष कोई नहिं जाना ॥
हिन्दू तुर्क दोई उपदेशा । नाम गहै मिटि काल कलेशा ॥
भवसागर कोइ पार न पावे । या जग में सब गोता खावे ॥
भव दरयाव है अगम अपारा । पुरुष भक्त उतरेंगे पारा ॥
धर्मदास जग कहो समझाई । आदि नाम बिन मुक्ति न पाई ॥
जो जन भजि हैं निर्भयनामा । सो हंसा पहुँचै निज धामा ॥
अजर नाम ले लोकहि जाई । दुष्ट काल तब रहै मुरझाई ॥
कर्मत्याग सब भजो यकनामा । कभी न हो भवसागर धामा ॥
ब्रह्माने जो राह चलाई । सो सब कहों मैं तुमसे गाई ॥
चार वरण अरु वेद बखाना । जगके जीव सबही उरझाना ॥
जात पांत ब्रह्मा कर दीन्हा । सबमें ऊँच ब्राह्मणको दीन्हा ॥
ब्रह्मा अपने मते चलाये । तीनों गुण जग नाम लखाये ॥
आदि नामकी सुध नहिं पाये । चारों जुग धोखाहि गुमाये ॥

यह ब्रह्मा की है करतूती । जगहि लखाये झूठी रीती ॥
ब्रह्माने यह जग भरमाया । सत्त पुरुषका भेद न पाया ॥
तिहुँपुर कालके जाल पसारा । तामें अटके सब संसारा ॥
जात पांत कोइ भेद न चीन्हा । मिथ्या राह जगहि गह लीन्हा ॥
ब्राह्मण प्रभुकी भक्ति न जाने । ब्रह्म रूप नाहीं पहचाने ॥
सार शब्द ब्राह्मण नहीं जाने । आदि नाम शूद्रही बखाने ॥
ब्राह्मण धरे शूद्र औतारा । करे मुक्ति तिहुँ पुरसे न्यारा ॥
धन्य शूद्र जो सेवा करई । आदि नामको हियमें धरई ॥
जाति वनरमें भेद बताऊँ । जो कोइ समझे ताह लखाऊँ ॥
जाति बरण सब एकहि होई । दूसर जाति नहीं है कोई ॥
दूसर कर्म जाति है भाई । कर्म करे सो नाम धराई ॥
जैसो कर्म करे जो भाई । तैसी ताकी जात बनाई ॥
चार बरण सब एकहि जानो । दूसरे कर्म जो जात बखानो ॥
जाति बरणका चिह्न न कोई । कैसे जाति दूसरी होई ॥
दूसरि जाति कोई विधि माने । जग अज्ञात भेद न जाने ॥
जाति पांति होके नहि आये । यह जगमें झगड़ा फैलाये ॥
जाति पांति नाहीं कोई न्यारी । एक जाति है सब संसारी ॥
भगके द्वार जीव सब आये । जन्म मरनमें बहुरि समाये ॥
राह एक आये संसारा । कौन ज्ञानसे भये नियारा ॥
एकइ घरसे सब जिव आये । एक बाप एक माता जाये ॥
ऊँच नीच सब सम कर जाना । ऊँच नीच सब झूँठ बखाना ॥
डार जनेऊ ब्राह्मण कहलायें । ब्राह्मणिको कहो का पहिरायें ॥
सुनत करा मुसलमानहि कीन्हा । तुर्कानीको का कर दीन्हा ॥
ना हिन्दू ना तुर्क कहाये । ज्ञान हीन जिव धोखा खाये ॥
जात बरन मिथ्या कर जानो । सत्त कहे निश्चय कर मानो ॥

यह जग आंधर जानो भाई । नाम न जाने ऊँच कहाई ॥
ऊँच वही जो नामहि जानें । विना नाम सब नीच कहानें ॥
ना कोउ वर्ण नहीं कोउ भेषा । शब्द सरूपी जैहै देशा ॥
सब मिल भक्ति करो रे भाई । सतगुरु मुखसे यह फरमाई ॥
यह सतगुरुका ज्ञान है भाई । जो कोइ लखे सो लोक सिधाई ॥
जात वर्ण हम भाख सुनाई । धर्मदास जगसे कहो जाई ॥
ऐसा तुम जग जान लखवो । सत्तलोकमें जिव पहुँचावो ॥

साखी–यह जग त्रयगुण भक्तमें, भूल परे धर्मदास ॥
नाम गहे विश्वास करि, जाय पुरुषके पास ॥
माना कहा कबीरकी, सबको यहै पुकार ।
भरम जाल सब त्यागदे, गहले नाम अपार ॥

सोरठा

जिन सब नाम अधार विना नाम भव ना तरे ।
जाय काल दर्बार, सत्तपुरुष जो ना गहे ॥

चौपाई

कहै कबीर सुनो धर्मदासा । अब निज भेद कहों तुम पासा ॥
अकह हतो पुनि कहा बखानी । उत्पति प्रलय हती मम वाणी ॥
आदि न अंत हती नहि माया । उत्पति प्रलय हती न काया ॥
सोहं ब्रह्म न नहि ओङ्कारा । काल निरंजन नहि औतारा ॥
दश आतारन चौवीस रूपा । तब नहि होता ज्योति स्वरूपा ॥
जब नहि चंद्रलोक दीपविस्तारा । तब नहि सुकृत करचो संसारा ॥
जब नहि लोक चंद्र सूर्य अरु तारा । तब नहि तीनों गुण औतारा ॥
वहां नहीं है दिन अरु राती । ऊच न नीच जात ना पांती ॥
नाहीं सुख पवन नहि पानी । समरथ गति काहू नहि जानी ॥
आदि ब्रह्म नहिं करे पसारा । आप अकह तब हता नियारा ॥

है अनाम अक्षर के माहीं । निहअक्षर कोइ जानत नाहीं ॥
अमर लोक जहँ अम्मर काया । अकाल पुरुष जहँ आप रहाया ॥
धर्मदास जहँ वाम हमारा । काल अकाल न पावे पारा ॥
निरभय घर वोही है भाई । रोग न व्यापे काल न खाई ॥
समरथ घर हैं पैले पारा । सबके ऊपर है निरधारा ॥
जिनकी गम्य काल नहिं पाई । तीन देवकी कौन चलाई ॥
मन माया काल गति नाहीं । जीव सहाय बसै तेहि ठाहीं ॥
ऐसा है वह देश हमारा । जहांसे हम आये संसारा ॥
ताकी भक्ति करे जो कोई । भवते छूटै जन्म न होई ॥
वहां जाय जीव करे विलासा । अमरलोक जिवका नहि नासा ॥
कहैं कबीर सुनो धर्मदासा । आदिनाम मैं कहा तुम पासा ॥
जो कोई माने कहा तु हारा । निरभय जाय पुरुषके द्वारा ॥
मूरख सतगुरु मरम न पावे । भवसागरमें भटका खावे ॥
सार युक्ति मै तुम्हें लखाया । गन मुनि काहु भेद न पाया ॥
भाषा ग्रंथ ज्ञान उपदेशा । तुम अपने घट करो प्रवेशा ॥

साखी-अस सुख हैं हमरे घरे, कहँ कबीर समझाय ।
सत्त शब्द तो कोई गहे, अस्थिर बैठे जाय ॥

सोरठा

चौथे पद निरवान, पूरे गुरुसे पाइये ।
कहे कबीर बखान, सत्त मान सतगुरु सही ॥

चौपाई

और सुनो गुरुमु का लेखा । भक्त होय सो करै विवेका ॥
जो कोई पान परवाना पावै । ताके निकट काल नहिं जावै ॥
पान परवाना पावै भाई । नाम गहे अरु भरम नशाई ॥
तन मन से गुरु सेवा लाई । गुरुसे देव और नहिं भाई ॥
गुरु से कपट शिष्य जो राखे । जमराजाके मुदगर चाखे ॥

सोई हंस काल घर जावे। सत्त लोकमें वास न पावे॥
निरभय घर कबहूं ना पावै। कोट जन्मतिहिकालसतावै॥
भक्ति कर पूजत हैं जो देवा। निश्चय जाय कालकी सेवा॥
मनुष्य तन वे कभी न पावैं। लख चौरासी भटका खावैं॥
जैसे कर्म करे संसारा। तस भुगते चौरासी धारा॥
ना गुरू ना निगुरा पंथी। कहा कयो बांचैसे ग्रंथी॥

साखी–भक्ति करें भरमत फिरे, जग छोड़ नहिं सोय।
कहैं कबीर धर्मदास से, जिनका तरन न होय॥

सोरठा

करनी देय वहाय, आदि नाम कह जानके।
ता महँ रहै समाय, भरम जाल सब छांड दे॥

धर्मदास वचन

चौपाई

धर्मदास तब कहे करजोरी। स्वामी सुनिये विनती मोरी॥
हो स्वामी मैं बूझो तोहीं। करके कृपा बताइये मोहीं॥
हो अविनाशी ब्रह्म कहाये। यह जगमें तुम कैसे आये॥
यह सब भेद बताइय स्वामी। तुम सब घटके अंतर्यामी॥
सकल चरित तुम मोहि बतावो। मैं जाते जगजीव चितावो॥
यह जग तब पतियावे सांई। चारों जुग तुम कहां रहाई॥

साखी–सो अब मोहिं बतावहू, तुम गुरु अगम अपार।
धर्मदास विनती करे, सुनियो हो करतार॥

कबीर वचन चौपाई

कहै कबीर सुनो धर्मदासा। अब यह भेद कहों तुम पासा॥
वेद पुराण शास्त्र जग ठाना। भूले जीव न पांय ठिकाना॥

तीन लोक जिव काल सतावै । ब्रह्मा विष्णू पार न पावै ॥
सत्त पुरुष तब मोहिं पठावा । जीव उबारन मैं जग आवा ॥
यहि कारण आयो संसारा । जगके जीव मैं करों उबारा ॥
जग जीवनको नाम लखावैं । पकड़ हंस सतलोक पठावैं ॥
हम हैं सत्तलोकके बासी । दास कहाय प्रगट भये कासी ॥
ना कोइ वर्ण नहीं कोइ भेशा । सत्त पुरुषके थे हम देशा ॥
तहँकी रचना अद्भुत भाई । सो मैंने तोहि पहिले सुनाइ ॥
और तोहि मैं कहुँ समझाई । धर्मदास सुन चित्त लगाई ॥
धरी देह भवसागर आये । धर्मदास तोहि नाम सुनाये ॥
कलियुगमें काशी चल आये । जब हमरे तुम दरशन पाये ॥
तब हम नाम कबीर धराये । काल देख तब रह मुरझाये ॥
जो कोइ हमको चीन्हा भाई । जिनका काल धोक मिट जाई ॥
देह नहीं अरु दरसै देही । जग ना चीन्हे पुरुष विदेही ॥
नहीं बाप ना माता जाये । अब गतिहीसे हम चल आये ॥
हते विदेह देह धर आये । जग जीवोंके बन्द छुड़ाये ॥
नाम गहे तेहि लोक पठाये । बिना नाम जिव कालहि खाये ॥
गुप्त रहे नाहीं लख पावा । सो मैं जगमें आन चितावा ॥
चारों जुग भवसागर आये । आदि नाम जग टेर सुनाये ॥
नाम सुने शरणागत आवें । तिनहीकी हम बंद छुडावें ॥
जीव प्रबोध लोक पहुँचावें । काल निरंजन देख डरावें ॥
चारों जगके चारों नामा । माया रहित रहै तिहि ठामा ॥
सतजुग सत्त सुकृत कहलाये । त्रेता नाम मुनींद धराये ॥
द्वापरमें करुनामय कहाये । कलियुग नाम कबीर रखाये ॥
आदि नाम चारों जुग टेरा । सज्जन जीव सुनतही दौरा ॥
जो जो जीव शरणमें आये । तिनको हमने नाम सुनाये ॥

आदि नाम जो नित गुन गावें । कर विश्वास अमर पद पावें ॥
जो कोइ सतगुरु नामको धावें । तिनको साहब पार लगावें ॥
पार होय जो माया त्यागे । जन्म मरनको संशय भागे ॥
माया त्याग वैरागी होई । अजर अमरको पावै सोई ॥

धर्मदास वचन

कह धर्मदास सुनो प्रभु राई । भक्त भाव मोहि देव बताई ॥

कबीर वचन

भक्तोंकी यह कथा पसारा । धर्मदास सुनियो चित्त धारा ॥
जगमें भक्त भये अधिकारी । जोगी सन्यासी लट धारी ॥
शीव गोरख अरु बहु ब्रह्मचारी । मायाने सबको ठगडारी ॥
इनको ठग जब हमपर धाई । गुप्त नाम हम टेर सुनाई ॥
लोट गइ माया बहुवारी । रहे जीत माया गइ हारी ॥
माया जल है कठिण अपारा । तासे गन मुनि बैठे हारा ॥
माया जाल परो मत भाई । धर्मदास जग कहो गुहराई ॥
भवसागर है भक्त बहुतेरा । जिनको तुमसे कहो निबेरा ॥
मौनी भये मुखहु नहि बोलें । भेष बनाये घर घर डोलें ॥
अंगहि भस्म गले बिच माला । मढिया बैठ सुने मतवाला ॥
धूनि रमाय गुरिया सरकावे । गगन चढ़ाय के जग भरमावें ॥
कान फाड़ शिर जटा बढ़ाये । माथे चन्दन तिलक लगाये ॥
वस्त्र रँगा जोगी बन आये । सतगुरु मिले न भेष बनाये ॥
बहुँत करें जप तप रे भाई । आदि नाम कोई नहि पाई ॥
पाहन सेवें भक्त कहावे । चन्दन तेल सिंदूर चढ़ावे ॥
मानुष जन्म बड़े तप होई । नाम बिना झूठे तन खोई ॥
साधु युक्ति अस चाल बताऊँ । धर्मदास मैं तुम्हें लखाऊँ ॥
काम क्रोध लोभ अहँकारा । सोई साधु जिन इतने मारा ॥
सूखा फीका करे अहारा । निशिदिन सुमरे नाम हमारा ॥

तत्व प्रकृति और बल माया । इनहि जीत तब साधु कहाया ॥
अन्त कपट सब देय बहाई । क्षमा गङ्गमें बैठ नहाई ॥
हार जीत और अभिमाना । इनसों रहित साधुको ज्ञाना ॥
बिहँसत बदन भजनको आगर । शीतल दया प्रेम सुखसागर ॥
सब षट कर्म छोड़ अज्ञाना । धर ले केवल निर्गुन ध्याना ॥
धन्य धन्य जग साधु है सोई । जिन अपनी दुरमति सब खोई ॥
ऐसी रहन साधुकी भाई । जब हंसा निरभय पद पाई ॥
यह भक्तोंकी कथा सुनाई । निरभय पद कोइ बिरले पाई ॥
साधू लक्षण तुम्हें सुनाया । गन मुनि काहू भेद न पाया ॥
आदि नामको नित गुनगावो । सोवत जागत ना बिसरावो ॥
सत साहिब है सबसे न्यारा । ताहि जपे होवे भव पारा ॥
भक्त अनेक भये जग माहीं । जोग करै पै युक्ति न पाहीं ॥
जोगहि युक्तिनाम बिन नाहीं । झूठी माया आन लगाहीं ॥
नामहि गहै तेहि निहसंसा । नाम बिना बूड़े सब हंसा ॥
नाम निरक्षर सुधि जब पावा । कालअपबॅलनिकट न आवा ॥
माया त्याग भजो निज नामा । तब जिव जाय पुरुषके धामा ॥
सबसे कहो पुकार पुकारी । कोइ न माने नर अरु नारी ॥
सत्य पुरुषकी युक्ति न पाई । ऊदय धरे नहि सत्य को भाई ॥
शिव गोरख सोइ पार न पावे । और जीवकी कौन चलावे ॥
कहें कबीर सुनो मम बानी । जोग युक्ति मैं कहों बखानी ॥
अब गेहीका सुनो बिचारा । धर्मदास मैं कहों पुकारा ॥
गेही भक्त करे जो कोई । अब मैं तुमसे भाखों सोई ॥
गेही भक्ति सत्त गुरुकी करई । आदि नाम निज हृदमें धरई ॥
गुरु चरननसे ध्यान लगावै । अन्त कपट गुरुसे ना लागै ॥

गुरु सेवामें फल सब आवै । गुरू विमुख नर पार न पावे ॥
गुरू वचन निश्चय कर मानै । पूरे गुरुकी सेवा ठाने ॥
बिन विश्वास भक्ति परकाशा । प्रीति बिना नहिं दुविधा नाशा ॥
मीन मांस मद निकट न जाई । अंकुर भक्ष सो सदा कराई ॥
गुरुसे शिष्य करे चतुराई । सेवा हीन नर्कमें जाई ॥
परधन पाहन समझे भाई । झूठ वचन हृदये नहिं लाई ॥
पर तिरिया माता सम माने । झूठ छोड़ सत्यहिको जाने ॥
जीवपै दया करे रे भाई । बुरे कर्म सब देय बिहाई ॥
हृदये दया प्रीति ना होई । सतगुरु सपने मिले न सोई ॥
नाम नेह गुरु सुते लगावे । आदि नामको पल पल ध्यावे ॥
लेवै पान मुक्ति सहदानी । जाते काल न रोकै आनी ॥

साखी–पुरुष नाम निशिदिन गहो, शब्द करो परतीत ।
अंक नाम निज पाइया, जाहो भवजल जीत ॥

सोरठा

भर्म तजे यम जाल, सत्तनाम लौ लावई ।
चले संतकी चाल, परमार्थ चित दे गहे ॥

चौपाई

गेही भक्त आरती आने । प्रति पूनोकी आरति ठाने ॥
अमावस आरती नहिं होई । ताहि भवन रह काल समोई ॥
पाख दिवस नहिं होवे साजू । प्रति पूनो कर आरति काजू ॥
पूनो पान लीन्ह धर्मदासा । पावे शिष्य होट सुखबासा ॥
छटे मास नहिं आरति भेवा । साल माह गुरु चौका सेवा ॥
नाम कबीर जपै लौलाई । तुम्हरा नाम कहे गुहराई ॥
ऐसी रहनि गेहि जो धरि हैं । गुरु प्रताप दोइं निस्तरि हैं ॥

साखी-सो भव पार उतारि है, केवटसे कर प्रीत।
जब सतगुरु केवट मिले, जैहै भव जल जीत॥
सोरठा-काल जीव धर खाय, सत्तनाम जाने विना।
बचि है एक उपाय, सत्त कबीर कह भव तरे॥

चौपाई

सत्त कबीर गुरू धर्मदासा। जीव पठे है पुरुष के पासा॥
सत गुरु सत्त कबीरहि आहीं। गुप्त रहे जग चीन्हत नाहीं॥
सतगुरु आप जगत पग धारे। दासा तन धर शब्द पुकारे॥
काल निरंजन सब पर छाया। आदि नामका चिह्न मिटाया॥
धर अवतार असुर संहारा। जिव जाने यह धनी हमारा॥
एही धोख नर्क सब जाहीं। जिव अचेत छल चीन्हें नाहीं॥
नर्क बास नहिं छूटै भाई। जो सतगुरु को चीन्हे नाहीं॥
ब्रह्मा विष्णु शिवसे नहिं देवा। जिन्ह बैकुण्ठवास नहिं देवा॥
ऐसा काल अपरबल भाई। जिहिके छल जग चीन्हे नाई॥
जगमें जीव घात बहुतेरे। करे घात अरु पाप घनेरे॥
दुष्ट अन्याई करजिवकी घाता। खेल शिकार माने मन माता॥
जीव मार तन करत अहारा। जीव दया नहिं करत गँवारा॥
जीवघाती खो बहुत दुख पावे। जन्मजन्म तिथि काल सतावे॥
काग देह धर विष्ठा खाहीं। जन्म अनेक भ्रमे जगमाहीं॥
जीव दया विन मुक्ति न पावें। मीन मांस मद राक्षस खावें॥
धर्मदास यह जग बौराई। दुष्ट जीवकी कथा सुनाई॥
जीव कष्ट मोहिं सहा न जाई। ज्ञान हीन नर जीव सताई॥
यहि कारन हम जगमें आये। तीन लोक जम लूटत पाये॥
पहले लूटे विष्णु मुरारी। फिर लूटे शंकर लटधारी॥

गनमुनि लूटे तपसी झारी । अरु लूटे सगले संसारी ॥
चन्द्र सूर्य तारागण सोई । कहैं कबीर बचा नहिं कोई ॥
देखो यही काल की रीती । धर्म न परखो रीति अनीती ॥
ऐसा काल कठिन बरियारा । बचे सोइ जो नाम पुकारा ॥
काल रीति मैं तोहिं सुनाई । धर्मदास जिव बांधा जाई ॥

साखी—कहैं कबीर धर्मदास सों, तुम सुनियो चितलाय ।
काल भेद ना जानहीं मूरख रहे भुलाय ॥

सोरठा—तजो काल बरयार, जीव दया चितमें करो ।
उतरो भव जल पार, आदि नाम हृदय गहो ॥
सुनो संत मति धीर, कहो ज्ञान परखो हिये ।
काल अपरबल बीर, हृदये विवेकं दृढ ॥

चौपाई

आदि नाम है अजर शरीरा । तनमनसे गह सत्त कबीरा ॥
जोई गहे धर्मदास कबीरा । सो पावे सुख सागर तीरा ॥
काया वीर नाम है धीरू । सब घट रहे समायक बीरू ॥
निजही शब्द कबीर है सारा । जाका है निज सकल पसारा ॥
एकै रूप शब्द पुर एका । एक भाव दुतिया नहिं देखा ॥
कैसे दुतिया कहिये सोई । दुतिया भर्म मिटै सब कोई ॥
एकहि हम तुम एक शरीरा । एक शब्द है मतिके धीरा ॥
दूसर भाव नहीं है आसा । सोई कबीर सोई धर्मदासा ॥
एक रूप एकै अनुहारी । एकहि पुरुष सकल निस्तारी ॥
आदि नाम मैं भाख सुनाओ । नाम गहै जब मुक्ती पाओ ॥
जो कोइ आदि नामको चीन्हा । तासो काल भयो बलहीना ॥

साखी—आदि नाम है मुक्तिका, जप जाने जो कोय ।
कोटि जाप संसारमें, तासे मुक्ति न होय ॥

सोरठा-बूझ लेहु हो हंस, आदि नाम निज सार है।
अमर होय ते वंश, जिन जानो निज नामको ॥
और मन्त्र सब छार, आदि नाम निज मंत्र है।
बूड़ मरा संसार, कह कबीर निजनाम बिन ॥

चौपाई

कहे कबीर सुनो धर्मदासू। चार गुरूकी कथा प्रकासू ॥
चार गुरू संसारहि कीन्हां। जिनके हा जिवमुक्ती दीन्हां ॥
वे हंसन को लोक पठाये। भवसागर जिव बहुरि न आये॥
सार शब्द साहब का न्यारा। सोई शब्द कहँ गुरू उचारा ॥
सार शब्द काल नहिं पाई। तीन देवकी कौन चलाई ॥
शब्द सङ्ग हंसा घर जाई। काल अपरबल देख डराई ॥
सार शब्द मैं तुमको दीन्हा। काल तुम्हारे रहे अधीना ॥
धर्मदास तुम मतिके धीरा। तुमको दीन्हा मुक्तिका बीरा ॥
तुमते जीव उतरि है पारा। सौंप दीन्ह तोहि जगको भारा॥
सतजुग शिष्यसहतेजी कहाये। द्वापर चतुर्भुज नाम सुनाये ॥
त्रेता शिष्य बंकेजी भाई। कलियुगमें धर्मदास गुसाई ॥
चार गुरु भवसागर माहीं। धर्मदास वे जिव मुक्ताहीं ॥
यह मैं तुमसे कहों समझाई। सब संशय तुम्हरे मिट जाई ॥
वंस ब्यालिस तुम्हारे सारा। और सकल सब झूठ पसारा ॥
इनहीं सौंप देव जिव भारा। सब जीवनको करे उबारा ॥
धर्मदास तुम पुरुषके अंशा। अब हमको कछु नाहीं संशा ॥
होय पंथ भव सागर सारा। तुम्हरे वंश सब जीव उबारा ॥
ब्यालिस वंशराज लिख दीन्हां। अटल राज भवसागर कीन्हां ॥
धर्मदास मैं कहों बिचारी। यहि विधि निबहे सब संसारी॥

साखी-नाम भेद जो जानहीं, सोई वंश हमार।
नातर दुनिया बहुत है, बूड़ मरा संसार ॥

सोरठा-जैसे भव जल जीत, सार शब्द जो जानहीं।
कठिन काल विपरीत, नातो जम ले जायगा ॥

धर्मदास वचन

चौपाई

धर्मदास तब विन्ती लाई। अब मैं पंथ करो गुन गाई ॥
अमरलोकके हो गुरु वासी। कारन कौन आये अविनाशी॥
मृत्युलोक आये केहि काजा। धर्मराय पापी बड़ राजा ॥

साहब कबीरका वचन

धर्मदास तुम सुनियो भाई। जीवन काज पुरुष पठवाई ॥
सक्त पुरुष सतलोकके वासी। सकल हंसके लिये अविनाशी॥
पुरुषदरश कोइ बहुरि न पावै। तीन लोकमें आन रहावै ॥
तीन लोक सब परले होई। अमरलोक सुखदायक सोई ॥
जीवकाज जगमें हम आये। धर्मरायसे जीव छुड़ाये ॥
आदि अनाम अमोल अपारा। अकह अगोचर सबसे न्यारा ॥
तहांसे हम आये संसारा। पहुँचे काशी नगर मँझारा ॥
सत्त सत्त हम करें पुकारा। भवसागरके जीव उबारा ॥
नाम सुने जो मो लग धाये। जिनको हमने पार लगाये ॥
समझे सुने जो वाचा मेरी। काटूँ ताकी कर्मकी बेरी ॥
भगकी राह नहीं हम आये। जन्म मरन ना बहुरि समाये ॥
त्रिगुण पांच ताव हम नाहीं। इच्छारूप देह हम आहीं ॥

साखी-पांच तत्त्व गुन तीन नहिं, तामें सकल शरीर।
सब कोइ हृदये चीन्हियो, सतगुरु पुरुष कबीर ॥

चौपाई

हम जमके शिर मर्दन हारा। जो कोइ गहे सो उतरे पारा ॥
जहँ हम रहें काल तहँ नाहीं। हंसन हम सुखदायक आहीं ॥

जो साहब सतलोक रहाई। तिनको सब कोई चीन्हो भाई॥
नाम बिना दुखि तीनों देवा। जिनकी गन गंधर्व करैं सेवा॥
जगके देव सब काल अधीना। बचे सोई जो नामको चीन्हा॥
हम बल एक शब्दका भाई। ताही बल हंसा मुक्ताई॥
जहाँ नाम काल गति नाहीं। बिना नाम है कालकी छांई॥
ज्ञान हीन जाने नहिं भाई। जीव कै सँग मन काल रहाई॥
जीव के संग कालको वासा। अज्ञानी जन गहे विश्वासा॥
मनको कहो न कीजे कोई। मन जिवको भरमावे सोई॥
कहै कबीर मन जात गँवारी। मनको कहो न करो नर नारी॥
मनको कहो जो कर है भाई। भवसागरमें देय बहाई॥
मन चंचल सो काल है भाई। मनको त्यागे निरमल हो जाई॥
मनके रूप समानी माया। सब संसार व्याप्त यह छाया॥
मन थिरकर परमातम जाना। यहि विधि तत्त्व लेय पहिचाना॥
काल जाल ते तेही छूटे। काल विचारा ताहि न लूटे॥
यही भेद धर्म सुन लीजे। शब्द माहिं तुम बासा कीजे॥
काल ज्ञान संसार बखाना। काल स्वरूप नहीं पहिचाना॥
काल चरित्र तुमसे कहो भाई। यही भेद कोई नहिं पाई॥
काया माया झूठी जानो। झूठा सकल पसारा मानो॥
झूठो नाम साहबको नाहीं। बूझ लेव अपने हिय माहीं॥

साखी-काल पाय जग ऊपजो, काल पाय सब धाय।
कालपाय सब विनसही, काल काल कह खाय॥

सोरठा-धर्मदास लेव जान, सुन्य सरूपी मनहि है।
वचन कबीर प्रमान, रूप रेख मनको नहीं॥

चौपाई

परम पुरुष नाम गहो भाई। ताते हंसा लोक सिधाई॥
आदि नाम है जिव रखवारा। उनको सब कोई करो पुकारा॥

अमर लोक साहबका न्यारा । जहाँ पुरुष का है दरबारा ॥
आदि पुरुष जहँ आप अकेला । धर्मराय नहिं मन के मेला ॥
अंधकार जहँ कबहुँ न होई । सदा जोति अमरापुर सोई ॥
आदि पुरुष जहँ काल न जाई । तीन देव की कौन चलाई ॥
आदि नाम जो ध्यान लगाई । तब हंसा सत लोकहि पाई ॥
ऐसा लोक साहबका भाई । जहँ हंसा सुख सदा रहाई ॥
तादि लोकमें जो कोइ जावे । भवसागरमें बहुरि न आवै ॥
धर्म राय से तिन का टूटे । जन्म मरण को संशय छूटे ॥
विरले जीव निःसंशय होई । दृढ परतीत नाम गहें सोई ॥
अगम भेद मैं तुम्हें बताया । काल निरञ्जन गम्य न पाया ॥
जगके जीव प्रबोधो भाई । पुरुष शरण जब हंसा जाई ॥
जीवहि बोधो सब संसारा । पकड़ हंस फेंको पैले पारा ॥
भवसागरसे जीव उबारो । जन्म मरण जिव संशय टारो ॥
जीव मुक्त मैं तुमको दीन्हा । पुरुष भक्ति है नामको चीन्हा ॥
सार युक्ति मैं तुमसे कहिया । कहन सुननको अब नहिं रहिया ॥

धर्मदास वचन-चौपाई

धर्मदास विनवे कर जोरी । सतगुरु सुनिये बिनती मोरी ॥
निरगुन नाम लखे नहिं कोई । सरगुनमें जग भरमें सोई ॥
अज्ञानी जिव कहा न माने । आदि नामको भेद न जाने ॥
यह सब भेद कहो प्रभुराई । कैसे जीव प्रबोधों जाई ॥

साहिब कबीर वचन-चौपाई

कहैं कबीर सुनो धर्मदासा । अब मैं भेद कहों तुम पासा ॥
सज्जन जन जो होवै भाई । तुम्हरे शरन दौरके आई ॥
तन मन तुमसे ध्यान लगाई । ताको नाम सुनइयो भाई ॥
जब देखहु तुम दृढता ज्ञाना । तबही देय पान परवाना ॥

निरभय ज्ञान कहो जिवपासा । जो कोइ होय तुम्हारा दासा ॥
मूरखके तुम पास न जइयो । बचन हमारो हियमें गहियो ॥
मूरख ज्ञान कहो मत भाई । नाहक ज्ञान गांठको जाई ॥
दुरमति मन जाही कर भाई । तासे राखो भेद छिपाई ॥
ज्ञानी जनको नाम सुनावो । परम पुरुषसों हृदय चिन्हाओ॥

साखी-मूरखसे ना खोलिहो कहैं कबीर विचार ।
ज्ञानीसे न दुरायहो, सुनो सत्त मतसार ॥

चौपाई

अलख नाम घट भीतर देखो । हृदये माहीं करो विवेको ॥
घट घट राम बसे हैं भाई । विना ज्ञान नहिं देत दिखाई ॥
अनुभव ज्ञान प्रगट जब होई । आतमराम चीन्ह है सोई ॥
आतमराम चीन्ह जब पावा । सकल पसारा मेट बहावा ॥
हिये नयनसे देखो भाई । जब तुमको वह राम दिखाई ॥
सब घट व्यापक सबसे न्यारा । सोई राम है जीव मँझारा ॥
अकह नाम कहा नहिं जाई । घट घट व्याप्त निरंतर आई ॥
आतमराम देख जिव पाई । आप आप सब ठांव समाई ॥
जहँ देखा तहँ आप समाना । ब्रह्म छोड़ दूसर नहिं आना ॥
यही मता हम तुमकह दीन्हा । दूसर कोउ न पावै चीन्हा ॥
ऐसा ज्ञान लखाओ भाई । जो नहि मान काल तिहि खाई ॥

साखी-अजर पुरुष एकै रहै, अजर लोक अस्थान ।
कहे कबीर सर्वांग जो, ताहि पुरुषको जान ॥

सोरठा-सुनहु ज्ञानी धर्मदास, सोइ ज्ञान जप ऊपजै ।
एक नाम विश्वास, प्रगट ब्रह्म स्वरूप है ॥

चौपाई

आदि नाम जो राखे आसा । तापै परे न कालकी फाँसा ॥
आदि नाम निरअक्षर भाई । ताहि नाम ले लोकहि जाई ॥

सोहं शब्द निरक्षर वासा । ताहि शब्द जपहै निज दासा ॥
आदि नाम निज सार है भाई । जमराजा तेहि निकट न आई ॥
तुम कहँ शब्द दीन्ह टकसारा । सो हंसन सो कहो पुकारा ॥
सार शब्दका सुमरण करि है । सहज अमर लोक निस्तरि है ॥
सुमरन का बल ऐसा होई । कर्म काट सब पलमें खोई ॥
जाके कर्म काट सब डारा । दिव्य ज्ञान सहजै उजियारा ॥
जाकहँ दिव्य ज्ञान परकाशा । आपहिमें सब लोग निवासा ॥
लोक अलोक शब्द है भाई । जिन जाना तिन संशय जाई ॥
तत्व सार सुमरन है भाई । जातै कालकी तपन बुझाई ॥
सुमरनते सब कर्म विनाशा । सुमरनसों दिव्य ज्ञान प्रकाशा॥
धर्मन सुमरन दयो लखाई । जासों हंस सबै मुक्ताई ॥

साखी-कहे कबीर विचारके, सुमरन सार बखान ।
कहै भेद जो पावहीं, पहुँचे लोक ठिकान ॥

धर्मदास-वचन चौपाई

कहैं धर्मदास सुनों प्रभुराई । अब जिवको सन्देह मिटाई ॥
अलख अगोचर हो प्रभु मेरा । अब जीवन को करों उबेरा ॥
आदि ब्रह्म तुम अगम अपारा । जीव काज आये करतारा ॥
आदि नाम गुरु मोहिं लखाये । जीवनके तुम बंद छुड़ाये ॥
अजर लोकमें जिव पहुँचाये । धन्य भाग हम दर्शन पाये ॥
अमर वस्तु सतगुरु मोहिं दीन्हा । जीवनके सब दुखहर लीन्हा ॥
सतगुरु चरण गहें हिय माहीं । भानु उदय पंकज बिगसाहीं ॥
सतगुरुने मोहिं लीन्ह जगाई । आवागमन रहित घर पाई ॥
अब सन्देह रहा कछु नाहीं । शब्द तुम्हार बसो हियमाहीं ॥

सोरठा-दीन्हों मोहिं लखाय, परमातम आतम सकल ।
अलख नाम समुझाय, अमर वस्तु गुरु दीन्हऊ॥

साहब कबीर बचन-चौपाई

ज्ञान उपदेश कहा मैं भाई। ताते जीव हिय ज्ञान समाई॥
यही ग्रंथ मैं नाम नियारा। सूक्ष्म रीति से कहो पुकारा॥
आदि नाम जाने संसारा। करे भक्ति पहुँचे दरबारा॥
पढ़े सन्त होवे मति धीरा। आदि नाम गहे अम्र शरीरा॥
आदि नाम है सत्त कबीरा। जो जन गहे छूटे भव पीरा॥
आदि नाम पहिचाने भाई। तब हंसा निज घरही जाई॥
ज्ञान उपदेश कहा गुरु पूरा। नाम गहे चेला कोई सूरा॥
साधु सन्तसों विनती मोरी। नाम भूले अक्षर लीजो जोरी॥

इति श्रीग्रन्थज्ञानबोध समाप्त

———

सत्यपुरुषाय नमः

अथ श्रीबोधसागर

चतुर्दशस्तरंगः

ग्रन्थ भवतारणबोध

*

धर्मदास वचन–चौपाई

धर्मदास बिनवै कर जोरी। सद्गुरु सुनिये विनती मोरी॥
भवसागर कवनिहिं विधि छूटे। यमबंधन कवनिहिं विधि टूटे॥
भव दरियाका वार न पारा। ता महँ अँटके सब संसारा॥
सो दरियाव कौन विधि थाहूँ। परम पुरुषको कैसे पाहूँ॥
करों भक्तिके योग कमावों। देओं दानके तीर्थ नहावों॥
करों यज्ञ कै इन्द्री साधौं। बाहर फिरौं कै मतको बाँधौं॥
जो तुम कहो मैं करिहौं। वचन तुम्हारे हृदये धरिहौं॥
भवसागर दुख मेटो मोरा। टूटै जन्म मरनको ठौरा॥
संशय रहित करहु मोहिं स्वामी। तुम सब घटके अन्तरयामी॥

सद्गुरु वचन

सुन धर्मदास मैं सत्य बताऊँ। भवसागरका भरम मिटाऊँ॥
संशय रहित सदा तुम होऊँ। तुम्हरी राह न रोकै कोऊ॥
करो भक्ति औ बंधन काटो। जन्म मरणका संशय पाटो॥
भाव भक्ति करिये चित लाई। सेवहु साधु तजि मान बड़ाई॥
सुन धर्मदास भक्तिपद ऊचा। इन सीढ़ी कोई नहिं पहुँचा॥
योगी योगसाधना करई। भवसागरते नाहीं तरई॥
दान देय सोई फल पावे। भवसागर भुक्तनको आवे॥
तीर्थ नहाये जो कछु होहीं। सो सब भाषा सुनाऊँ तोहीं॥

जन्म लेय उज्ज्वल तन पावे। सम्पति ह्वै जगमें पुनि आवे॥
ऊंचे घरसे ले अवतारा। ब्राह्मण क्षत्रीको व्यवहारा॥
इन्द्री साधन है यह नीका। विना भक्ति जानों सब फीका॥
इन्द्री साधन है तप भारी। तामस तेज क्रोध हंकारी॥
क्रोध किये गति मुक्ति न पावे। भक्ति महात्म हाथ नहिं आवे॥
वरत एक भक्तिका पूरा। और वरत कीजै सब दूरा॥
और वरत सब यम की फांसी। भक्ति वरत मिलही अविनासी॥
हर अवराधन की सुनु बाता। कहा भेद सुनिये तुम ज्ञाता॥
हरि हर नाम सदा शिव केरा। तासों दूर होत भव फेरा॥
बहुत प्रीतिसों शिवको ध्यावे। रिधि सिद्धि द्रव्य बहुत सुख पावे॥
मन जिसके निश्चय कर धरहीं। गिरि कैलासमें वासा करहीं॥
फिरके काल झपेटे बांहीं। डार देय भवसागर मांहीं॥
ताते संशय छूटे नाहीं। भवसागरमें जीव जो जाहीं॥
शिवकी साधन है यह गती। निर्भय पद पावे नहिं रती॥
जाके सुमिरे योगी यती। चौरासी भरमें उत्पती॥
हरि हरकी यह कथा सुनाई। आगे और सुनाऊं भाई॥

साखी–शिवसाधनकी यह गती, शिव हैं भवके रूप।
विन समझे ये जगत सब, परे महा भ्रम कूप॥
नरक वासमें मनु परे, ऐसी शिवकी मौज।
कहै कबीर विचारिके, मिटे न यमकी फौज॥

चौपाई

हरि हरि नाम विष्णुका होई। विष्णु विष्णु भाषै सब कोई॥
विष्णुहि को कर्ता बतलावे। कहो जीव कैसे फल पावे॥
सब घट माहीं विष्णु विराजे। खान पानमें विष्णुहि गाजे॥
सकल भोग विष्णु जो लेही। भोग करे जग भरमें देही॥

हरि हरि नाम विष्णुका भाषा । शुभ और अशुभ कर्म दोइ राषा ॥
इनमें करें कलोल सदाई । करे भोग जीवन भरमाई ॥
बहुत प्रीतिसो विष्णुहि ध्यावे । सो जिव विष्णुपुरीको जावे ॥
विष्णु पुरीमें निर्भय नाहीं । फिरके डार देय भूमाहीं ॥
हरि हरि नाम विष्णुका भाषा । हरिकी और सुनो अब साखा ॥

साखी–हरि नाम है विष्णुका, जिन कीन्हा सब जेर ।
चौरासी भरमे सदा, मिटै न भवका फेर ॥

चौपाई

सुनहु धर्मदास तुम हो साधू । इनको कबहूँ मत अवराधू ॥
हरि हर ब्रह्मा को है नाऊँ । रज गुण व्यापक है सब ठाऊँ ॥
जगत कहै ब्रह्मा है करता । मर्म माहिं सब बह बह मरता ॥
ब्राह्मण को पूजै ससारा । जीव होय नहिं भवते न्यारा ॥
पढ़ पढ़ विद्या जग भर्मावे । भक्ति पदारथ कैसे पावे ॥
पोथी पाठ पढ़ै दिनराती । ये केवल भ्रमके उत्पाती ॥
आप भरम ते निर्भय नाहीं । बहे जात हैं भ्रमके माहीं ॥
औरनको शिक्षा सब देहीं । ताते मिलै न परम सनेही ॥
पाप पुण्य का लेखा करहीं । विना भक्ति चौरासी परहीं ॥
यह ब्राह्मणकी यह करतूती । ब्राह्मण पूजे होय न मुक्ती ॥

साखी–त्रिगुण भक्ति है जगकी, निर्गुण लखै न कोय ।
सर्गुण निर्गुण दोइ मिटै, भक्ति रहित घर होय ॥
इह त्रिगुणहि कि भक्तिमें, जिन भूलो धर्मदास ।
ऊपर निर्गुण जानिये, जहँ योगीका बास ॥

चौपाई

धर्मदास सुनसन्त सुजाना । नर्गुण सों अब करो बखाना ॥
निर्गुण नाम निरंजन भाई । जिन सारी उत्पत्ति बनाई ॥

निर्गुण सों जु भया ओंकारा । तासों तीनों गुण विस्तारा ॥
निर्गुण सो मन भये प्रचण्डा । ताको बास सकल ब्रह्मण्डा ॥
ओङ्कार मन आप निरञ्जन । नाना विधिके कीये व्यञ्जन ॥
भाँति भाँतिके घाट सवारा । कहँलग गिनों वार नहिं पारा ॥
ताके अंश सकल अवतारा । राम कृष्ण तामें सरदारा ॥
पूरण आप निरञ्जन होई । इनके फेर फार नहिं कोई ॥
सगुण निर्गुणहुकी करे सेवा । भक्ति करे अरु पूजे देवा ॥
कर आचार विचार न जाने । सो मेरे मन कभी न माने ॥
मन बोधे मन माहिं समावे । निज पदको कोई नहिं पावे ॥
मन को बोध करे जो कोई । मन पहुँचावे पहुँचे सोई ॥
जाप निरञ्जन माहिं समाई । आगे गम्य न काहू पाई ॥
ऐसे तीन लोक सब अटके । खरे सयाने ते सब भटके ॥
ऋषिमुनि गण गन्धर्व रु देवा । सब मिल करें निरञ्जन सेवा ॥
साधक सिद्ध साधु जो भयेऊ । इनके आगे कोई न गयेऊ ॥
बहुत प्रीति सो भक्ति विचारी । मिलन २ लीला अधिकारी ॥
जाय निरञ्जन सो हो भेटा । काल रूप धर करे समेटा ॥
वही निरञ्जन का विस्तारा । तामें उरझे सब संसारा ॥
जिधर तिधर राखे बिलमाई । रचना अनन्त अपार बनाई ॥
धर्मदास तुम भक्ति सनेही । इन मैं मत अटकावे देही ॥
जन्म धरे छूटे नहिं भाई । ताते आप कहो गुहराई ॥
भक्ति गुप्त जाने नहिं कोई । तुर्त सनेही पावे सोई ॥

साखी-इनते भक्ती गुप्त है, सुन धर्मदास सुजान ।
भक्ति करो भरमो नहीं, सोई भक्ति प्रमाण ॥

धर्मदास-वचन चौपाई

हे स्वामी मैं हूँ अज्ञानी । गुप्त भक्ति मोहिं कहो बखानी ॥
तुम यह भक्ति कहां सों आनी । सोई बात मोहिं कहो बखानी ॥

तुम्हरी भक्ति कौन विधि पावे । कौन भांति की भक्ति कहावे ॥
भक्ति कहीजे कौन प्रकारा । ताको स्वामी कहो विचारा ॥
भक्ति २ सब जगत बखाने । भक्ति भेद कैसी विधि जाने ॥
सो निश्चय मोहि कहो बखानी । केहि विधि छूटै भवकी बानी ॥
जाते सब संशय मिट जाई । तातें आप देहु समझाई ।

साखी-भव वाणीभ्रम दुख बढ़े सुख कर सत गुरु देव ।
भक्ति करो निष्कपट होय, सदा तुम्हारी सेव ॥

कबीर-वचन चौपाई

कहें कबीर सुनो मम बानी । भक्ति सार मैं कहौं बखानी ॥
आगे भक्त भये बहु भाई । करी भक्ति पै युक्ति न पाई॥
आदि भक्ति शिव योगी केरी । राखी गुप्त न जग में फेरी ॥
योग करे औ भक्ति कमावे । अधर एक नामे ध्वनि लावे ॥
सो अक्षर है रंकारा । तासों उपजे सकल पसारा ॥
रहे अधर ब्रह्मांड के माहीं । शिव जानतको जानत नाहीं ॥
तासन मेरी भक्ति नियारी । जाको क्या जाने संसारी ॥
ताको योगेश्वर नहिं पावे । और जीवकी कौन चलावे ॥
शिवसों अधिक न कोऊ जाने । ऐसी भांति छान बिलछाने ॥
सोउ जीव आगे नहिं आवे । तीन लोक प्रभुता उठ जावे ॥
ठौर हमारो कैसे पावे । वहां गये बहुरिहु नहिं आवे ॥
धर्मदास कहु वर्णन अपना । ब्रह्म पुत्र सेवे तिहिं चरना ॥
सनक सनन्दन सनत्कुमारा । सनकादिकसे चारों अवतारा ॥
पांच वर्ष काया नित रहई । ब्रह्म लीन कोइ पार न लरई ॥
केते ब्रह्म होय होय गयऊ । सनकादिकसे निश्चय भयऊ ॥
ध्यान जु करे निरञ्जन माहीं । निरञ्जनसों न्यारा कोउ नाहीं ॥
निरञ्जन अंश हंस अवतारा । सकल सृष्टि है ताहि मँझारा ॥

यहां ताहि कोई बिरला जानै। आगे कहो कौन विधि मानै॥
इनकी भक्ति करे नर सोई। हमरी भक्ति न जानत कोई॥
भक्त अनेक भये जग माहीं। निर्भय घर को पावत नाहीं॥
भक्ति करैं तब भक्त कहावे। भगते रहित न कोई पावे॥
भग भुगते फिर फिर भग आवे। भगते बचपन कोई पावे॥
चौदह लोक बसैं भगमाहीं। भगते न्यारा कोई नाहीं॥
न्यारी युक्ति मैं तुमहिं दिखाई। तहां सुर्त रहै साध कहाई॥
भुगते भग औ भक्त कहावे। फिर फिर योनी संकट आवे॥
मेरी भक्ति युक्ती जाना। ताका आवागमन नशाना॥
भक्ति करै तब मुक्तिको होई। नहिं तो बाना जाय बिगोई॥
भक्ति भेद बहुतक है भाई। निर्मल भक्ति न काहू पाई॥
तुम जो बूझो भक्ति प्रकारा। ताका भेद सुनो अब न्यारा॥
भक्ति होय नहिं नाचे गाये। भक्ति होय नहिं घंट बजाये॥
भक्ति होय नहिं मूरत पूजा। पाहन सेवे क्या तोहि सूझा॥
विमल विमल गावें अरु रोवें। क्षण एक परम जन्म को खोवें॥
ऐसा साहिब मानत नाहीं। ये सब काल रूप के छाहीं॥
मन ही गावे मन ही रोवे। मन ही जागे मन ही सोवे॥
जब लग भीतर लग्न न लागे। तब लग सुर्त न कबहूं जागे॥
सत्य नाम की खबर न पाई। कां कर भक्ति करौं रे भाई॥
ठौर ठिकाना जानत नाहीं। झूठे मग्न रहैं मन माहीं॥
कहन सुनन कों भक्त कहावें। भक्ति भेद कितहूँ नहिं पावें॥
लग्न प्रेम बिन भक्ति न होई। सङ्गति को पावे नहिं कोई॥
अपने साहिबको नहिं जाना। बिन देखे किहि कियो बखाना॥
ऐसे भूल परे संसारा। कैसे उतरे भव जल पारा॥
सत्य भक्तिको नाहीं लागा। ऐसे हैं सब जीव अभागा॥

धर्मदास तुम हो बुद्धिवन्ता । भक्ति करो पावो सतसन्ता ॥
एक पुरुष हैं अगम अपारा । सब घट व्यापक सबसों न्यारा ॥
ताको नहिं जाने संसारा । ताकी भक्ति महानिजसारा ॥
भक्ति करे जब उतरे पारा । सुर्त नृत्य कर सेवे सारा ॥
यह विधि भक्तिपदारथ पावे । मुक्ति होय भव बहुरि न आवे॥
भवसागर ते उतरें पारा । फिरके जग नहिं ले अवतारा ॥
ऐसी भक्ति मुक्ति की दाता । जाकी गति नहिं लखे विधाता॥
भक्तिही भक्ति भेद बहु भारी । यही भक्ति जगत ते न्यारी ॥

साखी-भक्तिपदारथ अगम फल, मुक्ति चार यहि वार ।
पावे पूरण पुरुष को, जग नहिं ले अवतार ॥

धर्मदास वचन-चौपाई

धर्मदास कहै सुनो गुसाईं । पूरण पुरुष बसे किहि ठाईं ॥
केहि विधि सों सेवा कीजे । कैसे चरणकमल चितदीजे ॥
कौन भांति साधों सो भक्ती । सद्गुरु मोहिं बताओ युक्ती ॥

सद्गुरु वचन

पहिले प्रेम अङ्ग मैं आवे । साधु देख सन्मुख होय धावे ॥
चरण धोय चरणामृत लेवे । प्रीति सहित साधूको सेवे ॥
अन्तर छांड़ि करो सेवकाई । यहि विधि भवकेदुःख मिटाई ॥
जोइ साधु प्रेम गति जाने । ता साधूकी सेवा ठाने ॥
परम पुरुषकी भक्ति दृढावे । सुर्तें नृप कर तहँ पहुँचावे ॥
तासों प्रीति करो चितलाई । छांड़ो दुर्मति औ चतुराई ॥
तबही परम पुरुषको पाये । भव तरके जग बहुरि न आवे ॥
भवतारन संशय नहिं तोहीं । दो क्षण होय तो लागे मोहीं ॥
कीतहु बातकी फिकर न करना । कही भक्त निश्चय कर तरना ॥

धर्मदास वचन-चौपाई

धर्मदास बूझे चित लाई। सकल वेद मोहिं देहु बताई ॥
निर्गुण रहित तुम्हारा नाऊँ। कैसे भक्ति करो तेहि ठावँ ॥
हो स्वामी यह अचरज बाता। भक्ति करनको दाव न घाता ॥
सर्गुण भक्ति करे संसारा। निर्गुण योगेश्वर आधारा ॥
इन दोनोंके पार बतावा। तुम कैसी विधि तहँ मन लावा ॥
सत्य बात मोहि कहो गुसांई। केहि विधि सुर्त लगाऊँ धाई ॥
सगुणहि पार न पावत कोई। मेरे मन बर संशय होई ॥
सतगुरु संशय देहु निवारी। मैं जाऊँ तुम्हरी बलिहारी ॥
सर्गुण निर्गुण भेद बताऊँ। तीसर न्यारा मोहिं लखाऊँ ॥
मोरे मन पतयावत नाहीं। बहुत फिकर कीन्हा मनमाहीं ॥
हो समर्थ तुम सतगुरु साईं। दृढ़तासे पकड़ो मम बाहीं ॥
सर्व युक्ति बतलावो मोई। अंतर कछू न राखो गोई ॥
तुम सत सत्य तुम्हारी बाता। मैं याचक तुम समरथ दाता ॥
देहु मोहिं मैं मांगो सोई। सोइ लखाव मिटे दिल दोई ॥

साखी-सत्य सत्य समरथ धनी, सत्य करहु परकाश ।
सत्य लोक पहुँचायहो, छूटै यम भव त्रास ॥

सद्गुरु-वचन चौपाई

सुन धर्मन सब कहो सँदेशा। तुमको होय न भवका लेशा ॥
भव तारण समर्थ है न्यारा। ताको नहि जानै संसारा ॥
योगेश्वर वह गति नहि पाई। सिद्ध साधककी कौन चलाई ॥
भक्ति होय जगतमें भारी। ध्रुव प्रहलाद सदा अधिकारी ॥
भक्तिमाहिं इन सम नहि कोई। रामकृष्ण प्रकटे नहि गोई ॥
दोनों जने दो व्रन साधू। यही एक इष्ट अवराधू ॥
सतयुग भक्ति करी ध्रुवराजा। पांच वर्ष आयू तत आजा ॥

निकसे गृह ते बाहर गयेऊ। नारदके उपदेशी भयेऊ॥
छठें मास प्रकटे हरि आई। राज दिये वैकुण्ठ पठाई॥
साठ हजार वर्ष दियो राजू। कुटुम सहित वैकुण्ठ विराजू॥
एक दिवस जब प्रलय ह्वय आई। तहां तो पुनि ये देह गिराई॥
पुनि सामीप्य मोक्ष कर दीन्हा। परम पुरुषगति तबहु न चीन्हा॥
काल पुरुष राखे सब घेरी। सत्य पुरुष जग जाय न हेरी॥
ऐसे भक्त भये जग माहीं। परम पुरुष गति पावत नाहीं॥
भक्ति सगुण करे यहि पावे। निर्गुण माहीं नाहिं समावे॥
जो सायुज्य होय गति पूरी। देव निरंजन जाय हजूरी॥
ज्योति स्वरूपी ताका नाऊँ। चारों मुक्त बसें तेहि ठाऊँ॥
सालोक्यहि सामीप्य कहाई। सारूपी सायोज्य लहाई॥
चार मुक्ति जाके घर होई। ताको पार न पावे कोई॥
ताके परे मोर अस्थाना। कैसी भक्ति कहा कहों ज्ञाना।

साखी–ध्रुवकी गति तुमसों कही, सुन धर्मदास सुजान।
अपरम्पार न पावही, पूरण पद निर्वान॥

चौपाई

सुन धर्मन एक कथा नियारी। बड़ी भक्ति प्रहलाद विचारी॥
हिरनाकुश दोनों बलकारा। ताके घर लीन्हा अवतारा॥
तपके हेतु गये बन माहीं। कोइ बातको संशय नाहीं॥
गर्भवन्त होती तिहि नारी। इन्द्र आवाज सुनि अधिकारी॥
नभवानीते भई अवाजा। इन्द्रासनको लेही राजा॥
हिरनाकुश घर जन्म धराई। सो द्वारासन लेही भाई॥
इन्द्रहि संशय उपजो भारी। गर्भ वातसों देहों ठारी॥
ये छल इन्द्र कियो अधिकारी। अपने देशहिं ले गयो नारी॥
तेहिं क्षण नारद आये तहँवां। इन्द्रहिको समझायो जहँवां॥

इनको गर्भ न चीरे भाई। भक्त होय सबको सुखदाई ॥
गर्भहि मांझ ज्ञान तेहिं दीन्हां। नारद एक काम बड़ कीन्हां ॥
दृढ़ कीन्हों तेहि गर्भके माहीं। वर्ष हजार रही तिहि ठाहीं ॥
फिर नारी अपने पुर आई। इन्द्रजीत हिरनाकुश पाई ॥
तहां जन्म लीन्हा प्रहलादा। राम रटन रसना ले स्वादा ॥
ऐसो रटन लगाये भारी। तामसभक्त न कोइ अधिकारी ॥
केतो कष्ट सहे सिर अपना। तबही दुःख न व्यापे सपना ॥
हिरनाकुशके मनमें आई। राम तेरो मोहिं देहु बताई ॥
खम्भ फार लीन्हों अवतारा। हरि नरसिंह रूप तब धारा ॥
हिरनाकुश नख उदर विदारा। अपनो जन प्रहलाद उबारा ॥
फिरके इन्द्रासन पहुँचाया। सर्गुण भक्तिजान सब माया ॥
ऐसे दृढ़व्रत रामहि गहिया। तेऊ इन्द्रासन सुख लहिया ॥
ऐसे भक्त न होवे भाई। ताकी गति तुमको समुझाई ॥
इन्द्रासनको राज सुनाऊं। महा भोग बड़े सुख पाउं ॥
सत्तर दोय चौकड़ी भुगता। बन्धन भवके होय न मुक्ता ॥
बड़े भक्त की कथा सुनाई। पूछो और कहो तोहिं भाई ॥

साखी—इन्द्र राजसुख भोगकर, फिर भवसागरमाहिं।
यह सर्गुणकी भक्ति है, कबहूँ निर्भय नाहिं ॥

धर्मदास वचन चौपाई

धर्मदास बूझे चित लाई। सतगुरु संशय देहु मिटाई ॥
सर्गुण भक्त मुक्त नहिं होई। है वह एकहि या है दोई ॥
यह संदेह मिटाओ मेरा। तुम सतगुरु मम बन्दी छोरा ॥
की सर्गुण को निर्गुण कहिये। भिन्न भिन्न भेद मोहिं कहिये ॥
सकल सृष्टि कहँवाते भयऊ। यही युक्ति काहू नहिं कहऊ ॥
जो मोहिं ऊपर दया तुम्हारी। सब विधि कहिये युक्ति विचारी ॥

यह संसार कहांसे आया । को है ब्रह्मा अरु को है माया॥
अन्तर छांड़ि निरन्तर भाखो । मोसन अन्तर कछू न राखो ॥
भक्ति भेद कहो मोहे स्वामी । तुम सब घटके अन्तर्यामी ॥
जीव काज आये जगमाहीं । अब मोको कछु संशय नाहीं ॥
सत गुरु मैं आधीन तुम्हारा । तुम भवसागर तारन हारा ॥

साखी—निस्संशय पद कहा है, सो मोहिं कहु समुझाय ।
फिर भूमें भरमो नहिं, तहां रहो लवलाय ॥
कहै सुनै सुख ऊपजै, जगमें आवे नाहिं ।
काल रहै शिर नायके, सो दीजे समझाहिं ॥

सद्गुरुवचन-चौपाई

कहै कबीर सुनो धर्मदासा । अब निज भेद कहो परकाशा ॥
सुरत लगाय सुनहु मम बानी । छान लेव जो जिह्वा छानी ॥
सूक्ष्म गति अतिभारी झीनी । ताहि जगतमें विरला चीन्ही ॥
आदि न अन्तहती नहिं माया । उत्पति प्रलय हती न काया ॥
शून्य शिखर नहिं तत्त्वन मूला । कारण सूक्ष्म नहीं अस्थूला ॥
आदि ब्रह्म नहीं ओंकारा । नहीं निरञ्जन नहिं अवतारा ॥
दश अवतार न चौविस रूपा । तब नहिं होता ज्योति स्वरूपा॥
पुण्य पाप काहू नहिं थापा । सोय ब्रह्म नहिं सोहं जापा ॥
नहिं तब शून्य सुमेर न भारा । कूर्म न शेष धरे अवतारा ॥
अक्षर एक न ररंकारा । त्रिगुण रूप है नहिं विस्तारा ॥
शक्ति युक्ति नहिं आदि भवानी । एक होय नहिं ज्ञान अज्ञानी ॥
शब्द न स्वांति कछू नहिं होई । कहो विचार सुनो तुम सोई ॥
नहिं है बीज नहिं अंकूरा । आदि अमी नहिं चन्द न सूरा॥
धर्मदास समझ के रहना । कहों कहा कछू नहिं कहना ॥

धर्मदास वचन

धर्मदास कह सुनहु गुसाई। इन बातन बनवे की नाई॥
कियेउ संशय वे इक ठौरी। तुमहू हते के है कोई औरी॥
सत्य सत्य अब मो पहँ कहिये। संशय रहित सोई पद लहिये॥
त्रयी वाचा ले पूछी साईं। साधु संत तुम आप गुसाईं॥

सद्गुरु वचन

कहै कबीर सुनहु धर्मदासा। सकल भेद मैं किया प्रकाशा॥
जो प्रतीति हो मन महँ तोरा। भवको मेटि शरण रहो मोरा॥
धर्मदास छोड़ो सब माया। अस्थिर अमर अखंडित काया॥
भक्ति मुक्ति उपजी है जासों। प्रेमहि लग्न लगावो तासों॥
अब मैं तोहि लखाऊं जागा। छूटै जन्म मरणको धागा॥
जन्ममरण है अति दुख भारी। तासों तुम को लेहुँ उबारी॥
अब आपा को थापों नाहीं। देख लेहु तुम बाहर माहीं॥

साखी अब तोहि भेद बताऊँ मैं, निर्मल ठौर नियार॥
सर्व परे सब ऊपरहिं, देखो वहां अकार॥

चौपाई

पुरुष कहो तो पुरुषहि नाहीं। पुरुष हुवा आपा भू माहीं॥
शब्द कहो तो शब्दहि नाहीं। शब्द होय माया के छाहीं॥
दो विन हो नहिं अधर अवाजा। कहो कहा यह काज अकाजा॥
अमृत सागर वार न पारा। नहिं जानों केतिक विस्तारा॥
तामें अधर भवन इक जागा। अक्षय नाम अक्षर इक लागा॥
नाम कहो तो नाम न जाका। नामधरा जो काल तिहि ताका॥
है अनाम अक्षर के माहीं। निह अक्षर कोइ जानत नाहीं॥
धर्मदास तहँ बास हमारा। काल अकाल न पावे पारा॥
ताकी भक्ति करे जो कोई। भव ते छूटे जन्म न होई॥

साखी–भवसागर भरमों नहीं, यही प्रताप हमार ।
निश्चय करिके मानियो, तुरत उतरिहो पार ॥

धर्मदास वचन–चौपाई

हे स्वामी यह अकथ कहानी । आगे सुनी न काहू जानी ॥
योगेश्वर नहिं पावें पारा । मैं क्या जानों जीव विचारा ॥
अचरज गुप्त तुम आय सुनाई । ताकी गम्य न काहू पाई ॥
ताकी भक्ति करैं किहि भांती । रूप अरूप न पूजा पाती ॥
कौन युक्ति सो भक्ति करीजे । अगम ठौर कैसे कर लीजे ॥
जस जानहु तस मोहिं लै चालहु । तन मन छोड़ देह सुख पालहु ॥
अब कछु मोसें होवत नाहीं । सुरत समाय गई तुम माहीं ॥
यहाँ वहाँ तुम समरथ दाता । मोकहँ जान परी यह बाता ॥
साखी–नाम कबीरा धरा क्यों, कारन कौन प्रमाण ।
देह धरी तुम आयके, कहिये मोहि बखान ॥

चौपाई

सत्य कबीर नाम मैं जाना । सो भवको क्यों कियो पयाना ॥
ऐसे सन्त जन्म क्यों धारा । किहि कारण लीन्हा अवतारा ॥
सत्य कहो बन्धनमें नाहीं । निरबन्धन कैसे जग माहीं ॥
देही धरी सबहि दुख पाया । तुमही काहि न व्यापी माया ॥
हठ हों पूछत हों गुरु बाता । रिस न करहु तुम समरथ दाता ॥
साखी–मैं पूछत हित आपने, जीव मुक्तिके काज ।
साधु सन्त तुम सुजन हो, अब नहिं मोकों लाज ॥

सद्गुरु वचन–चौपाई

धरमदास कहो तुम सांची । मिथ्या नहीं सत्य सुख बांची ॥
तुम हो अंश हंस पति राजा । तुम्हरो मोह करन को काजा ॥
आदि अनादि समीपी मोरा । अब मैं काज करूंगा तोरा ॥

वहांसे तुम्हीं दीन पठवाई। यहां आय कर लागी काई ॥
काल पुरुष दीन्हा भरमाई। जिन सब सृष्टि बनाके खाई ॥
जग जीवनसों तुमहो नियारा। तुम्हरे काज लीन्ह अवतारा ॥
अवर काज मोर कछु नाहीं। हों निरंतर जगके माहीं ॥
मोहिं न व्यापे जगकी माया। कहन सुननकी है यह काया ॥
देह नहीं अरु दरशे देही। रहो सदा जहां पुरुष विदेही ॥
यह गत मोर न जाने कोई। धर्मदास तुम राखो गोई ॥
आदि पुरुष निहअक्षर जाना। देही घर में प्रकटे आना ॥
गुप्त रहे नाहीं लख पावा। सो मैं जगमें आन चितावा ॥
जुगुन २ लीन्हा अवतारा। रहों निरन्तर प्रकट पसारा ॥
सतयुग सतसुकृत कह टेरा। त्रेता नाम मुनीन्द्रहि मेरा ॥
द्वापरमें करुना मय कहाये। कलियुग नाम कबीर रखाये ॥
चारों युगके चारों नाऊँ। माया रहित रहे तिहि ठाऊँ ॥
सो जागह पहुँचे नहिं कोई। सुर नर नाग रहे मुख गोई ॥
सबसे कहों पुकार पुकारी। कोइ न माने नर अरु नारी ॥
उनका दोष कछू नहिं भाई। धर्मराय राखे अटकाई ॥
गुप्त पसारा है अति भारी। ताहि न जाने नर अरु नारी ॥
शिव गोरख सोइ पार न पावें। और जीवकी कौन चलावें ॥
नवहिं नाम चौरासी सिद्धा। समझ बिना जगमें रहे अन्धा ॥
ऋषि मुनि और असंखन भेषा। सत्य ठौर सपने नहिं देखा ॥
जोर कहीं पतयावत नाहीं। बहुत कहों समझा मनमाहीं ॥
कोइ योग कोइ मदके माता। कोइ कहे हम लखे विधाता ॥
कोइ मान दिशा मन लावे। मौन होयकर मूल गवावे ॥
सत्य पुरुष की युक्ति न पाई। हृदय धरे नहिं सत्यको भाई ॥
कोई कहै हम हैं भज नीका। काज अकाज लखे नहिं जीका ॥

कोई कहै हम पढ़े पुराना। तत्व अतत्व सबै कछु जाना॥
कोई कहै विद्या आधीना। सब विचार कायामें चीन्हा॥
कोई कहै तप वश करि राखा। तप है मूल और सब शाखा॥
कोई कहै कर्म अधिकारा। कर्महिं सो उतरे भवपारा॥
कोई कहै भाग्य लिखा सो होई। भाग्य लिखा मेटै नहिं कोई॥
कहँ लग कहौं यही सब कहई। भेद हमार न कोई लहई॥
सब सों हार मान मैं बैठा। ये सब जीव काल घर पैठा॥

साखी-सोइ काल करतार सोइ, भक्ति मुक्ति तेहि हाथ।
मेरो कह्यो नहि आदरे, परपंची वह साथ॥
मनहिं प्रपंची मनहिं निरञ्जन, मन ही है ओंकार।
फन्दा है त्रयि लोक का, कोइ न भवतें न्यार॥
निरंजनहि निर्वान पद, कही तुम्हीं हितवन्त।
योग यती संन्यास गत, कोइ न पावत अन्त॥
सप्त सुर्त में रमि रहा, सुर्त शब्द तेहि हाथ।
ऐसी अगम अपार गति, तीन लोकके नाथ॥

चौपाई

सात शून्यका सकल पसारा। सात शून्यते कोइ न न्यारा॥
सात सुर्तका भेद बताऊं। तामें ज्ञान सकल समुझाऊं॥
उत्पत्ति प्रलय है वाके माहीं। इन गति सों कोइ न्यारा नाहीं॥
प्रथमहिं अमी सुर्त निज ठौरा। तहां निरंजन कीन्हा दौरा॥
वहां जाय अमी ले आवै। ताहों अजर बीज उपजावे॥
सोइ बीज रक्त में धरहीं। यहविधिसों वह उत्पति करहीं॥
बीजहि जलका रंग कहाया। तासों रची सकलकी काया॥
दूजी मूल सुर्त तेहि संगा। घट २ माहि बनावे रंगा॥
तीजी चमक सुर्त अंधारा। नौ नारीमें किया पसारा॥

कोठा तहां बहत्तर करई। रोम रोम युक्ति सब धरई॥
चौथी शुन्य सुर्त है भाई। धर्मदास मैं तुम्हें लखाई॥
पंचम सुर्त श्रवण सँग होई। शुभ और अशुभ सुनावे दोई॥
छठवें सुर्त ठिकाना भाषों। ठांव ठांव स्वाद तिहि चाखों॥
सो तो रहे कण्ठके द्वारा। बाणी भाषा कहैं बिचारा॥
सप्तम सुर्त रहै तन माहीं। हृदय से कहुं न्यारे नाहीं॥
ब्रह्म रूप धर तहां वह बैठी। गुप्त पसार सकल घट पैठी॥
कोइ न जाने ताको मरमा। ज्ञानी ध्यानी सबही भरमा॥
सात सुर्तका कहो बिचारा। धर्मदास कछु वार न पारा॥
सात कमल का भेद बताऊँ। कमल २ की युक्ति लखाऊँ॥
मूल कमल है मूलही द्वारा। चार पखुरियां है विस्तारा॥
तहां विनायक देव विराजा। मूल द्वार कमल सृति छाजा॥
ता ऊपर फूल है दूजा। षट दल में ब्रह्मा की पूजा॥
तीजे कमल पांखरी आठा। नाभी माहि साल सो गांठा॥
तहां वासुदेव द्वय ठाना। लक्ष्मी सहित बसें भगवाना॥
चौथा पद्म हृदय में होई। देव महेश बसें तहँ सोई॥
षोडशकमल आत्म पहिचाना। शक्ति अविद्या कहो बखाना॥
षष्ट कमल पखुरी है तीनी। सरस्वति वास तहां पुनि कीन्हीं॥
सप्तम कमल त्रिकुटिके तीरा। द्वय दल माहि बसै द्वय वीरा॥
शशी और सूर्य प्रकाशक घटका। यह सब खेल निरंजन नटका॥
अष्टम कमल ब्रह्मांडके मांहीं। तहाँ निरंजन दूसर नाहीं॥
आठ कमलका बनो ठिकाना। धर्मदास बड़ भागी जाना॥

साखी—सप्त कर्म अरु शून्य सत, सात सुर्त अस्थान।
इक्कीसों ब्रह्मांडमें, आप निरञ्जन ज्ञान॥
राज निरंजन देखता, ठांव ठांव भरपूर।
रसातल रु ब्रह्मांड लगि, कहुं निकट कहुं दूर॥

चौपाई

सुन धर्मनि सब जुगत बखानी । तुम अपने मनमहँ कछु जानी॥
आदि अन्त सब तुम्हें लखाई । उत्पत्ति परलयकी गति पाई ॥
उतपति परलय सिरजन हारा । मेरा भेद निरंजन पारा ॥
तासे जगत न काहू माना । तातें तोहि कहों मैं ज्ञाना ॥
जो कोई मानै कहा हमारा । सो हंसा निज होय हमारा ॥
अमर करों फिर मरन न होई । ताका खूंट न पकड़ें कोई ॥
फिरके नहिं जन्में जगमाहीं । काल अकालताहि दुख नाहीं ॥
सुखसागर सुख मूल बतावा । बड़ भागी हंसा काहू पावा ॥
अंकुरी जीव जु होय हमारा । भवसागर तें होय नियारा ॥
प्रणहि प्रतीत करो मन लाई । ताको यह पद देय लखाई ॥
सुर्तवंत सांचा जी होई । शरण तुम्हारी गहिहै सोई ॥

साखी-प्रथमहि दृढ़ प्रतीत है, होय भक्ति अंकुर ।
भाव प्रीति सेवा करे, देउ ज्ञान भरपूर ॥

धर्मदास वचन-चौपाई

हे स्वामी मैं तुमको चीन्हा । आदि अन्त भेद सब लीन्हा ॥
तुमहीं वार तुमहिं हो पारा । तुमहीं सों उपजो संसारा ॥
तुमहीं हो निज पहिले पारा । तुमहीं सकल जगत सो न्यारा॥
गुप्त प्रकट मैं सब विधि जाना । तुम हीं हो तहँ पद निरवाना ॥
ऐसी अगम गम्य तहँ नाहीं । मैं बूझो अपने मन माहीं ॥
पूरण कृपा करी तुम साईं । मेरे मन कछु संशय नाहीं ॥
भव तारण तुम संशय वारण । धर औ अधर दोनोंके धारण ॥
समर्थ सब गति पायउ तोरी । अब सब संशय भागी मोरी ॥
भयो सनाथ तव दर्शन पाये । माया छूट परम पद पाये ॥
छूटा काल निरंजन मोरा । जन्म मरणके टूटे डोरा ॥

अब भवमें मैं बहुरि न आऊँ । तुमरें चरणकमल चित्त लाऊँ ॥
येती युक्ति न काहु पाई । सो साहिब तुम मोहि लखाई ॥
जान परी मोहि तुम्हरी बाता । तुम सम और न कोई ताता ॥
चौरासी सों कीन्ह उबारा । बहुरि जन्म नहिं होय हमारा ॥
समझ बूझ करिहौं सिवकाई । छांडो कुलकी लाज बड़ाई ॥
परदा तो रहिया क्षण माहीं । जगमें कोई काहु को नाहीं ॥
अपने अपने स्वारथ आई । परमारथ काहू नहिं पाई ॥
ये सब जगत निरंजन माहीं । पांच तीन सो सब उपजाई ॥
पांच तत्त्व तीन गुण भारी । इन ते युक्त दिखाई नारी ॥
पानी पवन पृथ्वी आकाशा । सब पर तेज किया परकाशा ॥
रज तम सत तीनों गुणजाना । ब्रह्मा विष्णु महेश बखाना ॥

साखी-पांच तीन पर अहि निरंजन, यह मायाको ठाट ।
तासों सब रचना करी, भांति भांतिकी घाट ॥

सद्गुरु वचन

चौपाई

कहें कबीर सुनो धर्मदासा । सकल भेद मैं किया प्रकासा ॥
तुम सन अन्तर कछू न राखा । जो कछु हता सो कछु सब भाखा ॥
अब तुम भक्ति करो दृढ़ताई । छांड़ि देव कुललाज बड़ाई ॥
पहिले कुल मर्यादा खोवे । भव सो रहित भक्ति तब होवे ॥
कुल की भय सबही को भारी । कहां को पुरुष कहां की नारी ॥
ताते यम को बन्धन कीन्हा । काज अकाज न काहू चीन्हा ॥
ताते परदा दूर निवारो । सेवा करो सत्य मन धारो ॥
परदा साथ काल की गांसी । यह बन्धन दुनियां सब फांसी ॥
राजा परजा बड़े कुलीना । परदे काल मर्म नहिं चीन्हा ॥
सेवा करो छांड़ि मन दूजा । गिरही सेवा गिरही पूजा ॥

गुरुसों कपटे करै चतुराई। सो हंसा जग भरमें आई॥
ताते गुरु सों परदा नाहीं। परदा करै रहै भव माहीं॥
गुरु है मात पिता गुरु सेवा। गुरु सम और नहीं कोई देवा॥
गुरु है खसम और नहिं दूजा। जाने अश हंस गुरु पूजा॥
गुरुसों परदा कबहुँ न करिये। सर्बस ले गुरु आगे धरिये॥

साखी-गुरुकी महिमा को कहे, शिव विरंचि नहिं जाम।
गुरु सतगुरु को चीन्हियां, ते पहुँचे निज धाम॥

चौपाई

धर्मदास सुन जुगत बताऊँ। चौक आरती तोहि लखाऊँ॥
अगर चन्दनका चौका दीजै। ज्योति बराय आरती कीजै॥
पांच तत्व पांचों है बाती। बाहर भीतर ज्योति समाती॥
मानिक दीपकका उजियारा। यहि बात जाती बिस्तारा॥
श्वेतपात ले हो सुख भारी। श्वेत खटाई श्वेत सुपारी॥
यही विधि चौका विस्तारी। मेवा अष्ट आन तहँ धारी॥
मेवा कदलि कपूर मंगावो। कदली फल सोई ले आवो॥
पुहुप फूल सुगन्ध सवारो। भांति भांति व्यंजन अनुसारो॥
तनमन धन तब अर्पण कीजै। प्रेम सहित ऐसो सुख लीजै॥
पांच तत्त्व को भोजन कीजे। ब्रह्म आत्महि तृप्त करीजे॥
काया माया को सुख येही। यह सुख करके मिलो विदेही॥
मिलो विदेह देह धर नाहीं। बूझ लेहु तुम यह मन माहीं॥
अब कछु कहनेको नहिं रहिया। युक्ति इती सो सब हम कहिया॥
भव छूटन को यही उजागर। याही विधि उतरें भवसागर॥
सत्य सत्य यह बात हमारी। जो कोई समझ करै नर नारी॥
भक्ति करै मुक्ति फल पावे। हमरे सत्य लोकमें आवे॥
कहै कबीर सुनहु धर्मदासा। छूटै कर्म भर्म सब फांसा॥

धर्मदास वचन

साखी-कर्म भर्म भव भा सब, दिये भारमें झोंक।
सतगुरुके परताप सों मिट गये सबही धोंक॥

सदगुरु वचन

साखी-यह भव तारण ग्रन्थ है, सतगुरु का उपदेश।
जो मन माने प्रीति कर, पहुँचे हमरे देश॥

चौपाई

गुप्त भेद सुनहु धर्मदासा। आपहि आप भये परकासा॥
मूल वस्तु बीज है भाई। उपजे विनशै आवै जाई॥
निह अक्षर ते अक्षर भाया। अक्षर आदि अमी उपजाया॥
आदि अमी किये सकल पसारा। फल रहा कछु नाहिं न न्यारा॥
सोहं कला अमीके माहीं। श्वेत बीज झलके तेहि ठाहीं॥
श्वेत बीजका मूल है माया। तासों बची सकलकी काया॥
श्वेत बीजका सकल पसारा। तामें जीव लिया अवतारा॥
तब अंकूर अमी ते भयऊ। पारस अंस फैल सब गयऊ॥

साखी-उत्पति परलय बीज गति, बीजहि आवे जाय।
गुप्त प्रगट जो कुछहती, सो सब दिया लखाय॥
निह अक्षर अक्षर भया, अक्षर किया प्रकाश।
मनते माया ऊपजे, मायात्रिगुणहि रूप॥
पांच तत्त्वके मेलमें, बांधे सकल स्वरूप।
माया ब्रह्म जी तत्त्व अरु, रज सत तम त्रिय देव॥
इन सब ही को छोड़कर, करनिह अक्षर सेव॥

जो चाहो सोई मिले, मानो मोर विचार ।
यही भेद जाने बिना, कोइ न उतरे पार ॥
भव भारी भर्मइ मिटै, संशय शूल न होय ।
हंसनमें जो रम रहा, शरण गहै नहिं कोय ।
कहै कबीर धर्मदास सों, छोड़ो तुम संसार ॥
यह मेरी परतीत कर, तारो कुल परिवार ॥
अंश वंश परिवार निज, नाद बिन्दु गुरु शिष्य ।
जो चाहे निह अक्षरहि, मुक्ति अंक सोइ लिक्ख॥

इति श्रीभवतारणबोध समाप्त

सत्यपुरुषाय नमः

अथ श्रीबोधसागरे

पञ्चदशस्तरंगः

श्रीग्रन्थ मुक्तिबोध

*

सद्गुरु वचन-चौपाई

ये गुरु गम संशय करलेखो। प्रगटे ज्ञान तब वस्तु परेखो॥
अनुभव आदि कुछ कहों बखानी। सुनिये सन्त गुरु गमबानी॥
अनंत कोट जुग आगे चलगयेऊ। अचल अमानताहि पुनि रहेऊ॥
साठ कोट जुग औरो बीता। सृष्टि रचनाकी इच्छा कीता॥
वह तो अचल पुरुष है अन्ता। बिन गुरुदया न भेट भगवंता॥
कोट कथे कथनी नहिं पावा। जबलग गुरुगम नहीं बतावा॥
साखी पद हैं कोटन वाणी। पुरुष एककहें सुमरो प्रानी॥
ज्ञान सुरत औ शब्द उचारा। यह सब दीन्ह कीन्ह संसारा॥
अचल पुरुष को सुमिरे कोई। जीवत मुक्ति सन्तकी होई॥
साखी पद बोले बहु बानी। आदि नामको बिरला जानी॥
आदि नामका भेद निनारा। बिना सतगुरु बूड़े संसारा॥
सोइ जाने जाको बड़ ज्ञाना। गुप्त मता तिनहीं पहिचाना॥

साखी-आदि नाम निज सार है, बूझि लेहु हो हंस।
जिन जानो निज नाम को, अमर भये ते वंश॥
आदिनाम निजमन्त्र है, और मन्त्र सब छार।
कहे कबीर निज नाम बिन, बूड़ मरा संसार॥

आदिनाम कहँ खोजहु प्राणी। जाते होय मुक्ति सहिदानी ॥
मूलमन्त्र मन्त्रन महिं साचा। जोगहि जलेसोनगरहि पहुँचा ॥
आदि नाम जेहि खोजत भेटा। जरा मरन को संशय मेंटा ॥
आदि नाम निःअक्षर सांचा। जाते जीव काल सों बाचा ॥
निःअक्षर धुन जहवां होई। ताहि जपे नर बिरला कोई ॥
जाके बल आवे संसारा। ताहि जपे नर हो भव पारा ॥
गुप्त नाम गुरु बिन नहिं पावे। पूरा गुरु हो सोइ लखावे ॥
सार मन्त्र लखे जो कोई। विषधर मंडवा निर्मल होई ॥
आदि नाम मुक्तामणि सांचा। जो सुमरे जिव सबसों बाचा ॥
आदि नाम निज सार है भाई। जमराजा तेहि निकट न आई ॥
जब लग गुप्त जाप नहिं जाने। तबलग काल हटा नहिं माने ॥
गुप्त जाप ध्वनि जहँवा होई। जो जन जाने बिरला कोई ॥
गुप्त मता लै पुरुषहिं चीन्हा। जबते गुरु मोहिं दिक्षा दीन्हा ॥
तात वरण प्रभु वरण विहीना। सकल मनुष्य नगर नहिं चीना ॥
मूल मन्त्र जेहि पुरुषके पासा। सोई जनको खोज ले दासा ॥
मूल मन्त्र है ओं सब साखा। कहैं कबीर मैं निजके भाखा ॥
लिखो न जाय कहै को पारा। है अक्षर में जो पावै निरबारा ॥
लिखो न जाय लिखामें नाहीं। गुरु बिन भेंट न होवे ताहीं ॥

साखी-प्रीति बिना नहिं पाइये, जो नहि सुर्त समान।
पुरुष दीप तब पावइ, जबहीं तजै अभिमान ॥

चौपाई

परम पुरुषसों भेट न भयऊ। बिन गुरु दयाप्रगटना कहेऊ ॥
धर्मदास मैं कहों समुझाई। निर्गुण भेद कोइ बिरले पाई ॥
तुम तो जीव पर बोधो जाई। जमराजा परपंच लगाई ॥

जीवहिं राखे फन्द फँदाई । शब्दबान महँ मारो जाई ॥
शब्द बान मैं तुम कहँ दीन्हा । जीवको देहु मुक्तिको चीन्हा ॥
नाम पान सों ईस बचाही । शब्द सुर्त ले जुग बन्धाही ॥
जुग बांधे मारे नहिं कोई । लाख जतन चतुरा जो होई ॥
सबको मूल ताहि गहि लीजे । सुर्त सम्हार ताहि चित दीजे॥
डार पत्रको जो कोइ धरई । बिना मूल सो जीवन तरई ॥
गुप्त मता जो पकरे भारा । आप तरे औरन को तारा ॥
करे विवेक ताहि ठहराई । सोइ पुरुष को पावे भाई ॥
ताहि सन्त थापों परणाली । सदा भरों राखो नहिं खाली ॥
जो प्राणी लीजे ठहराई । हंसराज ते करी है भाई ॥
साखी पद बोलै सब कोई । बिन परिचये मुक्ति नहिं होई ॥
अगम अगोचर गत व्यौहारा । गहो ताहि उतरो भव पारा ॥
यहि धन राख जीवनको जाई । कर बनी जो कछु टूट न आई॥
यह पूजा है अगम अपारा । खर्चहु खाहु बहु बढ़े विस्तारा॥
यह धन मिले भाग बड़ केरा । जब धन सोच गाहक बहुतेरा ॥

साखी

पूञ्जी मेरे नाम है, जाते सदा निहाल ।
कहै कबीर मैं पुरुष बल, चोरी करे न काल ॥

चौपाई

जो जिव है निज नाम समाना । भये मुक्त जो लोक सिधाना ॥
सोई हंस का तुम सत लेखो । अक्षर माहिं निरक्षर विवेको ॥

धर्मदास वचन

कहैं धर्मदास सन्त के दासा । गुरु मेटो मेरो जमको त्रासा ॥
नाम निःअक्षर कहो उतपानी । आपै तैं कैसे के जानी ॥

सद्गुरुवचन

कहें कबीर धर्मदास सुजानी । अकह हतो ताही कहो बखानी॥
जब नहिं लोक दीप विस्तारा । तब नहिं सुकृति करी संसारा॥
तब नहिं धरती अमर सुमेरू । तब नहिं हतो अमल औ कुवेरू॥
तब नहिं सृष्टि सकल पसारा । आप अकह तब हता निनारा ॥
सकल सृष्टि उतपन कछु नाहीं । तब सब उतपन कहा सब नाहीं॥
हते आप तब शब्दहिं स्वाला । इच्छा भये कीन्हे उजियाला ॥
इच्छा ते अनहद ध्वनि बानी । सुरत संभार सृष्टि उतपानी ॥
सुरत भीर तेहि माहिं समानी। इच्छा तें अनुभव उतपानी ॥
तब ते अक्षर भेद निनारा । साखी पद कीन्हा निरवारा ॥
अकह अचल पुरुषहिं तहां आपू। नहिं दुख सुख नहीं सन्तापू ॥
सबका मूल ताहिं सों लागी । उलट समाय सोई बड़ भागी ॥

साखी—कहें कबीर जो शब्द लखि, रहें सुर्त लौलीन ।
कबीरा सुर्तके समय, निश्चय लोकको चीन ॥
जाके चित अनुराग है, ज्ञान मिले नर सोय ।
बिन अनुराग न पावई, कोट करे जो कोय ॥

चौपाई

सत्य शब्द जो आवे हाथा । सकलो काल नवावे माथा ॥

साखी-काल खड़ा सिर ऊपरे, काल नजर नहिं आय ।
कहें कबीर बल आपने, जम से जीव छुड़ाय ॥

चौपाई

नाम अमर मलयागिर भाई । पीवत विष अमृत हो जाई ॥
निशि दिन रहे मलयागिर संगा । विश न लगे सो तिनके अंगा ॥

साखी—काल फिरे शिर ऊपरे, हाथों धरे कमान ।
कहे कबीर गहु नामको, छोड़ सकल अमान ॥

चौपाई

नर नारी जो गर्भहि धरहीं । नाम विना पुन नर्कहि परहीं ॥
सुनो संत हो शब्द रसाला । गहो ताहि जो हो उजियाला ॥
जाके जिव निज नाम समाना । ता कहँ काल अमर कर जाना ॥
विनती कर पूछे धर्मदासू । दोइ कर जोर रहें गुरु पासू ॥
सतगुरु कहैं सुनो धर्मदासा । शब्द बान लेव हमरे पासा ॥
मैं गुरु भयो शब्द मोर हाथा । सब घटवाइ नवावें माथा ॥

साखी–भाग बड़े तेहि जीवके, आय मिले मो संग ।
पुरुष मिले वहि बाँह धर, सुख विलासे एक ॥

चौपाई

जब हम रहे पुरुष के माहीं । काहि कहों कोउ दूसरे नाहीं ॥
कहे कबीर सुनो धर्मदासा । होय निःशंक मेटा जमत्रासा ॥
मेटो भर्म होय निःशंका । काय गढ़ जीत बजावे डंका ॥
भयो प्रकाश गुरु भेद बतावा । जीव बोध सतलोक पठावा ॥

साखी–जमराजा बड़ दारुण, महा विकट ब्रह्मंड ।
ताके डंका सुनत ही, भय माने नव खंड ॥
नाम खड्ग दृढ़ राखहु, गहो, सुर्त सम्हार ।
काल सो जीव उबारिके, पठवहु भव जलपार ॥

चौपाई

जबते अजर पुरुषको चीन्हा । तबसों काल भये बल हीना ॥

साखी–यहाँ वहाँ कहि जीव छुड़ाये, काल रहे सिर सांध ।
सुर्तसमावे चेतन चौकी, रहे न जमके बांध ॥
आदि नाम तेहि पुरुषके. सुनत तजहि अभिमान ।
कहै कबीर सुनो हो संतो, तजो नरकको खान ॥

चौपाई

कासों कहों कहा नहिं जाई। मेरी गत मत बूझ न पाई ॥
हमहिं दास दासन के दासा। अगम अगोचर हमरे पासा ॥
यहां वहां यदि दोनों ठाऊँ। सत्य कबीर कलिमें मोर नाऊँ॥
जो न हते हमहीं पुन सोई। नाम विना भूले नर लोई ॥

साखी-कोटि जाय संसारमें, ताको मुक्त न होय।
आदि नाम है मुक्तका, जाने बिरला कोय ॥

चौपाई

गुप्त जाप है अगम अपारा। ताहि जपै नर उतरे पारा ॥
मुक्ति न होवे नाचे गाये। मुक्ति न होई मृदंग बजाये ॥
मुक्ति न हो साखी पद बोले। मुक्ति न हो तीरथके डोले ॥
गुप्त जाप जाने जब कोई। कहे कबीर मुक्ति भल होई ॥
संत सुभाग गुरु दाया कीन्हा। आदि नाम हंसनको दीन्हा ॥

साखी-सोई नाम संसार में, उदित अमोल अपार।
ताहि नाम विन मुक्ति नहिं, बूड़ि मुआ संसार ॥

चौपाई

कथा कीर्ति कहुँ गदगद बानी। मुक्ति न होय विना सहिदानी॥
केता कहो कहा नहिं जाई। नाम गहेसो पुरुष मिल जाई॥
सार शब्द परवाना देहैं। जीव छुडाय काल सो लेहैं ॥

साखी-फनपति बीरन देखके, राखे बनहिं सकोर।
बीरा देखे नामके, काल रहे मुख मोर ॥

चौपाई

सोहं शब्द निरक्षर वासा। ताहि भिन्न कर जपिये दासा॥

साखी-जो जन हैहैं जौहरी, सो धन लैहैं गाय।
सोहं जाप सब जगतए, मिथ्या जन्म गमाय ॥

साखी पद संसार में, कहन सुननको कौन।
चीठी आई पुरुष की, सो धन लैहो चीन॥
जो जन ह्वहै जौंहरी, तो कहनेका जोग।
बिन सतगुरु ना पावई, भटक मुये सब लोग॥

चौपाई

जब बानी मुख बाहर आवा। भाग बड़े तिनही पुनि पावा॥
कोट जतनके जीव समुझावा। बिना भागते नाम न पावा॥
गुरु गम लहैं सन्तके पासा। सो नहिं परें कालके फांसा॥
जो कहँ पुरुष अपन कर जाना। सोई भक्त अन्तर्गत ठाना॥

धर्मदास वचन

धरमदास कहैं कर जोरी। बंदी छोड़ बिनती सुन मोरी॥
तब साहब अस बोले बाती। लेउँ छुड़ाय राखों निजसाती॥
तुमको दीन्हीं भक्ति अपारा। नाम जपो तुम अजर हमारा॥
जो ना बूझे कहा न करई। मुक्ति न होय नरकमें परई॥
श्रवण माह कहँ दीन्हें भाई। तो न विवेकै आ बैठाई॥
नाम सुने मोर मो कहँ पावें। जाम जालिम तेहि देख डरावें॥

साखी–सब कहँ नाम सुनावहु, जो आवे तुव पास।
शब्द हमारा सत कहत हों, दृढ़ मानो विश्वास॥

चौपाई

जो जन गृह तजि ले वैरागी। जहां जाय तहां संगे लागी॥

साखी–मूल के कान जो लागे, रहे रहन ठहराय।
वह साधू भर्मे नहीं, सो नहिं नरकै जाय॥
कहै कबीर तज भर्म पिटारी, नान्ह होयके पीव।
तज अभिमान गहो गुरुचरण, जमसों बाचे जीव॥

चौपाई

आदि नाम निःअक्षर नीरा । तीन नाम लैं जीवहि तीरा ॥
आदि नाम लै पंच चलाई । सोइ सन्त प्रमान कहाई ॥
थापो ताहिं दऊं ठकुराई । जबलग रहही मोर दोहाई ॥
गहि मोर नाम मोहि माहिं समावे । और नामते मोहि न पावे ॥
सोई नाम सन्तन सहिदानी । आप मिलै लेवै पहिंचानी ॥
उदितनाम निरभय उजियारा । ताहि नाम सो जीव उबारा ॥
कहैं धर्मदास सत गुरु सुनलीजे । अगम पंथ को कैसे दीजे ॥

सद्गुरु वचन

कहैं कबीर पूछेउ भल आई । अगम पन्थगम कहौं बुझाई ॥
अगम पन्थ है विकट विकारा । तासों कबहुँ न होवे पारा ॥
शीतल शब्द लेहिं सहिदानी । उतर जाहि कछु शंक न मानी ॥
जाय मिले पुरुषहिं के पाहीं । जेतिक जीव तुम्हारे बाहीं ॥

धर्मदास वचन

अनहद शब्द बहुत विस्तारा । कैसे पैहैं भेद तुम्हारा ॥

सद्गुरु वचन

आदि नाम पुन तहवाँ होई । नो मत बूझे विरला कोई ॥
सुरत परम होवे गलताना । ताको मिले निजपद निर्वाना ॥
सुरत बांध जब गुरुहिं समावे । वस्तु अगोचर तबहिं पावे ॥
तज अभिमान मिले जब आई । ताको दीजे ऐन दिढाई ॥
सब तज रहै रहन ठहराई । औ छांड़े सब लोक बड़ाई ॥
ताको दीजे वस्तु अपारा । कहैं कबीर सुन शब्द हमारा ॥
गलत गरीब रहनसे भारै । तन मन धन सन्तनपर वारै ॥
लोक लाज कुल तजै बड़ाई । तब पग परस भर्म मिटजाई ॥
विन विश्वास भक्ति परकाशा । प्रीति बिना नहिं दुविधा नाशा ॥

गुरु से शिष्य करे चतुराई। सेवा हीन नरकमें जाई॥
संतन वारें तन मन धामा। सोई संत मरें मम नामा॥
साखी–होय विवेक शब्दके, जाल मिले परवार।
नाम गहे सो पहुँच है, मानो कहा हमार॥

चौपाई

नाम उदित सो संत पियारा। मारों काल होय जर छारा॥
जिन जिन नाम सुने हैं काना। नर्क न परे होय मुक्ति निदाना॥
आदिनाम जेहि श्रवणन नाहीं। निश्चयसो जिव जम घर खाहीं॥
सुमरो पुरुष काल डर कंपा। भौमाने नाहीं सिर चंपा॥
नाम निरक्षर सुधि जब पावा। कालअपबल निकट न आवा॥
साखी–आदि नाम हैं पारस, मन हैं मैला लोह।
पारस परस उजियार भये, छूटे बंधन मोह॥

चौपाई

कहँ लग कहौं कहन नहिं पारा। नाम गहे सो संत हमारा॥
आदि नाम जस सार के गौसी। लागे बान ठाव रहै वैसी॥
साखी–सतगुरु मारे बान भर, डोले नहीं शरीर।
का चाबुक वह कर सके, सुख लागे वह तीर॥
गाँसी लागे सुख भये, मरे न जीवे कोय।
कहें कबीर अमर सो प्राणी, जो नहि मृतक होय॥

चौपाई

लागे जहाँ वस्तु सो पावा। बिन लागे को भेद बतावा॥
नाम अमर रस चाखें कोई। ताको जरा मरन नहिं होई॥
अक्षर गुप्त सोई मैं भाषा। और शब्द ख्याल अभिलाषा॥
साठ सुन्नके सुने जो भेऊ। यह गति जाने विरला केऊ॥
पाताल सुन्न है बारह खंडा। बारह सुन्न कहों ब्रह्मंडा॥

बारह सुन्न आकाश बताई । बारह सुन्न पुरुष के ठाई ॥
बारह सुन्न कहो अनुमाना । कहें कबीर गुरुसे हम जाना ॥

साखी-अकह मूल सब सुन्नके, सुन्न सकल ब्रह्मंड ।
तहवां से बस्ती भई, सात द्वीप नव खंड ॥

चौपाई

चार पदारथ एक पथ माहीं । बिन गुरु नर कहँ बूझे नाहीं ॥
अदेख देखे कथा जो कथई । आप परस दोऊ ता मथई ॥
कथनी कथे प्रतीत दृढ़ाई । मथनी शब्द अभय पद पाई ॥
जब देखे औरे नहिं माने । तज पाखंड सत्यको जाने ॥
तहां संत को लैं जमरावे । जाके जीवसहिदानी पावे ॥
सो जाने पुन हमार ठिकाना । ता कहँ दीजे निज सहिदाना ॥
नाम अमर रस मनुवा पागे । होय लौलीन तहां सो लागे ॥
गहि पकरे नर सुर्तकी डोरी । तासों काल करे नहिं चोरी ॥
दृढ के मनवां आदि जो थीरा । कहें कबीर सो सांच फकीरा ॥
सत्य समोय झूठ परहरई । दाग न लागे सत्य सो तरई ॥
जाकहँ गुरु आपन कर लीन्हा । नाम नेति हंसनको दीन्हा ॥
जे तन गुरुके नाम समाना । भक्ति हेत सोई सब जाना ॥
जबलग भक्ति अंग नहिं आवा । सार शब्द कैसे के पावा ॥
सत्य नाम श्रवणन में बोषे । ज्यों माता बालक कहँ पोषे ॥
जहां गुरु भक्त तहां लौ लावे । सुने जु वाह मुक्तिगत पावे ॥

साखी-सुर्तसमानी नाम है, जगमें रहे उदास ।
कहें कबीर निज नामही, दृढ राखे विश्वास ॥

चौपाई

जाके उर विश्वास न आवे । भक्ति अंग सो कैसे पावे ॥
सुरत दृढाय निसदिन तहँ जागे । मुक्त होय कछु बार न लागे ॥

चढ़ी निशंक मन मगन रहा था । सो नहिं कैरै कालके हाथा ॥
जो जिव माया सों लौ लावा । गहे काल मुख बात न आवा ॥
सोई सन्त समाधी मारी । जाके जीव सहिदानी डारी ॥

साखी–गुरुके शब्द साधुकी पूँजी, बणिज जाने जो कोय ।
कहैं कबीर तो बढ़े सवाई, हानि न कबहूँ होय ॥

चौपाई

जबलग सार नाम नहिं आवे । तबलग प्राणि मुक्ति ना पावे ॥
सार नाम बिन सीपके मोती । उपजे बहुत बिना हर खेती ॥

साखी–येहि विधि करे किसानी, पाता तल बल होय ।
भक्त मिले कोइ वीरला, दाम देय सब कोय ॥
मूलहा मोर नाम हैं, दरगाहे गुरु मान ।
सब सन्तोसों लिये फकीरी, डार सकल अभिमान ॥

चौपाई

आदि नाम जे संतनमाहीं । जमका करे निशंक डरनाहीं ॥
आदि नाम है अक्षर माहीं । गुरु विन नर्क पुन छूटे नाहीं ॥
सोहं में निः अक्षर रहाही । विन गुरुके कौन देइ लखाई ॥
चीन्हे परे आवे विश्वासा । लोक वेदकी छूटे आसा ॥
चीन्हे आदि निःअक्षर वानी । छूटे भर्म होय ब्रह्म ज्ञानी ॥
कहैं कबीर सन्त सोइ भागी । जाके सुर्त निरंतर लागी ॥
नाम चिन्ह पै कहों पुकारी । नातर बूड़े गैल मझधारी ॥
कहों शब्द मानो नर लोई । आदि नाम विनमुक्ति न होई ॥
गुरुके कहे मैं कहों सँदेशा । नाम लेवे सो पहुँचे देशा ॥
गुरुके शब्द जो माने नाहीं । मुक्ति न हो बूड़े भवमाहीं ॥

साखी–जम ग्रासे बल बांधे, कहों पुकार पुकार ।
गुरुकी त्रास न होति तो, खाते उनको फार ॥

चौपाई

जाको होय गुरुको विश्वासा । निश्चय जाय पुरुषके पासा ॥
नर प्राणी कीजे इतबारा । गुरुके कहे मैं करों पुकारा ॥
कहे कबीर मिलन बिन आशा । मिलन भये भेंटे विश्वासा ॥
निशिदिन रहे निजनाम समाना । तब जाने भजनी परवाना ॥
यह सब कहों परमारथ काजा । यही पाखंड नर अरुझेबाजा ॥
अक्षर आदि निज नाम सुनाऊँ । जरा मरनके भर्म मिटाऊँ ॥
सोहं के संग आये संसारा । सो गुरु दीजे मोहिं उपचारा ॥
ताको भर्म जान जो पावा । सो साधू जगमें नहिं आवा ॥

साखी-यह अवसर नहिं पावहीं, पलमें लेहु उबार ।
भवसागर तर जायंगे, क्षणमें लेहि ऊबार ॥

चौपाई

गुप्त मता पावे जो कोई । गेही तज वैरागी होई ॥
अकह वस्तु तब निज के पाई । तब पाखण्ड कछू नहिं आई ॥
अजर पुरुषको खोजहु प्रानी । कहे कबीर कोई सन्तसमानी ॥
आदि नाम सो सुरत समावे । निरभय मुक्ति अमरपद पावे ॥
गुरुके शब्द जीव दृढ़ करई । सोई सन्त भवसागर तरई ॥
मनके सुख बूझे भर्म फांसा । बूझ जाय न हो सुख बासा ॥
सुरत सम्हार कहत हम तोहीं । पीछे दोष न आवे मोहीं ॥
आदि नाम जो अमीरस चाखे । पांच पचीस बांधके राखे ॥

साखी-प्रेम पन्थ जे पग धरे, देत न शीश डराय ।
सपने मोह न व्यापे, ताको जन्म नसाय ॥

चौपाई

तन मन धन सन्तन परवारा । सोई सन्त निज हितू हमारा ॥
का कहँ अमर भरी मैं देऊँ । तेहि सन्तनको निकट बोलाऊँ ॥

सोइ संत सतगुरु सुखदासा। अजर पुरुष जहां अजर प्रकाशा॥
अनन्त कोट जाको पार न पावे। को अस दूसरे गुरू कहावे॥
हम तुम नारि पुर्ष सब मांहीं। जहां है सोहं तहां हम नाहीं॥
ताहि खसम चीन्है नर लोई। तन धर प्रगटे पुरुष न होई॥
अकह अमान पुरुष जब रहेऊ। नाम निःअक्षर तासों भयेऊ॥
ताहि नाम को सुमरे कोई। सुर नर मुनि इन्द्री वस होई॥
अधर पियाला पिय रस सांचा। ऐसी रहन रहे सो सांचा॥
पियत अमीरस अधिक सुहाये। अधिक पिये पुनित्रास नसाये॥

साखी-पांच पचीसों तीन गुण, एक मिहलमें राख।
आदिनाम अनभय उच्चरो, तन मन धन सो चाख॥
धन परखे धनवन्त जो, ज्ञान दृष्टि जो होय।
आंधे गुरु विन ना सुझे, कोटकरे जो कोय॥

चौपाई

कहे कबीर भर्म जब छूटे। मुक्ति भली सांची कर लूटे॥
कहेऊं उपचार कछु परदा नाहीं। विन गुरु नरको सूझे नाहीं॥
कथनी कथे कथे का होई। गुरु विन मुक्ति न कबहूं सोई॥
शब्द रूप हमहीं होय आये। हमहीं होय कडिहार कहाये॥
हमहीं नाम प्राण यह माहीं। हमहीं सन्त मर्द तेहि पाहीं॥

साखी-ज्ञानदीपक सुरतकी वाती, दीनो संतन हाथ।
दीपकलेके खोलिये, निस दिन सतगुरु साथ॥
ज्ञान दीपक प्रकाशके, भीतर भवन उजाल।
तहां बैठ पुरुषको सुमरो, सहजै होय निहाल।

चौपाई

सो भजनी सबसी से ऊँचा। जोई अमर औ मतका ऊँचा॥
यहि विधि भजन करे जो कोई। तीन लोकमें वास न होई॥

लोक वेद कर्म भरम नसावे। होय सुदृष्टि प्यासको पावे॥
यह संसार अस कर जाने। सत्य पुरुषको जो पहचाने॥
कहैं कबीर या तनको सोधो। पांच पचीस तीनको बोधो॥
एक नाम बिन जग जस श्वाना। कोट करे नहिं मुक्ति निदाना॥

साखी—कहैं कबीर ये सब मुए, लहिं विषधरकी धार।
जो जीव सतगुरु पावैं, ते जीव जगसे उबार॥

चौपाई

बिरला जन कोई भक्तिहि लहई। जो थिर होय तो भक्तिही कहई॥
आपही पुरुष और सब नारी। सेवक भये सकल देहधारी॥
अचल अमान जो अकह कहावा। ताकी गत विरला जन पावा॥
आदि पुरुष को बिरला पावा। ब्रह्मा विष्णु शिव पार न पावा॥

साखी—अमृत वरण ये सूरत, ताहि कहों गुण पेख।
गुरुकी दाया सो लखे, सुरत निरतकर देख॥

चौपाई

निः अक्षर निर्गुण सो जाने। और सकल जग गुण नहिं आने॥
तीनों गुण लै सर्गुण बोले। निर्गुण तनके माहीं डोले॥
आदि नामसों सब जग बांधा। आदि नाम जाने सो साधा॥
आदि नाम तहां अक्षर धारा। ताहि नाम लै सब विस्तारा॥
आदि नाम देव शंकर भयऊ। और नाम है नरके सुभाऊ॥
पद साखी निश्चै कर जाने। आदि नाम कहँ मूल बखाने॥
मूल मंत्र जाने सो कोई। ताको आवागमन न होई॥
भूले लोग कहैं हम पावा। मूल वस्तु विन जन्म गमावा॥
प्रेम अभागी मूल नहिं जाने। डार पत्रमें पुरुष बखाने॥

साखी—अचर पुरुष एकै रहै, अजर दीप है स्थान।
कहै कबीर सर्वांग विराजे, ताहि पुरुषको जान॥

चौपाई

निःअक्षर पावे नहिं सोई । कैसे के स्थिर प्राणी होई ॥
जब लग गुरुसों करे न नेहा । तबलग प्राणी प्रेतकी देहा ॥
आदि नाम अमृत तन पावा । जाति पांति कुलधर्म नसावा ॥
आदि नाम है गुप्त संसारा । जो पावे सो होय हमारा ॥
संत कुल तोर भर्म कुल तोरे । संत साधु सों नाता जोरे ॥
तज पाखण्ड वैरागी होई । अपने पिया को पावे कोई ॥
साखी-कहो काल का कर सके, पुरुष नाम जेहि पास ॥
निर्गुण निंदक पच मुए, गुरुका नहीं विश्वास ॥

चौपाई

पुरुष नाम जेहि परिचय होई । सब भेषन में गुरु है सोई ॥
ताकी महिमा अगम अपारा । लोक वेद तज भये नियारा ॥
अचल पुरुष जो अचलहै देशा । आदि नाम लेकर परवेशा ॥
जाहि वस्तु में मिटे दुख द्वंदा । सुख सागर तहां प्रेम अनंदा ॥
अगुण सगुण होइ झगरा बाजे । दोउ दलतजिके पुरुष विराजे ॥
कहें कबीर या भक्तिके मूला । अकह अमान अचल अस्थूला ॥
अब्रण वरण सो भेद निनारा । घट घट वसे लिप्त तनधारा ॥
ताहि पुरुष को चीन्हें प्राणी । घटमें रहे निकस ना जानी ॥
तबही कहिये खसम खुदाई । कौन कपट से आवे जाई ॥
कौन पुरुष में रहे समाई । सो प्रभु है संतन सुखदाई ॥
यह सब धन अनुभवकी वानी । खोजी होके सो पावे प्रानी ॥
देख परख आवे विश्वासा । अगुन सगुन के सबै तमाशा ॥
सत्य शब्द कहि दीन्ह सँदेशा । जरा मरन का मिटे अँदेशा ॥
संत संदेश गुरु मोहीं दीन्हा । जे जन होय ताहिको चीन्हा ॥
कहै कबीर है वस्तु अपारा । ताहि वस्तु गहि उतरे पारा ॥

मूल मंत्र सब मथिके बूझे । अगम अगोचर तब कछु सूझे॥
जो जो वस्तु दृष्टि में आवे । सोइ वस्तु काल धरि खावे ॥
यह धन मिले देखे प्रणधारी । ताको दीजे भेद विचारी ॥

साखी—बिन देखे बोले जस, अंधरा हाथि परेख ।
बलिहारी वहि सन्तकी, निरख परखके देत ॥

चौपाई

तन अभिमान सब सबही धरहीं । मूल मन्त्र कैसे लख परहीं ॥
होय नहिं दास धरे अभिमाना । ताहि न दीजे अनुभव ज्ञाना ॥
मुक्ति भये संतन हित कीन्हा । मुक्ति भली प्रकट कहि दीन्हा॥
कहें कबीर तेहि की बलिहारी । पुन अनुभव मैं कहों पुकारी ॥

साखी—समझाये समझे नहीं, धरे बहुत अभिमान ।
गुरुके शब्द उच्छेदके, कहत सकल हम जान ॥

चौपाई

बोले बचन बहुत विस्तारा । आदि नामविनघटे अँधियारा॥
पुरुष न चीन्हें फिरे भुलाना । निश्चय परे सोइ नर्क निदाना ॥
एक नाम बिन पार न पावे । मिथ्या प्राणी जन्म गमावे ॥
देख परे सोई सब भाषा । और कहनकी है अभिलाखा ॥
जाकर सज घट करे समाई । ताते साधू देहि लखाई ॥
अधिक भरे ऊँचे से सींजे । सो माया जो रुच रुच पीजे॥
और सींचे अनुभव धन देखे । और सकल मिथ्याधनलेखे ॥
हरष शोक दोऊ परिहारे । होय मगन गुरु चरणै धारे ॥
अजर अमर सो अकह कहावे । जो धन मिले सो संत कहावे॥

साखी—यह धन पूजी गुरूकी, भाग बड़े जिन पाय ।
कहें कबीर आय नहिं टोटा, नित खरचे अरु खाय ॥

चौपाई

यह ना आवे अमर प्रकाशा । जो धन खोजहु धनके पासा ॥
यह धन मिले होय बड़ भागी । सोई सन्त पग वैरागी ॥
करै निवेक वस्तु है न्यारी । यह सब है सपनेकी ब्यारी ॥
ताहि गहे नर सुरत सम्हारी । सोई सन्त पूरा हितकारी ॥
बारा राशी मन्त्र चौबीसा । यह सब है सपनेको ईसा ॥
बिन परचै नर आइ जो करई । निश्चय जाय नरक सो परई ॥
जो नहिं मोक्षके शब्द विचारा । तिनहिं काल ले करै अहारा ॥
सारा नाम बिन मुक्ति न पावै । बूड़ मरे पुन थाइ न आवे ॥
निंदक नरक परै नहिं तरई । चार खुंट में भर्मत फिरई ॥
देह धरे नहिं सुर्त हढ़ाई । उपजत बिनास चौरासी जाई ॥

साखी-भर्म जाल संसार है, सब अरुझे भव भीत ।
कोई कहें जन एक है, मनमें राखो मीत ॥
चरणामृत जो पायके, दृढ़ राखे विश्वास ।
निर्भय मुक्ति पाईये, पहुँप दीपकी वास ॥

चौपाई

सुर्त दीपकी अकथ कहानी । अगम अगोचर अनुभव वानी ॥
अकह सुर्त जहँ अगम अपारा । ताहि गहे उतरे भव पारा ॥
लखे अंक जो अकह कहानी । अगम अगोचर अनुभव वानी ॥
तजै पाखण्ड सोई निर्वानी । सोई सन्त कहावे ज्ञानी ॥

साखी-पुरुष सार सों न्यार है, दीखे सबहिन मीत ।
ज्ञानदृष्टि में जगसों छुटे, जो जन प्रेम पुनीत ॥
कहें कबीर दरसाये, जाके उर निश दिन रहै ।
सोई करे गुरुवाय, झक मारे संसार है ॥

चीठी उतरे दूरसौं, ताके सिर वैराग।
नाम गहे पुरुष पावहीं, तब गुरु प्रगटे भाग॥

चौपाई

पावे वस्तु मगन होय रहई। चढ़े ना उतरे लाख जौं कहई॥
होय निशंक नहिं चित्त डुलावे। जो जेहि सुर्त धरे सो पावे॥
अकह अमान पुरुष है सोई। तन धरि प्रगटे पुरुष न होई॥
मूल वस्तु पावे बड़ भागी। देखिये साखो पदमें नागी॥
कहि न जाय अकह को देखा। गुरुकी दया सुर्त सो पेखा॥
साखीपद के तहां न काजा। आप मिले सोइ सेश विराजा॥
अनुभव शब्द जहाँ ठहराना। को कह सके न जाय बखाना॥
देख परख आवे परतीती। तब जैहै चौरासी जीती॥
तहां नहीं तुम दुतिया भाऊ। आप मेटु तबही सब गाऊ॥
वहां बैठ अमृत फल पाऊ। जब निःशंक बहुर नहिं आऊ॥
गुरु के शब्द हृदय मो आना। ता नरकी भइ मुक्ति निजजाना॥
कोटि असुर की राई आवे। दृढ़ विश्वास सन्त जेहि पावे॥
कहें कबीर है शब्द सुहेला। गुरु पूरा सूरा होय चेला॥

साखी-गुरु पूरा शिष्य सूरा, बाग मोरि रन पैठ।
सन्तसुकृत कहँ चीन्हके, तब तख्त पर बैठ॥

इति मुक्तिबोध समाप्त

सत्यसुकृत, आदि अदली, अजर, अचिन्त, पुरुष, मुनीन्द्र, करुणामय, कबीर, सुरति योग, संतायन, धनी धर्मदास, चूरामणिनाम, सुदर्शन नाम, कुलपति नाम प्रबोध गुरुबालापीर, केवलनाम, अमोल नाम, सुरतिसनेही नाम, हक्कनाम, पाकनाम, प्रकट नाम, धीरज नाम, उग्र नाम, दया नामकी वंश-व्यालीसकी दया

अथ श्रीबोधसागरे

★

षोडशस्तरंगः

श्रीग्रन्थ चौकास्वरोदय

★

प्रथम प्राण योग जो भाखा । कारज सिद्ध जो बाहर राखा ॥
प्राणायाम भेद सबहीको सारा । कारज सिद्ध वेद व्यवहारा ॥
सोई सरूप इम आनि निर्मांये । आधेको नर आधकी नारि बनाये॥

सो स्वरूप हैं आदि निशानी। सत्यस्वरूप सो जीव समानी॥
प्रथमशब्दसुरतिस्मृति निर्माया। जितने वेद और लोक बनाया॥
द्वुतिये इच्छा अंकुरकू कीन्हाँ। उत्पति प्रलय सौंपि सब दीन्हाँ॥
तृतिये माया मन विस्तारा। तिनके बीज जीव संचारा॥
चौथे सुर चंद्रहि परकाशा। शुक्र भेद तिहि माँहिं निवासा॥
पाँचयदिवशरातऔरतिथीपसारा। तापर सूर्य चन्द्रकी धारा॥
एक नारि एक पुरुष कहावा। चन्द्र सूर्यनाम तिन पावा॥

साखी–तिनको भेद शरीरमें बरतै, पांच तत्व निजसार।
कहैं कबीर सोई लखै, पूर मिलै कडिहार॥

चौपाई

काया भर्म भेद अधिकारा। नीर पवन दोइ अस बैठारा॥
नीर नामते उत्पति होई। नीरहि साधै मरै न कोई॥
दुसरा पवन अंगकी धारा। तापर सोहं सुरति बैठारा॥
पवन भेद है अगम अपारा। आदि अन्त सब कीन्ह पसारा॥
पवन डारि स्वासा अवगाहा। विन सद्गुरु पावै नहिं लाहा॥
तापुर सूर्य चन्द्रकी धारा। सुखग चन्द्र औ सूर्यविचारा॥
तिनकर भेद जो न्यारे करऊ। सूर्य चंद्र भेद दोई धरऊ॥
दिन तिथि पक्षसंक्रांति विचारा। तापर पांच तत्व विस्तारा॥
सूर्य उदय संपूरण कहेऊ। भेद अभेद मर्म सब लयेऊ॥
मंत्र उदौछे हि मासको भाजै। सूर्य सनेह सो तहां विराजै॥
पृथ्वी तत्त्वपर सूर्य जो आवै। छै मासको शुभ दिखलावै॥
घरको छांड़ि तत्त्व जो बोलै। प्रलय कालके छत्र जो डोलै॥
जलहि तत्त्वपर अस्थिर होई। ताको कष्ट होय नहिं कोई॥
वायु तत्त्व कीयो विस्तारा। किंचित कारज होय संसारा॥

तेज तत्त्वपर सूर्य सवारा। भीतर बाहर सोग अपारा ॥
जब आकाशतत्त्व जो आवै। होइ भंग सब काज नशावै ॥
शुभहिं अशुभ दोही निरतावै। मकर भेद छह मास बतावै ॥
पक्ष भेद कहऊँ अब सोई। अँधियारा पक्ष सूर्यको होई ॥

मकर संक्रांति

तेहि में सूर्य चन्द्रकी धारा। तीन तीन तिथि कीन्ह विचारा॥
कहिं अँधियारा कहिं उजियारा। रवि शशि मंगलसूर्य सम्हारा ॥
चारि अंक गहि भेद विचारो। धरिकै कृष्णपक्ष निधारो ॥
फिर काया में बैठो जाई। काया सूर्य लहो निरताई ॥

साखी—काया सूरज जब उगै, होय पृथ्वितत्त्व असवार।
तबहि शुक्ल शुभ जानिये, कारज शुभ सौवार ॥

अब मैं कहों चन्द्रकी धारा। कर्क संक्रांति छैमास विचारा ॥
तहाँ जब उदय चन्द्रको होई। अथवत सूर्य उगै पुनि सोई ॥
चलहि तत्त्वपै सूर्य सवारा। छेह मास आनन्द विचारा ॥
घरहि छांड़ि जो बोलै आई। तो कारजसिद्ध होय नहिं भाई ॥
घरमें रहै तत्त्व नहिं होई। देश उपद्रव देखो सोई ॥
पृथ्वी तत्त्वपर चन्द्र सवारा। प्रेमानन्द और ज्ञान विचारा ॥
वायुतत्त्वपर चन्द्रकी धारा। किंचित कारज होय संचारा ॥
तेज तत्त्वपर चन्द्र जो आवै। पश्चिम दिशा कलह उपजावै ॥
आकाशतत्त्वपर चन्द्र सवारा। भीतर बाहर कष्ट अपारा ॥
पृथ्वीमें उदय चन्द्रको कहेऊ। शुक्लहि पक्ष भेद अब रहेऊ ॥
दोई तिथी पक्ष उजियारा। तहांते केवल चन्द्रकी धारा ॥
तामें भेदाभेद विचारा। तीन तिथी चन्द्रसूर्य निर्धारा ॥
सोम शुक्र गुरु बुध जो होई। चन्द्र सनेह चारि दिन सोई ॥
रवि शनि मंगलवार विचारा। तीनहि दिनको सूर्य सिरदारा॥

साखी—दिन तिथी पक्ष संक्रांति है, बाहेर चार विचार।
सबको मूल है याहिमें, सो पूर्ण चन्द्र उजियार॥

परचै चन्द्र कायामें सोई। जो ऊगै तो सब सुख होई॥
जलके तत्त्व चन्द्र असवारा। भीतर बाहर अनन्द विचारा॥
पांचतत्व अब भिन्न जो कहेउ। तत्त्व भेद सब न्यारे रहेऊ॥
जलके तत्त्व सुफल घर चन्दा। प्रेम विलास अती आनन्दा॥
पृथ्वीतत्व चन्द्र जब आवे। सूरज मिले आन उपजावे॥
वायु तत्त्वपर चन्द्र समाई। चित उदास लै गवन कराई॥
तेज तत्त्वपर चन्द्र जो होई। उत्तम मध्मम कारज होई॥
अकास तत्त्वपर चन्द्र सवंगा। शुल्ककारज जो होय अभंगा॥
अकास तेजजल तत्त्वन आवै। करि अकाज तहँ कलह समावै॥

साखी—एते भेद सर्व हैं, चन्द सनेह विचार।
काया चंप शुभ देखि हो, तो शुभशुक्ष विचार॥

बानी भेद

अब मैं कहों बानिका लेखा। ज्ञानी होय सो करे विवेका॥
प्रथम बानि की गिनीजो होई। अण्डज बानी समानी सोई॥
दुसरी बानी विंगन कही। पिंडज बानि मैं बोलै सही॥
तिसरी बानी इंगन जानी। सो उषमजमें जाय समानी॥
चौथी बानी रिंगन आवै। अजल खानिमें जाय समावै॥
पांचवी बानी सिंगन होई। नरदेही मैं व्यापक सोई॥
बानी पांच भेद औ माहा। बिन सतगुरु नहिं पावै थाहा॥
परचै बानी तत्त्वहिं होई। पांचों ध्यान जब आवै सोई॥

ध्यान भेद

प्रथम प्रान ध्यान है भाई। सो कीगनमें लै नितराई॥
दूसर आपनो ध्यानको लेखा। विंगल बानी करै विवेका॥

तिसरे समान ध्यान व्यवहारा । रिंगन वानीको करो विचारा ॥
चौथे उद्याना ध्यानको लेखा । रिंगन वानिको करे विवेका ॥
पांचई बानी सिंगन लेखा । वियान ध्यानसो किन्ह विवेका ॥

साखी-पाँच ध्यान पाँच बानी, पाँचे तत्व विचार ।
पाँच मुद्रा पाँच तत्त्व, पाँचे लग्न घरसार ॥

लग्न भेद

अब मैं कहों लग्न व्यवहारा । बार लगन कीन्हे निरधारा ॥
तिनके लक्षण नाम सुनाऊं । चन्द सूर्यको प्रेम बताऊं ॥
कर्म करोर सूर्यके सोई । शुभ के कर्म चन्द्रते होई ॥
पाँचौ उदय सूर्य जब आवे । पृथ्वीतत्त्वपर जो घर पावे ॥
क्रूरकर्म सब सिद्ध निवासा । तहाँ चलि चौका भेद प्रकाशा॥
मकहि उदय पक्ष अँधियारा । तिथि सनेह बीती नहिं वारा ॥
काया उदय सूर्य है सारा । पृथ्वीतत्त्व होय असवारा ॥
सोई लग्न जमुनी है नामा । विगड़े हंस पहुँचे निज धामा॥
चन्दको वार सूर्य तिथि होई । तांसो जगपति कहिये सोई ॥
तन छूटे तहां जन्मुनि चहिये । और स्नेह जगपतिके कहिये ॥
ऐसे कर्म क्रूरके कहिये । जेतिक हंसके कारज कहिये ॥
बावड़ी विहार कूप तलाई । भोजन मिथुनहि युद्ध कराई ॥
इतने कर्म मैं तुम्हें सुनाई । और कर्म बहुतेरे भाई ॥
संत साधुको एते कहिये । और कर्म अकर्म सब लहिये ॥
क्रूर कर्म हैं चौका सारा । मृतक कर्मको कीन्ह विचारा ॥
चारहुँ वेद भेद हम कहेऊ । सूर्य सनेह भेद निर्वहेऊ ॥
जो कोई पिंड मायामें करही । सूर्य सनेह जीव उर धरही ॥
छुटे कर्म जन्म तहँ धरहीं । दीन मान भोग तहां करहीं ॥
चन्द्र सनेह पिंड नहिं पावे । भ्रमत फिरै अरु काल सतावे॥

कहाँ गया कहाँ नहिं गंगा। बिना सूर्य सब कारज भंगा ॥
जो कोई होय बहुत कडियारा। तुम सुनियो यह भेद विचारा ॥
इतने सूर्य लग्नके लच्छन। तत्त्व विचार सूर्य यह दीच्छन॥

साखी—तत्त्वभेद सब सूर्यको, सो मैं कह्यो बखान।
कहै कबीर धर्मदास सुन, यह टकसार अमान ॥

चन्द्रलग्न भेद

सूर्यभेद हम कह्यो बिधाना। चन्द्रभेद अब कहों प्रमाना ॥
चन्द्रसनेह शुभकर्म बिचारा। कर्कसंक्रांतिते चन्द्र निर्धारा ॥
योगसिद्ध में भेद विचारा। उदयतत्त्व जल चलै मँझारा ॥
छहै मासको शुभ है सोई। इतनो भेद कर्कते होई ॥
पक्ष चन्द्रको है उजियारा। तापर केवल चंद्रकी धारा ॥
दोई तिथि चंद्र सूर्य समाई। तीन चन्द्र तिथि सूर्य बताई ॥
चन्द्र सनेह जो वार है चारी। सोम शुक्र गुरु बुद्धि विचारी ॥
कायाचन्द जब ऊगै आई। तब सब उदय चंद घर पाई ॥
नाघट उदौ तो सर्व अभंगा। करत कार्य सब होई है भंगा ॥
जल तत्त्वपर चन्द्र असवारा। कार्य सिद्ध होई इसवारा ॥
पाँचों स्नेह चन्द घर आवे। तब पूनो संपूरण पावे ॥
ताहि लग्नको प्रतिमा नाऊ। अखंडित चंद्र बरते सब ठाऊ ॥
ताहि लग्न सिख बोधौ जानी। चौकाविधि कीजे विलखानी ॥
सोई अंकुरि जो हंस हमारा। जिन यह स्नेह चौका विस्तारा॥
सोई लग्न गहि नरियर मोरौ। जिमि कालसो तिनका तोरौ ॥
शुभकर्मके कहेउ परमाना। और कर्मके कहौं विधाना ॥
प्रथममें चौका जग विस्तारा। दान पुण्य होम जग सारा ॥
बाग वृक्ष फूलहि फुलवारी। यहि मठ जात्रा सैन्य अचारी ॥
राजदर्शन बनिज व्यवहारा। स्नान ध्यान गुरुनेम अचारा ॥

औषध मूरी विवाद सगाई । सर्व पहेर अरु छत्र बेठाई ॥
शुभही कर्म चन्द्रके ऐसे । लक्षण देखि चलो तुम तैसे ॥

साखी—चन्द्रकर्म शुभ सब कहे, गुण निर्गुण निर्धार ।
और भाव तो बहुत हैं, कहैं कबीर विचार ॥

चौपाई

अब सुनियो कछु आदि निसानी । चारौ लग्न कहों बिलछानी ॥
प्रतिमा चन्द्र लग्न है सोई । जमुना उदयसूर्य निज होई ॥
जो तिथि चन्द्र सूर्य दिन आवे । निश्चय लग्न जेपति तहाँ पावे ॥
जो तिथि चन्द्र सूर्य है बारा । जगपति लग्न सूर्य संसारा ॥
वार लग्नमें कालको फंदा । धरै नाम जिव करे निकन्दा ॥
सोरहे पारस लगन विचारा । चौदहकी राति लखि बटपारा ॥
जगपति भेद लग्नसों नेहा । लग्नसूर्यके ग्रहन सनेहा ॥
जगपति लग्न सूर्यके होई । नेहर चन्द्रको भासे सोई ॥
दोई लग्नको भेद न पावे । जमुनी प्रतिमा हंस मुक्तावे ॥

चारि चौकाको प्रमान

चौका चारको सुनहु विचारा । भिन्न भिन्नके कहों निरधारा ॥
प्रथम चौका जन्मको कीन्हा । अंश सोरह नारियर लीना ॥
सोरह धोती और असी सुपारी । लौंग इलायची ले समधारी ॥
दो हजार पान बीससेर मिष्टाना । सोरह हाथ चन्दवा ताना ॥
दसै रती सोननके खरीषा । सोरह मासा धरे जो रूपा ॥
दलकी अन्नतिटकासोर भारसेही । भरि भांडे एक थारी लेही ॥
इक लोटा इक बेला लेई । इक झारी आब रखि देई ॥
बच्छा सहित ही गाय सुपेता । इहिविधि चौकाकर बहुहेता ॥
पहिले कर्म सब जाई जराई । इहिविधि चौका करे बनाई ॥
तन मन धनसों पीत लगावे । सोवा सत्यलोकमें जावे ॥

प्रथम चौका विधि

अब मैं कहों एकतरी बिधाना । एकोतरिनारियलचौका प्रमाना
लौंग इलायची धोति सुपारी । इकतोरी सब वस्तु विस्तारी॥
पान मिठाई अवर पकवाना । इकोतर सह सबको बंधाना ॥
दश अरु कमल आरतीसाजा । मुखसों जपैं इकोत्र समाजा ॥
इकोतर जन्मके पाप नसाई । कर्म अकर्म सबै मिटजाई ॥
निर्मल हंस हिरम्मत देही । पहुँचे जहँही पुरुह विदेही ॥

द्वितीय चौका विधि

अब सहेज चौका कहोप्रमाना । जीवसंग एकनरियल बंधाना ॥
अस नारियल सम धरही । विना मंत्र नहिं चौका करही ॥
छठै मास चौकाकी पूजा । छाँड़ि चौका पूजै नहिं दूजा ॥
छटे मास नहिं पहुँचे भाई । बरस दिनामें विसरिन जाई ॥
जो जीव शिष्य हमारा होई । हमही पूजी पूजे नहिं दोई ॥
दोई पूजी बहुत दुख पावे । तन छूटे जमकाल सतावे ॥
ममता फिरै कहूँ ठौरैं न पावे । फिरि फिरि जक्तहि देह धरावे ॥
दुख अरु सुख दोनूं भुगतावे । एकहिनाम पुरुषको गावे ॥
लोकजात बार नहीं लावे । चौका सहजिहि भाँति करावे ॥

चालवा चौकाविधि

चालवा चौका कहौं विचारा । बाहर नरियलले विस्तारा ॥
आठ सुपारी पन्द्रहसौ पाना । लौंग इलायची लै बंधाना ॥
पन्द्रह सेर मिठाई ले आवैं । बारह धोती आनि जढ़ावैं ॥
पाँच भाँड़े धातुके होई । सोरह हाथ चन्दोवा सोई ॥
पाँच खंभको मण्डप गढ़ावे । नये पुराने वस्त्र मँगवावै ॥
सो परदा गहिरैके देई । गीत मंगल कर माटी लेई ॥
तिहि माटीकी वेदि बनावे । वाँछा सहित जुगाय चढावै ॥

साधु सन्तको भोजन करावै । पन्द्रह सेर पकवान चढ़ावै ॥
चार पहर सब साज जो करही । सोरह सुलकी पोसी धरही ॥
चार पहर निस बैठक करही । सूर्यस्नेह चौका बिसतरही ॥
सुरती सुरत सूर्यपर जोरै । पृथ्वी तत्त्वमें नारियर मोरै ॥
औरहु भाव बहुत हैं भाई । जो समुझे सो बिचलि न जाई॥
अमी अंकको बीरा पावे । बिगड़े हंस लोक को आवे ॥
पान प्रसादे वंश हेतु लेई । पियेपर नाम हमारा लेई ॥
छूटैं हंस कर्मके पारा । चोर उदय घट सूर्य विचारा ॥
चन्द्र हेतु तिन चौका करहीं । चन्द्र लम्रको काल जिमु डरहीं॥
चौथा चौका चलवेका पहै । सूर्य लम्र निजही मनमें है ॥
देह धरे नहिं कर्म सतावे । सहजे जाय परम पद पावे ॥
चारों चौका एहि विधि करे । सो हंसा तरई औ तारे ॥
सहजको चौका वासनमें निरतावे। इतने भेद टकसार लखावे ॥
भेद चुरामणिखण्ड अपारा । चुरामनि बस एहि भेद विचारा॥
उन्हको नाम प्रताप है सोई । इहतो भेद कडिहारको होई ॥
जोन अंकुरी वोहित कडिहारा । सो यह पावे वंस टकसारा ॥
अंस बँसकी परख न पावे । पढ़ि टकसार काल घर जावे ॥
बिन गुरु भेद गहे टकसारा । बिना पुरुषकी नारि बिचारा ॥
बिन दूलहकी कौन बराता । बिना गुरुझूठ जान जिहिं राता॥
बिना छत्र ज्यों लश्कर फिरहीं । विन गुरु ज्ञान धीरको धरहीं ॥
हमरे पन्थके गुरु धर्मदासा । तिनके वंशगुरु जक्त प्रकाशा ॥
हमरा ज्ञान वंस अस करई । खोवे आपु नरकमें परई ॥
तजै मनै क्रोधे अहँकारा । सो ये गहैं वंश टकसारा ॥
इतने भेद इहै टकसारा । औरे ज्ञान बहुत असरारा ॥
वंशटकसारकडिहारा जो पावै । सो सौ भवसागर जीवमुक्तावै ॥

वंश अस न टकसार होई । सीखसहित गुरुजाय बिगोई ॥
इतनौं भेद है अगम अपारा । नीर पवन चन्द्र सूर्यकी धारा ॥
कार्यसिद्ध नीर युक्ति प्रवाना । सद्गुरु बचन शीश परमाना ॥
उत्तर पुरव चन्द्र सनेहा । दक्षिण पश्चिम सूर्यहि देहा ॥

साखी–इतना भेद चन्द्र सूर्यका, पांच तत्व निजसार ।
दिनतिथि पच्छ उदयलों, सो साँचो कड़िहार ॥
कहै कबीर सोई लखे, ए सब मिले टकसार ।
चन्द्र सूर्यको भेद जानै, सो झूठो कड़िहार ॥

इतिग्रन्थ चौकास्वरोदय संपूर्ण सत्य सही

अथ अलिफ़नामा

*

अलिफ अव्वल एक नाम सही है आप अकेला साँई ॥ आदि अनादि अनादह अनाहद नहीं वा साँई ॥१॥ (बे) बंदेको पेदा किया देमका हियां दरूदा ॥ अव्वल कलमा पाक सही है हुक्म रब्बमह बूवा ॥२॥ (ते) तनमें दीदार मिलेगा पाक होय वजूदा॥ नूर झलक्के सत्य साहबका, सब घट है मौजूदा॥३॥(से)साबित सत्यनाम गोसांई, सदा जो कायम वाशिद ॥ पूरा होय सत नाम कहावे मिले जो पूरा मुर्शिद ॥४॥(जीम)जाहि लवु गुजार जहां सग यह तो नेक नजर है॥५॥फेकुन सेयन मुहीत नजलीलअलाहक्क खबर है हे हक्काका हुकुम हाकिमका सदा जो कहिये बर ॥ अजकुन फेकुन पेदा गहती सोहं ओहं मुनहक ॥६॥ (खे) खालिकको सुमिरत रहिये, लिखत खूब यही है ॥ खुदाखबीसीछाँड़सवी शद साधु खेर तभी है॥७॥(दाल)दया दुवेंश दोस्तकर दूर करे सब दर्दा ॥ जिसके दिलमें दर्द नहीं सो मून्जी नामर्दा ॥८॥ जाल जैहनको पाक साफकर, जिकर कि लज्जत पावो।जोक शोकसे जिकर लगावो दूर बहावो ॥९॥(रे) रहीम रहमत कर तुझपर रहम करै जो कोई ॥ रामरहीमसे एककर जानै तब जहेमत नहिं होई॥१०॥ (जे) जौरावर कोई न बांचे, रावण था दशकंधा ॥ जोर जुल्म है जहेरका प्याला मत कोई पीवे बन्दा ॥११॥ (सीन) सरासरी सिर साईका सब सीनोंके अन्दर॥ साँचा वचन सुनो साधोजन, स्वाती बरस ससुन्दर ॥१२॥ (शीन) शेहरमें शोर बहा है शुक्र खुदाका कहिये। सत्य सुकृत ये कर बासन बिसरे हरदम सुमिरत रहिये॥१३॥ (स्वाद) सदा सिफत साहबकी कहिये, सदा समीपे भाषो॥ दिल दरदिल सीना दरसीना देखो दिल्की आँखो॥१४॥(ज्वाह)जमीर

मुनीर मुवाजे व्यापक सब घट सांई ॥ है हजूर रहिमाना जिद नाकीजे भाई ॥१५॥ (तोय) तालिब मतलूबको पहुँचे तोफ करे दिल अन्द ॥बहुते तौफ जाय तब वायफ ना देव जाय पहाड़ समुन्दर ॥१६॥ (जोय) जालिम मिलै इजरयाल कबज करे जो जाना ॥ गये जुलमात कोई न बांचे सिकंदर सुलताना ॥ १७ ॥ (ऐन) इल्म चौदाको पढ़ते अमल नहीं जो लावे ॥ अमल नहीं वो इल्म ऐब है दानीश मन्द कहावे ॥ १८ ॥ (गैत) गलत ते वहि नहीं कहिये गुस्से गजबको त्यागे ॥ नाहक सुनके न्यारा रहिये कह सुनके मत भागे ॥ १९ ॥ (फे) फरमान आखिर है फानी फाजिल फहेम कहाया ॥ मिन कुल अलेहफाना कुरानो खबर कहाया ॥ २० ॥ (काफ) कलब है अरस जमीका सुनकर और नकीरा ॥ नेकी करो बदी बिसरावो कुलसे कहत कबीरा ॥२१॥ (लाम) लाहोल उसीपर जो न सुने जुगज्ञाना॥ साहेब से जो कोल किया था तो काहे बिसराना ॥२२॥ (मीम) मुसल्लममर्द मुसलमान कहत, मुरीद ना करना ॥ रहिये सदाई मनसलामत जेहि विधिसे निस्तरना ॥२३॥ (नून) नोज बिलाह अलेकुम नेक सरखुनका करना ॥ नैनो अकब्बर हबलूल बरिद हैं हक्का फरमाना ॥२४॥ (वाव) वजूवजेमे गो यमनेकी खरत सुनुफ॥ख्याल बदी बुख्वास दिल अन्दर सो है मर्दसुखौबफ ॥ २५ ॥ (हे) है दोनों यक सूरत दोनों ये साँई एक म्यानमें हो दो यम घर कबहु नहीं समाई ॥२६॥ (ये) येक साहब है सांचा सुनो तुम मन चित्त देको ॥ काया कबीर कहत है अव्वल आखिर येको ॥ २७ ॥

इति अलिफनामा । सप्तदशस्तरंगः

सत्यसुकृत, आदि अदली, अजर, अचिन्त, पुरुष,
मुनीन्द्र, करुणामय, कबीर, सुरति योग, संतायन,
धनी धर्मदास, चूरामणिनाम, सुदर्शन नाम,
कुलपति नाम, प्रबोध गुरुबालापीर, केवलनाम
अमोल नाम, सुरतिसनेही नाम, हक्कनाम,
पाकनाम, प्रकट नाम, धीरज नाम,
उग्र नाम, दया नामकी वंश-
व्यालीसकी दया

अथ श्रीबोधसागरे

*

अष्टादशस्तरंगः

कबीरबानी

*

प्रथम बानि सुनियो चितलाई । आदि अन्तकी सुधिदेहु बताई॥
प्रथम आदि समरथ हते सोई । दुसरा अंस हता नहिं कोई ॥
आदि अंकुर सुरती जब कीन्हा । सात करीको गर्भ तेहि दीन्हा ॥
इच्छा मूर्ति दूसरे उपजाई । सातो करी में चित्त बनियाई ॥
छीप रूपहि करी परकासा । स्वाति रूप इच्छा नीवासा ॥
सात इच्छा तेहिते उपजाई । भिन्न भिन्न पर करी बनाई ॥

विमल शब्द विरलिततबदयेऊ। तबहुलासबंदपाँचकरिभेदयेऊ ॥
तब पाँच इंड भरो उतपानी । तत एक भिन्न पर श्यानी ॥
नहिं तबधरनी नहिं आकासा । नहिं तब दुसरो हतो अवासा ॥
ध्यावै इंड करै चौचन्दा । आपु देखि और सहज अनन्दा॥
तबकी बात नहीं कोई जानै । कहौं समुझाय तो झगरा ठानै॥
धर्मदास सुनियो चितलाई । फूटो इंड सूतिंसे भाई ॥
सहज अंकुर बीज सब भाई । तिहिकी इच्छा इंड उपजाई ॥
तब सरबनसो साजी बानी । तेहिते मूल सुरति उतपानी ॥
अबोलबुन्द तेहि सुरतेहि दीन्हा । पाँच अंश तब उतपन कीन्हा ॥
पांचो अंश तब कह्या बुझाई । पाँचो अंडमें तुमजाओ समाई॥
एकहि एक इंड तब गयेऊ । आपहु आप कलामें ठयेऊ ॥
तब अवगत एक खेल बनावा । पांच स्वरूप पांचोंइंडहि आवा॥
फूटो इंड तेज भई धारा । सबमें देखे पाँच ततसारा ॥
पांचइण्ड भिन्न भिन्न विस्तारा। सातअधरदीपतेहिमहिंसंचारा ॥
देखि सरूप अंडनकर भाई । सो इंग सुरति तबहिं उपजाई ॥
पुरुष शक्ति भई दोय प्रकारा । तिन्हको सोप्यो उत्पन सारा ॥
तासों अंकुर भेद बतावा । बचन सुरत एक संग समावा ॥
जाते ओहं पुरुषको अंगा । ओहं भये बंस दो संगा ॥
तिन्हें उत्पनकी आज्ञा कीन्ही । शब्द शनद उनहूको दीन्ही ॥
मूलसुरति औ पुरुष पुराना । रचना बाहर कीन्ह अस्थाना ॥
सोहं सोहं इंडनमें रहेऊ । सकल सृष्टिके कर्ता कहेऊ ॥
प्रथम अंकुर दूसर इच्छा उतपानी। तिसरे मूल चौथे सोहं ठानी ॥
सोहं सोहं की बंधानी । आठ अंस तिनते उतपानी ॥
आठ अंस भये एही धामा । करता सृष्ट धरे यहि नामा ॥
करता सरूपी आठ भराअंसा । तिन्हके भये सृष्टि सब बंसा ॥

तेज अंड अंचितकूं दीन्हा। प्रथम सुर जब उतपन कीन्हा॥
सोई अंस दूसरे भय भाई। धीरज अंड तिन्हें बैठक पाई॥
तिसरे अंस अण्ड निर्माई। क्षमा अण्ड तिन्हें बैठक पाई॥
चौथे अंस है सुकृत सारा। सत्य अंड है ताहि पसारा॥
पांचों अंस हिरम्मर भाई। सुमत अंड तिन्हें बैठक पाई॥
दोई अंस दोइ करी समाने। तिनका भेद गुरुगम जाने॥
एक अंस निर्गुण अवतारा। ते तब सृष्टिके भये कड़िहारा॥

साखी-एती उत्पन्न चार सुरतकी, भिन्न भिन्न परकार।
कहै कबीर धर्मदाससों, आगे बन्स पसार॥

धर्मदास वचन

साँचे सद्गुरु की बलिहारी। धर्मदास विनती अनुसारी॥
धन्य भाग्य मोहि मिले गुसांई। अपनो के मोहि लीन्ह मुक्ताई॥
चारि वेद अरु शास्त्र पुराना। सबहीके मैं सुनो प्रमाना॥
अविगति गती काहु नहिं जानी। जो तुम कही आदि की बानी॥
सुरत सोहंगके आठ भय अंशा। तिनके सृष्टि सबही भए वंशा॥
अपरंपार है तिनका सेषा। अचित्य सृष्टिको कहों विवेका॥

साखी-तुम निज सतगुरु सत्य हो, हम निज चीन्हा सोय।
अचित सृष्टिको भेद कहो, अविगति पूछौं तोय॥

धर्मदास तुम बड़े विवेकी। तुम्हरे घटमें बुधि बड़ देखी॥
अचित्य सृष्टिको कहों पसारा। तेज अंड तिन्ह पायो सारा॥
बारहि पालंग अंड विस्तारा। तिहिमें पांच तत्व है सारा॥
इनको बैठक आसन दीन्हा। अंड सींखपर लोक तिन्हें कीन्हा॥
प्रेम सुरति तिन कीन उपचारा। तिन्हते भयो अक्षर विस्तारा॥
अक्षर सुरत तब मोहमें आई। ताते अंस चार निरमाई॥

चारि अंस भये चारि प्रकारा। चौविधदीपचोविधहि पसारा॥
प्रथम अंश पर माया भयऊ। सोपृथ्वितत्वको वीज निर्मयऊ॥
दुसरे कर्म भये अवतारा। पालंगअठानवेकीन्ह विस्तारा॥
तिसरे अदली अंश निरमावा। शेष नाग सो नाम धरावा॥
चौथे अंश भये धर्म राई। जिन्ह पाप पुण्यको लेखा पाई॥
चारी अंश अक्षर ते भयऊ। चार अंश चार मत ठयऊ॥
तबसमर्थअविगतिएककीन्हा। पूरी नींद अक्षरकूं दीन्हा॥
चौसठ युगलौं सोए सिराई। तोलों कैल सुरती ठहराई॥
समर्थ सुरति जलतत्व समानी। कैल अंड की कीन्ह उपानी॥
तेहि पीछे अक्षर पुनि जागा। मोह तत्त्व भये अनुरागा॥
चकित होय अक्षर बिलखाना। सोइ मोह सब सृष्टि समाना॥
अंड दृष्टिमें देखो भाई। व्याकुल भए यह किन निरमाई॥
समर्थ छाप अंडसिर दीन्हा। अक्षर छाप देखि सो लीन्हा॥
सोई अंड जलमें बिराना। जिनको वेद नारायण माना॥
तहवां ज्योति निरञ्जन भयऊ। तिनको सब जग कर्ता कहेऊ॥
अक्षर सुरति समर्थकी बानी। तेहि गुण खेल भए उतपानी॥
निरंजन नाम अक्षर ठहराई। अचित भेद नहि पावे भाई॥
कैलहि देखा सकल पसारा। तब अक्षर सो वचन उचारा॥
देउ पिता मोहि आज्ञा सोई। जो कुछ इच्छा उपज्यो मोई॥
सेवा करत सत्तर जुग बीता। तब मुख बोले पुरुष अतीता॥
जीव पुत्र जहां पृथ्वीको मूला। तहां कर्म बैठे अस्थूला॥
सृष्टि भंडार कूर्मको भाई। सोलह माथ हाथ चौसठ पाई॥
चले निरञ्जन कूर्मलगि आये। पुरुष ध्यानते कर्म जगाये॥
उत्पति हमकूं मांगे देहू। ना देहो तो तो मारिके लेहू॥
तबहि कूर्म अपने मन मानी। एतो कैल भए अभिमानी॥

हम मांगे कछु देब न भाई। जाऊ पुरुष लगि वेगि सिधाई॥
कल कूमंते युद्ध निमंयऊ। छीन माथा तीन पुनि लयऊ॥
लेकर माथे सुन्यमें आवा। कैल सुरति घट मोह समावा॥
तीनों माथे भक्ति तब लीन्हा। तबसे अक्षर पुरुष डर कीन्हा॥
मनमें तब अभिमान समाई। तब कर जोरिके सेवा लाई॥
सोला चौकड़ा तब चलिआई। तब लगि निरंजन सेवा लाई॥
अक्षरपुरुष जो कीन्ह विचारा। तिन्हको समरथ वचन उचारा॥
विदेह बानि तब अक्षर पाई। सो बानीते कन्या भइ भाई॥
ताको बहुत सिखावन दीन्हा। अष्टांगी तिन कन्या कीन्हा॥
पुत्रि निरंजन लागि सिधाई। तुमको समरथ सदा सहाई॥
तब कन्या निरंजन लगि आई। एक पाँव पर सेवा लाई॥

साखी—कहै कबीर

देखे पलक उघारिके, कन्या आगे ठाढ़ि।
उपज्यो मोहऽरुप्रेम, तब विप्रीत मनमें बाढ़ि॥

चौपाई

पलक उघारि कैल तब देखा। अपने मनमें कीन्ह विवेका॥
कहै कबीर सुनो तुम बानी। मोहिकारनपुरुषतोहिउतपानी॥
हम तुम कीजे सृष्टि पसारा। तीनहि लोक सकल महि भारा॥
तब अष्टांगी कैलसों कहाई। मोहि तोहि नाहीं होय सगाई॥
मैं तोरि बहिनी तू मोरा भाई। सो अनरीती सब दीन चलाई॥
कहैं कैल सुनो आदि भवानी। हमरे वचन तुम काहे न मानी॥
जो तुम कहा हमारा मानो। तो तुम उत्पति निर्णय ठानो॥
तब अष्टांगी कहै बुझाई। बिन आज्ञा तोहि पुरुष रिसाई॥
बिन आज्ञा कूरम सिर छीना। ताते पुरुष अन्त करि दीना॥

साखी–कहै कबीर

देखि स्वरूप कन्यहिको, मनमें रोष समाय ।
मनमें रोष भयो अति, कन्या लीन्हीं खाय ॥

लीलत कन्या कीन्ह पुकारा । पुरुष वचन ले हृदय सम्हारा ॥
तब सुरति बानते कैलहि मारा । कन्या तब उगलै बहि पारा ॥
एहि प्रपंच अक्षर तब कीन्हा । ताते कैल मती हरि लीन्हा ॥
कन्या सुरति तब गई भुलाई । जबते पेट कैलके आई ॥
पिता पिता कैलसो कहेऊ । मदन प्रचंड कल छन भयेऊ ॥
अष्टांगी कैल एकमत कीन्हा । ताते सृष्टि रचवे मन दीन्हा ॥
किया संयोग भयो त्रीवारा । जेठो ब्रह्मा लघु विष्णु कुमारा ॥
तीजे शंभु विष्णु ते छोटा । येकही निरंजनहि के ढोटा ॥

साखी–कहै कबीर

जैसे रूप निरञ्जनहिं, तैसे तीनों भाय ।
जे उत्पत्ति कैलकी, आगे सृष्टि उपाय ॥

चौपाई

करि प्रपंच शून्य इंडमें गयऊ । मनमें बहुत आनंदित भयऊ ॥
एहि आनन्दमें गए भुलाई । ताते श्वासा सुरति उठाई ॥
तेहि श्वासाते वेद कढि आई । रूपनिधान चारों बने भाई ॥
हाथन पोथी सुसरस बानी । ताते कैल भयो अभिमानी ॥
चारि वेद सब मरम बतावा । तब चलि अक्षर शून्यमें आवा ॥
कैल प्रचण्ड भयो बरियारा । तब अक्षरते बुद्धि विचारा ॥
येतो कैल औ जीव विचारा । समरथ छाप लियो टकसारा ॥
अक्षर चलै अचिंत लगि गयऊ । महाशून्य छोड़ी तब दयऊ ॥
तब अचिंत्य अक्षर समुझावा । यह अविगति गति काहु न पावा ॥

तुम तो सुरति हमारी हो भाई । कैल सुरति समरथ निर्मायी ॥
लक्ष जीव नित करै अहारा । सवा लक्ष नितप्रति निस्तारा ॥
अंशवंश मिलि एक मत कीन्हा । चारों ज्ञान बिचारि तब लीन्हा॥
तुम गति हंसरूप हो भाई । वह तो कैल जीव दुखदाई ॥
तुम समर्थको ध्यान लगावो । अन्तर्गति समर्थ सुख पावो ॥
चारो ज्ञानमें निर्णय कीन्हा । सो निरणय अंशको दीन्हा ॥

साखी-कहै कबीर

कहै कबीर धर्मदाससों, एता सकल पसार ।
तीन शक्तिको खेल भयो, चौथे हंस उबार ॥

धर्मदास बहुतै सुख पावा । उठि सतगुरुसों विनती लावा ॥
सांचे वचन तुम्हारी बानी । आदि अन्तकी निरणय ठानी॥
कौन है अण्ड कौन है अंशा । काहे अंश कौन है वंशा ॥
कौन कैल कौन गुण धारी । कौन सृष्टि कौन संसारी ॥
एती बात मोहि सों भाखो । और गुप्त गोये जिनि राखो ॥

साखी-कहै धर्मदास

बिन देखे सबही कहै, सुनि पाइहै कान ।
सोइ अदेख तुम दिखावहु, आदि अंत परमान ॥

चौपाई-सतगुरु कबीर उवाच

तब सतगुरु मन मैं बिहसांने । तुमसों धर्मनि निर्णय ठानै ॥
तेज अण्ड अक्षर है वंशा । अचिन्त्य अण्ड सोहं गहै हंसा॥
निरंजन कैलचारि गुणधारी । तीन सृष्टि अविगति संसारी ॥
तेज अंड अचिन्त्य है अंशा । नववंश अक्षर है वंशा ॥
सत्य अण्ड जोहं गहै अंशा । सो रहै तिनके उपज्यो वंशा ॥
पालंग पचीस तासु विस्तारा । पातालपाँजि ते तिनको बैठारा॥
तिसरों अंडहि क्षमा बखानी । अकह अंश तिन्हकी रजधानी॥

अकहनामते सताविस वंशा । तिन्हके सकल और हैं अंशा ॥
चौथा धीरज अंश है भाई । ताते सुकृत अंश निरमाई ॥
वंश बयालिस है कड़िहारा । तिनकी सदन चलै संसारा ॥
पाँचों अण्ड सुमत निर्माई । अंश हिरम्मर बैठक पाई ॥
तिन्हके वंश सात परवानी । इह सब भेद लेहो पहिचानी ॥
अंडहि अंड आठ भए अंशा । सात सुरति इक्कोत्तर वंशा ॥
चारि अंडको एक विचारा । दोए कलीको भेद अपारा ॥
एक वंश कोई पार न पावै । सतगुरु निजही भेद बतावै ॥

खुद होय कहे

सुरति सरूप हमहीं सब कीन्हा । मान बड़ाई अंशोंको दीना ॥
जबे अचिन्त्य सुरत ठहरानी । सुरति समर्थ घट आनि समानी॥
दोइ मध्य एक आए समाई । तिन्हको नाम अक्षर ठहराई ॥
अक्षर इच्छा उपजो भाई । दुसरा अंश कैल होय आई ॥
आठों अंस कालकी बानी । अक्षर घट जो आये समानी ॥
सो वासा होय बाहि ढिआई । तिन्हकी गति कोई बिरलै पाई॥
पांच प्रगट तीन गुप्त सारा । इनके हंस अग्यारा सारा ॥
चारि अंशभवभार हम दीन्हा । चारि वैद्यमें निर्णय कीन्हा ॥
तीन देव सृष्टि अधिकारी । उपजनिबिनसुन दुखसुख भारी॥
तिन्हें चौरासी लक्ष बनावा । जीव अनेक बहुत उपजावा ॥
यह अविगति काइ नहिं पावा । सारथ ऐसा खेल बनावा ॥

साखी–वेद कितेब जाने नहीं, पावे ग्यानी थाह ।
तीन अंशलौ सबहीं खेले, आगे अगम अथाह ॥

धर्मदास उवाच

धर्मदास विनती चितलाई । तुम्हरे शरण मुक्ति गति पाई ॥
उतपति कारण हम सब पावा । वंश अंश दूनों निरतावा ॥

लोक दीपको ठौर बतायो। बैठक अस्नेह इंस चिन्हायो ॥

साखी-कैसे सरूप समर्थ हैं, कैसे हैं सब हंस।
केहि करनीते पाइये, कैसे कटे कालकी फंस॥

चौपाई-सतगुरु कबीर उवाच

कहें कबीर सुनो धर्मदासा। अल्पबुद्धि घटमाँह निवासा ॥
सत्य लोक है अधर अनूपा। तामें है सत्ताविस दीपा ॥
सत्त शब्द का टेका दीना। अगम पोहुमीरचीतिन लीन्हा॥
सागर सात ताहि विस्तारा। इंस चले तहां करै विस्तारा ॥
अम्रवास वह सुवरन कांती। तहां बैठे इंसनकी पांती ॥
पुहुपद्वीप है मध्य सिंहासन। कल्पदीप हंसनको आसन ॥
अविगत भूषण अविगत सिंहारा। अविगत वस्त्र अविगत अहारा॥
कमलस्वरूप भौम्य है भाई। कहांकी उपमा देउ बताई ॥
आभा चन्द्र सूर्य नहिं पावहिं। भूल चूकके शीस नवावहिं ॥
कला अनेक सुख सदा होई। वह सुखभेद यहां लहै न कोई ॥
निरतै इंस पुरुषके सङ्गा। नखशिख रूप बन्यो बहु अंगा॥
पुरुष रूपको बरनै भाई। कोटि भानु शशि पार न जाई॥
छत्र सरूप को वरणै भाई। अविगत रूप सदा अधिकाई ॥
सत्ताइस द्वीपमें करे अनन्दा। जो पहुँचे सो काटें फन्दा ॥
हंस हिरम्मर और सोहंगा। श्वेत अरुण रूप दोउ अंगा ॥
विमल जोतको है उजियारा। झलकै कला पुरुषमें भरा ॥
चारि शब्दका लोक बनावा। पांच सरूप ले हंस समावा ॥
सत्य शब्दकी भूमि बनाई। क्षमा शब्द आसन निरमाई॥
धिर्ज शब्दसों छत्र उजियारा। सुमत शब्दसों वस्त्र पसारा ॥
प्रेम शब्दसों हंस निरमाई। आप शब्दते लोक समाई ॥
दीपन करे दीप हंस विहारा। तहां पुरुष निर्मल उजियारा ॥
जब विंहसे मुखमोड सुहाई। निरत हेरि विंहसे चितलाई ॥

चिकुरझलक बरनी नहिं जाई। कोटिनवार शशि वारन जाई॥
एति सिद्ध सतगुरु फरमाई। मानुष रूपन्हि लोके जाई॥
अविगति रूप है लोक हमारा। करनी भेद कहो निर्धारा॥

करनी भेद

काया करनी चार है भाई। मनकरनी दोइ लेहों उठाई॥
प्रथम करनी चौका है सारा। तिनकीसन्धतिनहुका विचारा॥
दुसरे पुनि चरणामृत कीन्हा। तिसरे शीत प्रसाद जो लीन्हा॥
चौथे साधुकी सेवा करहू। यम औ कालसों कबहू न डरहू॥
काया करनी कही विचारी। मन करनी सो हंस उबारी॥
पारस परशे कञ्चन होई। लोहा वासों कहै न कोई॥
स्वाति सनेहकी करनी है भाई। सो करनी काहु विरले पाई॥
स्वाति बून्द सीप जो लेही। बून्द स्वरूपहि पलटे देही॥
इक करनी है हंस सनँदा। पहुँचे लोक काँपि यमफंदा॥
लोक वेद कुल जगत विसारे। बोलत वचन जीव निर्वारे॥
माया चारि कालकी भाई। इनहि जीव राखे उरझाई॥
इह छोडे सद्गुरुके ओटा। मेटे कर्म भर्म सब खोटा॥
दोइ माया सद्गुरुके ठहराई। दोय करनीसे सत्य मिलाई॥
हंस करनि तीनलोकसो न्यारी। सद्गुरु मिले तो कहै विचारी॥
धर्मदास कर चौका प्रमाना। मेटो कुल पाखंड अभिमाना॥
सोरा असंख्य युग गयो सरसाई। काहु न खबरिसमर्थकी पाई॥
जीव निकाल यमधरधर खाई। चारि वेद सब जक्त भ्रमाई॥
धर्मदास तुम अंश हमारा। तुमसो वचन कहौं टकसारा॥

साखी-कहै कबीर

मैं कबीर बिचलौ नहीं, नाम मेरो समरत्थ।
ताही लोक पठाइहौं, जो चढ़ शब्दके रत्थ॥

धर्मदास उवाच

धर्मदास तब सौंज मँगाई । सोरह अंश तब दीन्ह चिन्हाई ॥
चौका पुरुस तब युक्ति बनाई । तनुका तोड़े जल अचनाई ॥
लिख्यो पान समरथ सहिदानी । दीन्हो सन्देश सत्यकी बानी ॥
तीनि अंशकी लगन विचारी । नारीअर अंशको हंस उबारी ॥
नारी पुरुष होय एक संगा । सद्गुरु वचन दीन्ह सोहंगा ॥
सोहँग शब्द है अगम अपारा । तुमसों धर्मनि कहौ विचारा ॥
पेड़ सोहंग और सब डारा । साखा सोहं कीन्ह प्रकारा ॥
प्रथम सहज सोइंगकी बानी । दूसरि इच्छा सोइ उपतानी ॥
तिसरे मूल सोहं है भाई । चौथे सोहं सोहं निर्माई ॥
सोहंगते भये सोइ अतीता । जाको नाम जो कह्यो अचिंता ॥
अचिंतहिते अक्षर सोइंगा । अक्षर सोहंगते कैल सोहंगा ॥
कैल सोइंगते त्रिगुण सोहंगा । सोहंगते सकल सृष्टिको रंगा ॥
अमृत वस्तुते नौ पकारा । सोहंग शब्दके सुमिरन सारा ॥
सो सोहं अचीन्हि जो पावै । सोहं डोर गहि लोक सिधावै ॥
जा घट होई सोहं मतसारा । सोई आवहु लोक हमारा ॥
सुरति सोहं हृदये महँ राखो । परचे ज्ञान तुम जगमें भाषो ॥
एती सिद्धि सोहंकी भाई । धर्मदास तुम गहौ बनाई ॥
चौका करि दीन्य परमाना । तब जीवहि छूटे अभिमाना ॥
अजावन बीरा आवै हाथा । तब हंसा चले हमरे साथा ॥
ताकैं पुनि चहि आवै डोरी । टूटे घाट अठासी करोरी ॥
कुल करनी जिन्ह खोय निसाई । काटि फन्द निज घरकूं जाई ॥
तन मन धनको मोह न आवै । सो जिव दर्स हमारा पावै ॥
गुरुसों अन्तर कबहुँ न कीजै । साधु सन्त सेवा मन दीजै ॥
एती सनद जीव उजियारा । ताको सुकृत आवे सठिहारा ॥
सोहं करनी सोहं विचारा । सोहं शब्द है जिव उजियारा ॥

साखी–कहै कबीर

धर्मदास उन मन बसो, करो शब्दकी आस।
सोहं सार सुमरन करो, मुनिवर मेरे पियास॥

चौपाई–धर्मदास उवाच

सत्य नाम संतन सुखदाई। कथा अनूप कहों चितलाई॥
बन्दौं गुरु दोऊ कर जोरी। जिमि कलहिते तुम बँदे छोरी॥
को प्रवीन है लोक तुम्हारा। सो मोसों सब कहौ विचारा॥
बस्ती सून्य बिचकी सब भाखो। जो देखो सो गोय जिन राखो॥

धर्मदास वचन

साखी–जैसे है तैसी कहौं मैं बलिहारी जाउँ।
अंस वंस निवारके, जीव सकल मुक्ताउँ॥

चौपाई

तुमरे कारन भेद हम दावा। सर्वमूल गुरु समरथ आवा॥
लोक परेलोक दोउ हम पाए। जब सद्गुरु मोहि दर्श दिखाए॥
पांजी भेद कहौं समुझाई। कौन अंस कौन लोक बैठाई॥
केते पवन इहाँते होई। जहां समर्थ बैठक सोई॥
बेद कितेकी संज्ञा दीजे। इतनी दया गुरु हमपर कीजे॥

साखी–लोक भेद केते वहै, पांजी भेद कहो समुझाय।
अंस वंस अस्थान बतावो, सब संशय मिट जाय॥

सद्गुरु पेंडी भेदः पठ्यते

धर्मदास मैं कहा समुझाई। पांजी अंस को भेद बताई॥
तज अंडवार पलंगबिस्तारा। मध्यमेंशून्यदोयपालँगअँधियारा॥
मृतुलोकमें सालोक मुक्तिप्रमाना। ताकी नाम मानसरोवर स्थाना॥

चारिमुक्तिकी कमाई अस्थान

धीरज अंश तहां बैठारा । चौसठ कामिनी संग बिहारा ॥ मध्य सरोवर पिंड सिल्ला लै धारी । चौसठकामिनी निरते घरियारी ॥ जो कोई वाम मार्ग को ध्यावे । सो सालोक्य मुक्ति को पावै ॥ पेडी ॥१॥ तहांते वैकुण्ठ चौवीस कोटी रहाई । तहां सुमेर रह्यो ठहराई ॥ तहाँ धर्मराय अविनासी रहही । जो पाप पुण्यका लेखा लहही ॥ तहां रंभा सामीप्य मुक्त है सोई । नवसौ सखी ताके सँग होई ॥

(पेडी २ वैकुण्ठको विस्तारा)

पांच सीखर सुमेरके रहही । पांचों अंसकाला तहां धरही ॥ ईशानकोन ध्रुव आशन कीन्हा । वायु कोन कुबेरको दीना ॥ नैर्ऋत कोन जमको अस्थाना । अग्नि कोन इन्द्रासन ठाना ॥ जिनकूं धर्मराय मैं कही । मध्यसिंहासन विष्णुको सही ॥ सहस्र साठजोजन वैकुण्ठ प्रमाना ॥ ६०००० तेहिके आगे सुन्य डोर बन्धाना ॥ निर्वानमारगको जो कोई ध्यावे ॥ सो सामीप्यमुक्ति वैकुण्ठको पावे ॥ पेडी ॥५॥ वैकुण्ठते शून्य अठारह १८ करोरी ॥ तहां लागी सुन्यकी डोरी । शून्यमध्य है दीप अनूपा । आदि निरंजन तहां जोतिसरूपा ॥ तहां अँधियारी हैं सुन्य मँझारा । दोय पलँग है सुन्य विस्तारा ॥ तहां कोटि चारि है जोति उजियारी ॥ तहां अष्टंगी है शक्ति नारी ॥ सारूप्य मुक्ति सो तब पावै ॥ अघोर मार्गको जो कोई ध्यावे ॥

चौथी मुक्ति आगे अस्थान

ते अक्षर आगे अस्थाना । एक पलंग तहांते परवाना ॥ तहाँ अक्षर योग माया विस्तारा । चारि अंश जिनके अधिकारा ॥ तहाँते चार वेद परवाना । चौथी मुक्तिको येयि ठिकाना ॥ तहांते आगे कोइ ना गयऊ । एहि मता चारों वेद मिलिठयेऊ ॥ चारों

मुक्ति सम्पूरन ॥ (पेडी) तहाँते चारी मुक्तिको जाना । तहांते एक इण्ड परवाना ॥ तहांते है इण्डको छौरा ॥
इण्डके आगे अनहद अँजोरा । आगे असंख्य शून्य विस्तारा ॥ तहां अचिंतनाम अंस करे व्यौहारा । अधर दीप है ताकर नामा प्रेम ध्यान ताकर विसरामा प्रेमसुरति नचि बारंबारा ॥ ताके सँग लखिबारहजारा ॥ १२००० ॥ तहां आगे सोहं अस्थाना । तहां तीन असंख बीच सुन्य प्रमाना । तहांते आठअंस उपजाई उन्हे वंस अंसके स्थान बनाई ॥ तहां ओहं सोहं उजियारा। तिन संग हंस छतीस हजारा ॥ ३६००० ॥११॥ पेडी ॥ तेहि आगे मूलगति अस्थाना । तहां बीच सुन्य आग असंख्य प्रमाना । हंस तिन संग बावना हजारा ॥ ५२००० ॥ तिन्हते पांच ब्रह्म उपजारा ॥ पेडी ॥ १२ ॥ आगे सुरति मूल इच्छाको मूला । स्वाति सनेह जाको है स्थूला ॥ बीस सुन्य चार असंख निरधारा । तिन संग हंस पचीस हजारा ॥ २५००० पेडी १३॥ तिनके आगे सुरति निशानी । सर्वोत्पत्तीकी रजधानी॥बीचशून्य दो असंख्य प्रमाना।तिनते भये अंकूर ठिकाना ॥ सोरा असंख्य तिन्हते विस्तारा । हंस तिनहि संग पांच हजारा ॥५०००॥ धर्मदास बचन सुन सांचे । ताके संग हंस सब बांचे ॥ पेडी ॥१४॥ तहाँ आगे अंकूरको प्रमाना । तिल प्रमान द्वार अनुमाना ॥ विहंग शब्दकी लागी डोरी। तेहि संग हंस गये पुरुषलगि सोरी ॥ पेडी ॥ १५ ॥ बीच अँधियारी घोर अपारा । एकअसंख्य दसलाख विस्तारा॥ १०००००००००० १०००००० ॥ आगे हमार निजलोक ठिकाना ॥ ताको मर्म काल नहि जाना ॥ पेडी॥१६॥

साखी—कहें कबीर

इतना पांजी भेद है, धर्मनि सुनि चितलाइ ।
समरके प्रतापते सब, हंस लोके जाइ ॥

चौपाई

सोरा असंख्य उत्पति पसारा । चार असंख्य शून्य विस्तारा ॥
सात शून्य दोउ बेशून्य कहावै । एकै शून्य कोई विरला पावै ॥
तहांते तीन शून्य भए प्रवाना । आदि अंश शून्य सुरत ठिकाना॥
तिहिते तीन भए परकारा । चार सुरतको सकल पसारा ॥
प्रथम शून्य लोकते लागी । तीनिसुरत भए शून्य अनुरागी॥
आठ अंश अरु वंश पसारा । तहँ लगि देखो शून्य विस्तारा॥
इतना जीके होय निन्यारा । ताके आगे लोक हमारा ॥
हम चीन्हे और गुरुको सेवै । कर्म तोड़ि के जुग जुग जीवै॥
लोक वेद कुल माया धारी । काल फंद यम फंद विचारी ॥
निसदिन सुरत सतगुरुसों लावै । साधु संतके चितहि समावै ॥
जनपर दाया सतगुरु केरी । तिनकी कटै कर्मकी बेरी ॥
करनी कर अभिमान भुलाई । तब छूटै यम धरि ले आई ॥
करनी करिये गुरुके साथा । ताकु काल उठि नावैं माथा ॥
करनी करी जो होय अधीना । ताको वासा लोकमें दीन्हा ॥
करनी करे निज सुर्त लगावै । ताको सुकृत लोक पहुँचावै ॥
करनी करत कसरि होय आई । तबहि काल घर बाजु बंधाई ॥
सेवा करि राखे मन आसा । तन छूटै जीव परिहै सासा ॥
सद्गुरुसों अभिमान जो करिहै । तन छूटै जीव यमफंद परिहै ॥
बंस टेक औ नाम हमारा । पथ पूजा सद्गुरु कनहारा
चारों अंश चिन्हे जो पावै । तनमन धनसों प्रीति लगावै ॥
माता पिता बंधु सब भाई । पुत्री पुत्र हेतु लोलाई ॥
घरकी घरणी पुरुष है सोई । इनकी प्रिति न कारज होई ॥
तासों काल रहै मुख गोई । नारी पुरुष सुरति कारज होई॥

गुरुसों अंतर कबहु न राखै। प्रेमप्रीतिसों दीनता भाखै॥
गुरुको निंदे अक्षरकू ध्यावे। बिन गुरु अक्षर कैसे पावे॥
गुरु संगाती शब्द लखावे। जाके बल हंसा घर आवे॥
गुरुस्वाती, गुरुरूप स्वरूपा। गुरू पारस है आदि अनूपा॥
गुरुभृङ्गी गुरु सो बहुरंगी। कीटते करही आप हितसंगी॥
गुरु है सांचे सिद्ध समाना। गुरु मलयागिर वास प्रमाना॥
गुरु सदगुरु दीपक अस होई। ताको सनेह कहों मैं सोई॥

गुरुसीखको सनेहवर्णन

जैसे स्नेह कमल और भौंरा। जैहे स्नेह चन्द्र अरु कोरा॥
जैसे स्नेह बीन जल अंगा। जैसे स्नेह है दीप पतंगा॥
जैसे स्नेह मृगा और जन्त्री। जैसे स्नेह चकमक और पथरी॥
जैसे स्नेह स्वाति और पपीहा। जैसे स्नेह चुम्बकअरु लोहा॥
जैसे स्नेह मीन अरु नीरा। जल बिछुरे वह तजे शरीरा॥
ऐसे गुरु शिष्यको सन्देशा। मुक्ति होय गुरु मिट्यो अँदेशा॥
एते स्नेह सीख सहिदानी। इतने गुरुके तत्व बखानी॥
गुरुसनेह सीख जो पावे। गुरु रूप होय शिष्य समुझावे॥
गुरुकी दया चलो रे भाई। बिन गुरु पार न पावै कोई॥
गुरु सोई सत्य शब्द बतावै। और गुरु कोई काम न आवे॥

साखी- उपमा कहा दीजिये, पटतर कोहू नाहि।
पलपल करो जु बन्दगी, छिन छिन देखो ताहि॥

धर्मदास उवाच

धर्मदास विनती चितलाई। कहनी योग गुरु देहु बताई॥
योग ध्यान भाखो टकसारा। जीव उतारो भवजल पारा॥
कायास्थान आदि ते भाखो। कमलभेद गोयें निजराखो॥

साखी-कहै धर्मदास

तुमही करता आदि हो, जिन सब रचना कीन्ह ।
सत्य शब्द सार निर्मौलिके, सतगुरु साँचे दीन्ह ॥

कहै कबीर योग विधि बानी । जाते पुरुष सो हो पहिचानी ॥ प्रथम कमल कहूँ रे भाई । चारि पंखुरी तोहि बनाई ॥ सिद्ध पवन गनेस है सोई । छैसे जाप अखंडित होई ॥ दुतिय कमल नाभी तर होई । षष्ठ पंखुरी ताकर सोई ॥ ब्रह्मवास तेहि कमलमें होई । छै हजार जाप तहां सोई ॥ ६००० । २ तिसरे कमलकी आठ पंखुरी । लक्ष्मीनारायण मूर्ति तहां धरी ॥ छै हजार जप तहां प्रमाना । जो कोई साधू साधे प्राना ॥ ६००० चौथे कमल शक्ति शिव रहिऊ ॥ षट सहस्र जप तहां कहिऊ ६००० ॥ बारा पँखुरी ताकर भाई । सोहँ तत्त्वमें ध्यान लगाई ॥ पांचै कमल अकाशको बासा । सोरा पँखुरी तहां निवासा ॥ अमी चन्द्र है ताकर नामा । सहस्र जाप ताको विश्रामा ॥१०००॥ तहांते कला अवतारकी आवे । चारि वेद ताके गुण गावे ॥ अबमैं छठो कमल कहि भाखों । तीन पंखुरी ताकी पुनि राखों ॥ परमात्मा ताहि कमलमें रहई । एक सहस्र जाप तहँ करई ॥१०००॥६ सहस्रजाप दोए पँखुरी १००० षष्ठ ध्यान-तिहिभीतर धरी ॥ गम्य अगम्य अंश दो रहई । तीन देव तहँ लगि कहई ॥ आठेक मल दश पखुरी कहिये । अगिन बान ताके बल कहिये॥कामदहन ताको है नामा । जो लखेसो पावे विश्रामा

प्रकाश

नामो कमलकी अविगत बानी । अन्त पांखुरी ताकर प्रानी ॥ ता मैं पूरण ब्रह्म अखण्डा । निसवासर धरणी नहिं चन्दा ॥ एक नाम सत्य है बानी । ताहि नाम सृष्टी उतपानी ॥

उनकी छाया सबको भाई । तीन छांह घटहि सब समाई ॥
दो सरूप आदि सहेदानी । दो सरूप काया बन्धानी ॥
तिसरा रूप रहित है आपे । भेद लखो तिहिगुरु प्रतापे ॥
तेहि प्रतिमा दोय हैं भाई । एक नारि एक पुरुष कहाई ॥
जिसका भेद कहो समुझाई । एक नाद एक बिंदु कहाई ॥
नाद सनेही सुरति हमारी । बिंदु सनेही शब्द बिचारी ॥
माया नारि सुरति है नादा । चार नाम है एक समादा ॥
नरमन शब्द और कहि बिंदा । चार नाम भये कहि बिंदा ॥
नरही नाम मनुष्य विचारा । मन नाम काल अवतारा ॥
शब्द नाम सूर्यको दीन्हा । बिंदू नाम नीरको लीन्हा ॥
भेदी नाम इच्छाको चीन्हा । माया नाम मृतक जो कीन्हा ॥
सुरति नाम चन्द गहि दीन्हा । याहि सुरती मम करि लीन्हा ॥
रज्जु नाम श्वासाघट राच्यो । पुरुषहिं एक सुरतिको साच्यो ॥
शब्दको धातू जाही थापा । बनावन हारो आपे आपा ॥

खुद होई कहैं कबीर

जहां तहां हमही है भाई । दुबिधा छोड़े काल भगाई ॥
दुबिधा काल बड़ो अन्याई । तन छूटेते लेइ धरि खाई ॥
पिंडका लेखा दीन्ह चिन्हाई । पिंड ब्रह्माण्ड लेहु अर्थाई ॥
अनंत पंखुरीका कमल है भाई । शुक्ल हंस तेहि माहि समाई ॥
आएँ कमल उत्पत्ति पसारा । तेहिमें जीवकीन्ह विस्तारा ॥
दुसरो कमल सहज है स्थाना । तिन्हते सृष्टि भई बन्धाना ॥
तृतिय कमल इच्छा उतपानी । चौथा मूल ले बोले बानी ॥
पांचये सुरति सोहंग बँधाना । आठ अंश तिनके परवाना ॥
छठो कमल आचिंत्यको बासा । निसवासर जहँ प्रेम विलासा ॥
ताते कमल अक्षर ठहराई । तिनकी तो अस्तुति वेदन गाई ॥

अठवें कमल कैल को वासा। नाम निरञ्जन तहाँ निवासा ॥
नौमे कमल तीन लोक बनाई। तीनि देव तहँ रहे भुलाई ॥
पिंड ब्रह्मांडको लेखा सारा। ज्ञानी पंडित करो विचारा ॥

साखी—कहै कबीर

पिंड ब्रह्माण्डको लेखा, हम दियो प्रकट बताय।
कहै कबीर धर्मदाससों, तुम निर्भय लोक जाय॥

धर्मदास वचन—चौपाई

धर्मदास पूछे चित्त लाई। सद्गुरुसे उठि विनती लाई ॥
सांचे साहबकी बलिहारी। कैल पुरुषकी जुगति विहारी ॥
पन्थ विकट कोइ भेद न पावे। जो नहिं सद्गुरु आप लखावे ॥
प्रपंची है कैल अपारा। मोसो चले न पन्थ तुम्हारा ॥
कैसे कै गुरुवाई करहूँ। कैल पुरुषसो मैं बहु डरहूँ ॥
जम्बुद्वीप है यम को देशा। कैसे चलिहै मुक्ति उपदेशा ॥
चार वेदमें सब जीव राचे। कैल फांसते कोइ न बांचे ॥
हम सेवक हैं आज्ञाकारी। सोइ करों मोहिं लेहु उबारी॥

साखी—कहैं धर्मदास

हमसो पन्थ चलै नहीं, काल अपरबल बीर।
घाट बाट सब रोक है, जिय कस लागे तीर ॥

चौपाई—सद्गुरु कबीर उवाच

धर्मदास तुम्हें सांच न आवा। अन्तर खोलो मैं तुम्हे बुझावा॥
का पुनि करिहै काल तुम्हारा। सिरपर समरथ है रखवारा ॥
मारहु कैल रसातल जाई। केती कै हमही निर्माई ॥
केतिक कैल भये मम आगे। केति सृष्टि उत्पत्ति प्रलै भागे॥
सत्य वचन सुनिये चितलाई। कैल जुगति मैं देहुँ लखाई ॥
सत्त चला है सबते न्यारी। तीनहि लोक प्रपंच पसारी ॥

कैल सकल युग डारो खाई । एकौ जीव लोक नहिं जाई ॥
ताते समरथ मोहिं फरमाई । साँचे जीव आनु मुक्ताई ॥
कर्म काल है बहुत अपारा । तुमसों धर्मनि कहौं विचारा ॥
तीन सुरतिका खेल नियारा । भिन्न भिन्न तिनको विस्तारा ॥

चार प्रकारके ज्ञान

अचिंत अंश समरथको भाई । बारा पलंग राज तिन पाई ॥
ताते ब्रह्म सृष्टि भई भाई । ब्रह्म ज्ञाति नहीं उपजाई ॥
ब्रह्महि लरनि ब्रह्मकी बानी । एके मारग एक रहानी ॥
तिनको चिह्न चले संसारा । अक्षर अतीत नाम है सारा ॥
जो कोई येहि मारगको ध्यावे । अचिंत लोकमें जाय समावे ॥
प्रेम सुरति उहाँ मंगलचारा । तिनके सँग सखि बार हजारा ॥
अब अक्षरको कहूँ बिचारा । अक्षर कीन्हा अविगतिविस्तारा ॥
जीव सृष्टिको कीन्ह पसारा । अनभै ज्ञान कीन्ह विस्तारा ॥
अनभै करनी अनभै बानी । अनभै चाल है अनभै रानी ॥
तिनके चार अंश हैं भाई । आठहि सुरति नहीं ठहराई ॥
नी पवन दोउ गहो निसानी । सुरतियोग अनहद सहिदानी ॥
यह प्रकार जो ध्यान लगावे । अक्षर लोकमें जाय समावे ॥
सुरति योग है महा हितकारी । बीस हजारतिन जीव उबारी ॥
तिसरे कैल निरञ्जन गाई । तिन पुनि माया सृष्टि उपजाई ॥
माया सृष्टि है तीस हजारा । त्वचा ज्ञानको कीन्ह विचारा ॥
तीर्थ व्रत जप तप है करनी । क्रिया कर्म आचार है रहनी ॥
इच्छा वांछित जो करनी कहही । सो फललेहि जन्म जब धरही ॥
जोगहि दान यज्ञ मन लावे । चारिहुँ वेद साखी समुझावे ॥
कोउ राजा कोउ पंडित भाई । कोउ सिद्ध कोउ साध कहाई ॥
चार अंश चारों फल पाई । माया सृष्टिको घरघर खाई ॥

ताके संग सखी बारा हजारा। तहां महंमद गये सुखसारा॥
तेहि सुखको उन्ह लहे माना। आगे ओहं सोहंके स्थाना॥
चौथी सृष्टि त्रिगुण परकासा। जो उपज्यो अक्षरकी श्वासा॥
तिनके ज्ञान क्षुद्र है भाई। जन्त्र मन्त्र औ वेद भनाई॥
राग रँग पूजा चतुराई। अहंकार मद गर्भ भुलाई॥
जीव भोजते करे अहारा। नौलाख जीव सँग तिनके धारा॥
तँहिके ज्ञान जग रहे समाई। घर घर आये कुल बरन हढाई॥
कोई उग्र कोइ क्षुद्र कहावे। कोइ जीव कोइ नारियर खावे॥
कोई रोगी औषध भावे। कोई देवी कोई देव कहावे॥
कोई प्रेत होय बोले आई। इह विधि सकल जीव भरमाई॥
त्री देवा गुण रूप निवासा। इन सब भेद कीन्ह परकासा॥
पाहन पूजा तिन ठहराई। कहूँ विष्णु तहँ शम्भु कहाई॥
ब्रह्मा तहां वेद धुन करहीं। विष्णु रूप तहँ पूजा धरहीं॥
शम्भु भये फलके अधिकारी। तीन देव यह युक्ति विचारी॥
इहि प्रपंच पांच मुख बानी। तेहि प्रपंचमें जीव भुलानी॥
शुक्लहि पांच काल सहेदानी। जाये लै देह नर्ककी खानी॥
धर्मदास तुम विन राचौ। सत्य चाल उहिकेलसों बांचौ॥

चारि सुरतिका लेखा

चार सुरतिका भेद निन्यारा। सो सब खोलि कहूं भण्डारा॥
तिनकी सनद एक है भाई। तेहि सनद ले जाय लेवाई॥
यह ज्ञान ताकी चारों बानी। पांचे समर्थक पांच प्रमानी॥
चारों गुरु चारी हैं बानी। पांचे शब्द सुरति सहिदानी॥
पांचों भेद हैं अगम अपारा। इह पांचों सर्वांग विचारा॥
चार अंश चार अण्ड प्रमाना। एकै सनद एक बन्धाना॥
चारों गुरु है जगमें आवा। तिन भवसागर पंथ चलावा॥

चारों गुरुकी पेढी

प्रथम धर्मदास तुम्हें भाई । वंश बयालिस है अधिकाई ॥
दुसरे सत्व बंकेजी राजा । सत्ताइस अंश तेहसंगविराजा ॥
तिसरे गुरु चतुर्भुज हैं भाई । सोरा अंश तेहि संग समाई ॥
चौथे गुरु सहतेजी भाई । सात अंस मत तत्त्व बनाई ॥
चारहि गुरू मता अर्थावा । जीव सरूप ह्वै जगमें आवा ॥

चार बानी

चार बानि ले तुम्हें समुझावा । प्रथमहि कोटिज्ञान कहि आवा॥
धर्मदास तुम करो विचारा । कोटिबान है ज्ञान पसारा ॥
दुसरे है टकसारकी बानी । रायबंके जैसे निरणय ठानी ॥
टकसार भेद चढ़ि हारी लेखा । जो पेखे सो सत्यलोकहि देखा॥
नीर पवनको कीन्ह विवेका । तिसरे मूल ज्ञानका एका ॥
राय चतुर्भुज लीन्ह प्रमानी । चारों गुरू मुक्ति फलदानी ॥
चारि गुरू मुक्ति कडिहारा । बहु जीवनको करिहैं उबारा ॥
साखी-कहे कबीर चारि बानि, खानी चार ज्ञान निधान ।
चारि पदारथ चारि बेद, चारि गुरु प्रमान ॥

धर्मदास उवाच

हम चारोंको गुरुकर थापे । पांचे अर्चित राजा है आपे ॥
तीन अंश वे कहां रहे छाई । तीन भेद गुरु कहो समुझाई ॥
तिन्हकी कला कहो गुरु सांचे । औ पुनि कौन खेलमें रांचे ॥
साखी-सत्य सत्य मोसो कहो, कछु ना राखे गोय ।
सुर नर मुनि ऋषि सबही ठगे, रीते चले सब रोय ॥

चौपाई-सद्गुरु कबीर

धर्मदास घटभय उजियारा । ताते आगम्य सुर्ति विचारा ॥
आठ अंश सब जमा हैं भाई । चारि अंश सब ठांव बनाई ॥
अविगति मोसन कहा न जाई । मैं जो कहों तुम धरो समाई ॥

पाँचों सुत पाँचों अण्ड पाई। दोई अंश ले गुप्त बैठाई॥
अचिंत बूंद तब तिनही दियऊ। तिनको नाम अक्षर तिन ठयऊ॥
पांच अंश नहिं पावत लेखा। और अंशको कहूँ विवेखा॥
चार अंश अक्षर सेहेदानी। जिनते उपजी चारों खानी॥
देखि अंश मोह तब आवा। दूसर अंश घट आय समावा॥
त्रिगुण शक्ति घट गई समाई। तब अक्षरको निद्रा आई॥
सोरा चौकड़ी सोये सिराई। आठवो अंश जलमाँहि समाई॥
अंडजरूप जो जलमाँ दीन्हा। यहि अविगतिसब समरथकीन्हा
अक्षर जग्यौ निद्रा गई भाई। देखि अंड व्याकुलता आई॥
तेहि अंडमें एक निशानी। सो अक्षर पाई सहिदानी॥
अक्षर दृष्टिसों अंड बिहराना। तिहिते कैल भयो अभिमाना॥
तिन्हके चार वेद भये बंशा। चौथे अंश कलानिधि तंसा॥
मनमें अक्षर संख्या आई। यह तो काल समर्थनिरमाई॥
तेहिते शक्ति कीन्ह तिवाना। श्वाससुरति अन्तर बिलखाना॥
आठों अंश घट रहे समाई। स्वास संग घट बाहर आई॥
सोरा कला अष्टांगी अंगा। रूपकला वाही सब सुख संगा॥
अक्षर कन्या दीन्ह पठाई। तिनते तीन पुत्र भये भाई॥
अविगति गति काहू नहिं पावा। समरथ सत्य प्रपंच बनावा॥

साखी-कहैं कबीर

इहविधि सब रचना करी, काहु न जाने भेद।
जैसे हैं तैसे तब हती, अब कोकरै निखेद॥
साखी-अविगति निषेदकी-धर्मदास उवाच।

धर्मदास बिनती अनुसारी। साहब बिनती सुनौ हमारी॥
आठ अंशको भेद हम पावा। गति अवगति दूनौ हम गावा॥
चारि अंश एके मत ठाना। चारि अंश भिन्न भिन्न मत ठाना॥

तेहि कारण सबमोहि बतावहु । केहि कारण प्रपञ्च उर लावहु ॥

साखी–चार सुरति सब मूल है, तुम समरथ परवान ।
तुमरे अंगते उपजि कहु, चारहुको अनुमान ॥

साखी–बीजके कलसाकी–कीसा सतगुरु उवाच ।

धर्मदास मैं कछु न छिपाऊँ । तुमको सकलहि भेद बताऊँ ॥ प्रथमहि समरथ आप हते, दूसरो कोई न हुए । तब समरथके मुखते, सहजहि सुरति भये ॥ सोइ सुरति स्वरूप धरि सहजहि बुन्ददयो । तेहिते सहजहि सुरतिका सहज अँकूर भयो ॥ तेहि अंकुरते सप्त करि भए ॥ दूसरे समर्थके अंशते क्षमास्वरूप सुरति भये ॥ तब स्वाती सरूप बूँद दियो जौन कारन सुनो ॥ जैसो सांचो तैसो स्वरूप जैसो घात तैसो अनूप ॥ एतो ठेका बँधे जब भयऊ इच्छासात । ७) अंड पांच (२) चारी अंड एक सिद्धके ॥ ४ ॥ १ ॥ चारों स्वरूप भिन्न भिन्न हैं ॥ पांचो अण्ड प्रचण्ड भयो । दोउ करीमें अण्ड ना भयो ॥

ताहिकरीमें दो अंशहते।एक करीमें अक्षर हतो एक करीमें माया हती । एहि मता अवगति हतो । आगे तिसरी सुरतिको लेखासुनो अविगति सुरत अशून्य । तीसरीसुरतिका लेखा सोसुरति सरवन उपजाई । तेहिको नाम मूल सुरति है ताह सुरतिको अव्वल बूँद दीन्हां तेहि पांच ब्रह्म भये तिनको आज्ञा दई एक एक ब्रह्म एक एक अंडन में आए, एते ब्रह्मते पांच अंश भये । तेही तत्त्वके घर भये । अण्ड फूटो पांच तत्त्व प्रगट भये । ६ । चौथी सुरती श्वासाते भये। ४ । तेहिको नामसोहं दियो । तेहिसोहंगके ओहं बुंद कन्हां तेहिमें आठ अंस भये । सो एती रचना चारिकीरति कियो

प्रथम अंगते भए आगे सब निकास कहूँ । सात इच्छा सातहीं अंश । अनइच्छाते आठों अंश भए । आठवाँ अंश भए । ते लोक भयो सर्व सृष्टिका संहार करे ।

बीजक सारकी साखी–कहैं कबीर ।

सात इच्छाके सात अंश भए, अपने अपने भाव ।
आठवा अंश बिन इच्छा उपजे, ताको धर्म लखाव ॥

धर्मदास उवाच–एह धर्मदास ने पूछी ।

आहो साहेब काहेतेसमर्थ कहत हैं ? काहेंते अचिन्त कहत हैं ॥
काहेते अक्षर कहत हैं ? काहेते जोगमाया कहत हैं ॥
काहेते कल कहत हैं ? इतना भेद कहो समुझाई ॥
भिन्न गुरु देह बताई । एहिकी शास्त्र गुरु कहें ॥
सुनो धर्मदास तखतके धनी । तासो समर्थ कहत हैं ॥
तिनते आठ अंश भए । आठमें जेठ अचिन्त भये ॥
तिनके चिन्ता नाहीं । ताहिते अचिन्त कहाये ॥
तिनके प्रेम सुरति भई । तेहिप्रेममें अक्षर आनिसमानो॥
तब मोह तत्व उपज्यो । तेहि मोहते चार अंश भए ॥
तेहिते चौरासी लक्ष्य जोनी भई । ८४००००० । तेहिते अक्षर ॥
कहाये।अबकैलकीहकीकतसुनो । तब अक्षरके मोहतत्त्य ॥
उपज्यो तेहि कारणते कैल भयो । मनसाते बुन्द पैदा कियो ॥
सो जहाँ अक्षर बैठो हतो । तहाँ जल तत्त्व हतो ॥
तेहि जलमें एकबुंद आनिपडो । तेहि बुन्दते एते एकअंड भयो॥
तब अक्षरने देखा उठिके । तब अण्ड लगि आयो ॥
एक हकीकत लिखी हती । अंडके मुख ऊपर छाप हतो ॥
कहे सृष्टिकी रचना करो । और एक अंश हम पठायो है ॥
सो तुमते दूसरी करी है । सोतुम जिनपतियाबो।जहांलगि

आवै तहां लगि जिन रोको । आवने दीजो जिन काहु भेद ॥
बतावो । आगे सत्रासौ तीस हजारा युग कैल युगका प्रमाण है ॥
युग सो भुगति लेहै तेहि पीछे । हमारी आठे सुरती आई है ॥
तब हमारो महातम होई है । तब कालसों जीव छुड़ाई है ॥
तब कैलको महातम घटि जैहै । एती सनद अक्षर भेदकी ॥

साखी–कहैं कबीर

सात इच्छाके सात अंश भए, सातहि सुरति प्रकार ।
अन इच्छाते कैल भए, जीवको करे अहार ॥

चौपाई–धर्मदास उवाच

धर्मदास जिव शंका आई । उठि सद्गुरुसों विनती लाई ॥
धन्य भाग्य मोहि मिले गुसांई । अपना करि मोहि लीन्ह मुक्ताई ॥
इच्छा सातके समरथ कर्ता । अत इच्छा वहां कहांते बरता ॥
सो निजु भेद बतावो मोही । इह सनद गुरु पूछौं तोही ॥
सात करी अंकुर बन्धाना । सात इच्छा तेहि मांहि समाना ॥
सात सुरतिमें थांका राखा । सात अंश तहां बोली भाखा ॥
आठवाँ अंश वह कहांते आवा । कौन भाँति वो अंश निमाँवा ॥

साखी–अविगति भेदकी धर्मदास पूंछे ॥

अविगतिकी गति सब कहो, मैं बलिहारी जाउँ ।
मेटि अँदेशा जीवका, पल पल परसो पाउँ ॥

चौपाई–सद्गुरु कबीर उवाच

कहैं कबीर सुनो धर्मदासा । वहि समर्थ गति अजब तमासा ॥
इतना तत्त्व जिन पूछौ भाई । और सकल शब्द देहों बताई ॥
इच्छा सात शक्ति उतपानी । स्वाति सनेह भए परमानी ॥
एक अंकुरते सब कछु कीन्हाँ । सब भण्डार तिहि माहे दीन्हाँ ॥
तिहि अंकुरकी सात भै करी । सात इच्छा तेहि माँहि लै धरी ॥

सेहजंकुर तिह नाम कहाई । सात सुरति तिहि माहि रहाई॥
टेकाज्ञान कहतहों भाई । जेहि सुनि हंसा लोके जाई ॥
धर्मदास सुनिये चितलाई । यहि कलसा सब ज्ञानके भाई ॥
बीजक ज्ञान सब कहूँ निशानी । तेहिपर बीजक निश्चय ठानी ॥
सात करीके निर्णय सुनिहो । बिना भेद तुम कछू न गुनिहौ॥
भेदमें भेद हम राखो गोई । सो पर सून्य लखो ना कोई ॥
इच्छा सीप स्वरूप उतपानी । सोवाती स्नेह भये परसानी ॥
बुंद एक आनंद स्वरूपी । इच्छा सात भये भिन्न स्वरूपी॥
इच्छा सात रुचि अपने भाई । तेहि प्रमान बुंद तिन्ह पाई ॥
तेहिते पाँच अंड निमांई । दोए करी तहाँ गुपत छिपाई ॥
तेहिमें गुप्त अंश रहे वासा । प्रथम करीने बुंद निवासा ॥
तेज अण्ड तहाँ भयो प्रकाशा । तेहिमें सब है जीव निवासा ॥

इच्छाके नाम

मुख्य इच्छा तेहि इच्छाको नामा । आदि बुंद तिहि बुन्दको धामा॥
दूसरी इच्छा नेत्र भरी हेरे । सुकृत अण्ड भए तेहि केरे॥
नेत्र इच्छाते नेत्र बुन्द पावा । तेहिमें सुकृत अंश निरमावा ॥
तिसरी इच्छा अविगत बानी । श्रवण इच्छामें आनि समानी ॥
श्रवन बुन्द अंश तिन्ह लीन्हा । अबोलनाम तेहिबुन्दको दीन्हा॥
चौथे अण्डमें सत्य पसारा । चौथी इच्छा सो वास उचारा॥
स्वाती इच्छा तेहि करिको नामा । स्वाती बुन्द स्वाति सब धामा॥
स्वतिते क्षमा अण्ड निरमाई । अण्ड पांचमों कहुं समुझाई ॥
पांचही इच्छा निमिष ठेहेराई । करा एकमें जीवन पराई ॥
स्वाति प्रसन इच्छा उपजाई । जलहि अंड तहाँ उपज्यो भाई॥
पांच इच्छाके पांच अण्ड निरमाई। दोये इच्छा वेही गुप्त रहाई ॥
छठि इच्छा है करता भाई । करति बुन्द तेहि मांहि समाई॥

सातें इच्छा सर्वत्र रहाई। सात बुन्द सब कला है भाई ॥
सातों इच्छा के करता अंकूला। सात करी सब दृष्टिको मूला ॥
तिनके सोरा अंश प्रमाना। एक वचनके सबही बंधाना ॥
आनंद बुन्द है सदा समीपा। तेहि अंकुरको भिन्न है दीपा ॥
एक सुरति एक अंकुर कहाई। तिहिको नाम सहजश्रुति भाई ॥
सात करी मो थाका बनाई। ताकी गतिमति काहु न पाई ॥
दो सुरति इच्छांकुर निर्माई। आठ इच्छा तेहि माँहि उपजाई ॥
सात इच्छा करि सात समानी। आठमी इच्छा काल उतपानी ॥
तिसरी सुरति मूल प्रकाशा। मूलकीर्ति मूलअंकुर निवासा ॥
सुरतिमूल तिहि माँहि समानी। पांच ब्रह्म तहां भये उतपानी ॥
सहज ब्रह्मके पांचतत्त्व भये भाई। तत्त्व सनेही सर्व उतपन आई ॥
दुसरी इच्छा ब्रह्मको चीन्हा। सुकृत चिन्ह उत्पन्न कीन्हा ॥
तिसरो ब्रह्म मूल परवानी। मूल सुरति सब सृष्टि उतपानी ॥
चौथे सोहं ब्रह्म कहावा। तेहि अण्डमों सर्व समावा ॥
पांचों ब्रह्म जलाहल भयऊ। चौदह अंश गुप्त निर्मयऊ ॥
तीनि सुरतिकी एती रचना। चौथे सोहं कढे अमृत बचना ॥
सुरति अभयबुन्द तिन्ह पावा। तेहमें आठ अंस निरमावा ॥
चार गुप्त चार प्रगट पसारा। आपसरूपमिलआठोंअमीअपारा ॥
तिनके भिन्न भिन्न परसाना। चार अंश भये सृष्टि बंधाना ॥
चार अंश भये मुक्त प्रमाना। तिन्हको भेद न काहू जाना ॥
अंशहि अंश काहु नहिं देखा। शब्द स्वरूपी सबको पेखा ॥
तेहिके सनद अब कहों समुझाई। जेष्ठो अंश अचिंत है भाई ॥
तिनके प्रेम सुरति घट आई। तेहि प्रेममें मोह समाई ॥
तेहि मोहमें अक्षर उतपानी। अक्षर जारि वेद सहेदानी ॥
अक्षर तेहिते चारे भये दीपा। चार अंशने रहे समीपा ॥

चार अंश अक्षरते भयऊ। सर्व सृष्टि भंडार ते ठयऊ॥
प्रथम अंशते माया भयऊ। शुक्र बीज पृथ्वी महँ ठयऊ॥
दूसरे अदल अंश निर्माए। रसना सहस्र तिनते निरमाए॥
तिसरे कुर्म भये अवतारा। जिन सर्व पृथ्वीको लीनो भारा॥
चौथे अंश भये धर्मराई। जिन्हें पाप पुण्यको लेखा पाई॥
चार अंशको देखि भुलाना। तब अक्षर घटमाहिं समाना॥
तब समर्थ एक युक्ति बनाई। सातवां अंश तब आनि समाई॥
तेहिते निद्रा उपजी भाई। सत्तर निमिष युग गयो सिराई॥
जब लगि निद्रा अक्षरकूं आई। तब कछु दृश्य रहे ना भाई॥
सब समर्थ मन शब्द उचारा। तेहिमो केल अण्ड भयो भारा॥
तेहि अण्डमें उत्पति भूपा। नाम निरञ्जन ज्योति सरूपा॥
तिनते तीन देव भए भाई। यहां सब लेहु लखि भाई॥
सर्व सृष्टि काल धरि खाई। काल देवको कोई न पाई॥

साखी–टीकाका

सात सुरति तब मुल हैं, उत्पत्ति सकल पसार।
अक्षरते सब सृष्टि भई, कालते भये तिछार॥

चौपाई–धर्मदास उवाच

सांचे सद्गुरुकी बलिहारी। धर्मदास विनती अनुसारी॥
और भेद सर्व हम पावा। आठमी इच्छा कीन्ह निर्मावा॥
केहि कारणते इच्छा कहाई। अनइच्छा किमि कारण आई॥
किमिकारणस्वरूपजोकालबनाई।यहां अविगति गति कहो समुझाई

साखी–सत्य पुरुष तुम आदि हो, बोलो शब्द रसाल।
अन इच्छाको मर्म कहो, जेहिते उपज्यो काल॥

चौपाई-सदगुरु उवाच

कहे कबीर सुनो धर्मदासा । सत्य शब्द है हमरे पासा॥जेहिते वृद्ध होय सो इच्छा कहावै। जेहिते नास्ति होय ऐसी अनइच्छा कहावै॥ इच्छा अंकुरकी तन इच्छा हमारी । ते गुणकाल अंश अवतारी॥ बिना कालजीव नहीं डराई।तेहि वर काल रचा हम भाई॥इच्छामें दया अंश है भाई । अनइच्छा निर्दया कहाई ॥ जीवन मुक्ति कहौ समुझाई । वचन न माने ताहि काल धरिखाई ॥

साखी-कालअंश क्या जन करौ, ताते जीव कालको खेल ।
ऐसेका खेल समान है, ज्यों तिल्लीमें तेल ॥

चौपाई-धर्मदास वचन

धर्मदास बहुते सुख पावा । उठि सतगुरुसों बिनती लावा॥ उत्पति कारण हम सब देखा । पांजी भेदका कहो विवेका ॥ पांजी सुरति गुरु देहो लखाई । जेहि मारग हंसा चलि आई ॥ नामप्रताप कहो समुझाई । जेहिके बल हंसा घर जाई ॥

साखी-धर्मदास विनती करै,जिवरा भयो अनंद ।
आप अपुनको लखि परचो, जब कटे कालको फन्द॥

चौपाई-सतगुरु कहे पांजी भेद

सुनो धर्मदास पांजी भेद प्रकासा।जिनसे सुने है हंस निशवासा॥ पांजी तीन आश है ओगाहा । जो कोई जीव पहुँचे ताहा ॥ प्रथम पांजी आश है भाई । तहाँ अग्रशब्द चढ़ि लोकै जाई ॥ सात शून्य दश लोक प्रमाना । अंश जो लोक लोकको थाना॥ नौ स्थान दशमो घर साँचा । तेहि चढ़ि गए जीव सब बाँचा॥ सोरा असंख्यपर लागी तारा । तेहि चढ़ि हंस गए लोक दरबारा॥ दूसरी पांजी लोक कहै भाई । तेहि पांजी त्री देव रहाई ॥ अष्टम दीप बावीसमें अकाशा । तहाँ विष्णु चलिगए तेहि पासा॥

तिसरी पांजीका भेद अपारा । तुमसो धर्मनि कहों विचारा ॥
पाताल पांजी है जीव उबारा । भजन प्रतापसों उधरे दूबारा ॥
वाचा बंधको द्वार बनावा । तेहि पांजी गुरु भेद बतावा ॥
पांच भेद पाताल विनाशी । ताते काल करै नहिं हाशी ॥
तेहि पांजी जलरंग गुसांई । चौदह मुनि हैं तिनके ठाईं ॥
जलरंग पासको भेजदो पावै । लोकै जात बार नहिं लावै ॥
सोरा लोक सोरा दरवाजा । सोरा अंश तेहि मांहि बिराजा ॥
सोरा अंश चिह्न जो पावै । जाके सद्गुरुनिज भेद लखावै ॥
साखी-तीनि पांजीके निर्णय, तुमसों कहो समुझाय ।
सार शब्द जो पाए तो, छिनमें हंस घर जाय ॥

धर्मदास पूछे मंत्र जो गूढा

सत्य सत्य मुख दयाजो कीजै । अपनोके मोहि निज कर लीजै ॥
तुम समर्थ गुरु जक्त के कर्ता । सकल भेद जो निर्णय वार्ता ॥
हम चीन्हा तुम बरन छिपाए । बरन छिपाये तुम जगमां आए ॥
आए तुम समर्थ हो अंतर्जानी । सत्य कहो हम निश्चय मानी ॥
जो अपना कर जानो मोहीं । तो अपना तत्व बताओ सोहीं ॥
अब तुम कहो कैसे जग आये । कैसे तुम जोलहा कहाये ॥
साखी-एहि सब कारन भाखिहो, सब संशय मिटिजाय ।
अपनो कै प्रतिपाल हो, हंस लियो मुकताय ॥

चौपाई-सतगुरु खुदा होय प्रकटे साखी-खुदबानीकी

सतगुरु वचन बिहँसिके बोले । सत्य सत्य तुम अन्तर खोले ॥
तुमसो अंतर कछू न राखों । सकल भेदकी निर्णय भाखों ॥
कहत वचन प्रतीत न आवै । तजत देह जीव ठौर न पावै ॥
तुम युग बंध होए कोई सेवकाई । तेहि पीछे हम भेद लखाई ॥
धर्मदास करनी निज करिहो । सीस उतार निज आगे धरिहो ॥

बातो साटे वस्तु जो आई । तौ एको जीव विनशि ना जाई॥
चौका करिहो लेहो प्रवाना । तब पुनि कहूँ आप बंधाना ॥
तब नहीं हते खंड ब्रह्मंडा । तब नहीं नदी अठारह गण्डा ॥
तब नहीं सात सुरत उतपानी । तब नहीं कीन्ह सकल सहिदानी॥
तब नहीं कहते अंश और बंसा । तब नहिं कालत्रिगुणको संशा ॥
तब नहिं पांच अण्ड निर्माए । तब नहिं लोकहिं दीप बनाए ॥
अविगतिकी गति काहु न पाई । आप बरन हम रहे छिपाई ॥
तब हम हते हैंता नहिं कोई । हमरे माहि रहे सब सोई ॥
इस पारस सब सुर्त वट दीन्हा । एक बुन्दते सब कछु कीन्हा ॥
नाम बड़ाई अंशको दीन्हा । शुक्ल प्रकार रची हम लीन्हा॥
चारि सुरति हम प्रगट पसारा । पांचवीं सुरतिहम गुप्त विचारा॥
तुम जिन शंका मानो भाई । हमते करता दूसरे न आई ॥
बरन छिपाय हम जगमों आये । युगन युगन हम जीव मुक्ताये॥
चारों युग हम पंथ चलावा । सात सुरति काहु भेद न पावा॥
अब हम कीन्हा प्रगट पसारा । सातों सुरती पाय टकसारा ॥
आठे सुरति सुकृत अवसारा । ताते तुमते ज्ञान पसारा ॥
नौतम तरति घरमें राखी । तिनके भेद हम कबहूँ न भाखी॥
तुम बोधन हम जगमें आये । जाते काल तुम्हें भरमाये ॥
तब हम लोकते दीन्ह पियाना । तुमकारनहमअक्षय अछिपाना॥

मारग भेद सद्गुरु कहे

प्रथम सहज सुरति लगि आए । नौतम सुरति हम नाम धराये॥
उन्हसों क[illegible] समस्त्य संदेशा । सहज अंकुर मानो उपदेशा ॥

सहज पूछ

तब उन पूछा तुमको आऊ । सत्य वचन तुम कहों कहाऊ ॥

सद्गुरु कहैं

तब मैं कह्यो मोर नाम कबीर । मैं समर्थ श्रुति नौतम शरीर ॥
पाँन प्रवाना तुम लेहो भाई । समरथ हुकम लेहो शिर नाई॥
प्रथम चौका सहज दीपमें कीन्हा। सहज सुरतिका अंकपर लीन्हा॥
तब हम चले इच्छा सुरति लगाए । सत्य शब्द उन्हहीं समुझाए ॥
तीन अंकपर जीव चढ़ावा । मूल सुरतिके दीप चलि आवा॥
सत्य शब्द तहाँ बोलै बानी । मूल सुरतिसों निर्णय ठानी ॥

मूलसुरति पूछे

कहो तुम अस कहाँते आए । के तुम समरथ बरण छिपाए॥

सद्गुरु कहैं

ना हम समरथसमरत्थनिशानी । नौतम सुरति पुरुषकी बानी ॥
जीवकाज संसार पठावा । तुमको सिखाबन पुरुषको आवा॥
लेहु पान तुम तजो बड़ाई । पान लेख गुरु होवे सहाई ॥
मूल सुरति का चौका कीन्हा । चले सोहंग दीप पग दीन्हा ॥
तहां शब्द बोले निर्वाना । सत्य सन्देशै पुरुष प्रमाना ॥
चौथे चौका सोहंको कीन्हा । सोहं सुरत अंकेपर लीन्हा ॥
चौका चारि अधरपर कीन्हा । चले अचिंत दीप पग दीन्हा ॥
अचिंत अंश है रूप उजागर । मानि दीपमणिनके आगर ॥
कंचन चरण भूमि उजियारी । मणि आगर मणीन विस्तारी ॥
वहां सत्य हम बोले बानी । अंश अचिंत करो पहिचानी ॥

अचिंत पूछो

पूछै अचिंत कहां आये । कौन चितावर इहाँ सिधाये ॥

सद्गुरु कहैं

तब हम कह्यो समर्थ पठावा । जीवकाजवरइहांहमचलिआवा॥
तुमते समरथ कह्यो सन्देशा । ज्ञान गम्य अरुवच उपदेशा ॥

कौल पान दीन होए लेहौ । तन मन चित समर्थकूं देहौ ॥
तब अचिंत लीन्हा परवाना । सत्य शब्द हिरदे हित माना ॥
तब आए अक्षर अस्थाना । महा शून्य माहे होत ठिकाना॥

अक्षर पूछे

तब अक्षर पूछे विहसाई । कोन अंश तुम कहाँ सिधाई ॥

सद्गुरु कहैं

तबहमकह्योमोहेसमरथपठावा । जीवकाज इहाँ हमचलि आवा॥
तुमते समरथ कह्यो संदेशा । ग्यानगम्य गुरु वचन उपदेशा॥
कौल पान दीन होए लेहौ । तन मन चित्त समर्थकूं देहौ ॥
तब अक्षर लीन्हा प्रमाना । सत्य शब्द हिरदे हित माना ॥

अक्षर पूछे

तब आए अक्षर अस्थाना । महाशून्यमाहे ताहि ठिकाना॥
तब अक्षर पूछे विहसाई । कोन अंश तुम कहाँ सिधाई ॥

सद्गुरु कहैं

तब हम कही कहांते आए । जिन एहि सब उतपानि रचाये॥
जिनइच्छापर सृष्टि रचि दीन्हा । छापवचनकौल जिन्ह कीन्हा॥

अक्षर उवाच

तब अक्षर घट कीन्ह विचारा । तुमतौ आपे सिरजन हारा ॥
इतना भेद हमीं पुनि जान्हा । सोइ निज भेद तुमकहेउ बखाना॥
सोई छापकी कहों निशानी । तब हम जाने सत्तकी बानी ॥

सद्गुरु उवाच

सुनो अक्षर मैं कहुँ समुझाई । वस्तु सिखापन तुमको आई ॥
प्रथममें सृष्टि रचौ फुरमाई । दुसरे कालको लीन्ह बचाई ॥
तिसरे वचन दर्शनको कीन्हा । इतना वचन समर्थ तुम्हें दीन्हा॥

अक्षर उवाच

तब अक्षर दोनों कर जोरी । तुम निश्चय जीवन बंध छोरी ॥
एक वचन मैं पूछो अर्थाई । तुम समर्थको अंश हो भाई ॥

सद्गुरु उवाच

तब अक्षरते कह्यो समुझाई । कौल तुम्हारे देन हम आई ॥
तब दिल दया जीवनकी आई । वरणबोधकर छिपि जग आई ॥
समर्थस्वरूपसबजग शिर जाए । गुरुसरूप मुक्ता बनि आए ॥
वचन गहे सो उतरे पारा । बिना वचन डूबे संसारा ॥

अक्षर विनती करै

तब अक्षर निज विनती ठानी । समरथ देहो पान परवानी ॥
हम चीन्हा तुम पुरुष पुराना । जब आए तुम एहि ठिकाना ॥

सद्गुरु कहें

तब अक्षरका चौका कीन्हा । अक्षर सुरत अंकपर लीन्हा ॥
तब चलि दीप झंझरी आए । सत्य शब्द तहां बोल सुनाये ॥
गरजे झंझरी पग धरत न जाई । कैल पुरुष बैठो तिहिं ठाई ॥
दोइ पालँग सुन्य है अँधारा । चारि कोटि ज्योति उजियारा ॥
झंझरी दीप हम गए मझारी । गर्भित कैल नहीं बिदे बिचारी ॥

निर्जर कहैं

को तुम अज धरहोवरियारा । क्यों इम झँझरीमहँ पगधारा ॥
कौन हो अंश कहांते आए । अपुनो नाम कहो समुझाये ॥

सद्गुरु कहें

तब हम कही सुनो तुम बानी । योग जीत नाम मोर ज्ञानी ॥
समरथ मांग जीव मुकताई । तेहि कारण आए तुम्हरे ठाई ॥
इतना कहत कैल दुख पावा । क्रोधवंत होइ सन्मुख धावा ॥

कैल अनन्त भेष धरि लीन्हा । हम सन्मुख बहुयुद्धते कीन्हा ॥
गजसरूप होइ सनमुख धावा । गही दंत चहुँ बाजु फिरावा ॥
तट फटकार ले पढ़े सुंड डारा । भागे कैल तब पैठ पताला ॥
गयो पताल जहां कूर्म अवतारा । तब हम चाल तहाँ पग धारा ॥

कैल कहे

विनती करे कूर्म सों जाई । राखो कूर्म मैं तुम शरणाई ॥

कूर्म कहें

तबै कूर्म उठि विनती लाई । को तुम्ह आहु कहांते आई ॥

सद्गुरु कहें

तब हम कह्यो नाम मोरा ज्ञानी । योग जीत हम अंश प्रमानी ॥
समरथ हुक्म जीव उबरण आये । काल फांसते जीव मुक्ताये ॥
झँझरीमाहें बहुयुद्ध हमसोंकीन्हा । भागिके शरण तुम्हारी लीन्हा ॥
जो सिखवन समरथका लेहो । तो कैल हमार आगेकरि देहो ॥

कैल कहे

तबही कैल पुनि सनमुख आये । आइ ज्ञानी सों वचन सुनाये ॥
सुनो ज्ञानी मोर वचन कोलेखा । अपने हृदय तुम करो विवेका ॥
समरथ वचन दीन्ह मोहे हारी । मैं पायो लोक संसारी ॥
तबकी बात रहित भइ भाई । अब कसउटी अदल चलाई ॥
सबै अंश सुगते मध्यानी । हम पर कोप भये तुम ज्ञानी ॥
सत्तर युग हम सेवा कीन्हां । चौदह भवन बकस मोहिं दीन्हां ॥
जैसी निर्णय हम सुनावो । तैसी सिखावन जानि चलावो ॥

कूर्म उवाच

कूर्म अंश तब बोले बानी । अपनी अपनी करो रजधानी ॥
इतना वचन सुनि लेहु हमारा । माहिं माहिं मतिकरो बिगारा ॥

चौका पानको जीव तुम्हारा। लोक वेदको फैल पसारा ॥
जो कोई करै जोर बरियाई। ताको संग हम नहिं है भाई ॥
तब ज्ञानी बहुते सुख पावा। फैल उलटि झँझरिसे आवा ॥

सद्गुरु उवाच

तब मैं धर्मनि संसारहि आवा। तीन देवसों टेर सुनावा ॥
एहि भूले माया अभिमाना। सत्य शब्द उनहू नहिं जाना ॥
सुर नर मुनि कोई नहिं मानें। वेदहि क्रिया सबै लपटाने ॥
युगन युगनमें शब्द पुकारा। जिन चिन्हें भए हंस हमारा ॥
बहुतेक हंस लोकको गयऊ। सत्य प्रती जाके धन भयऊ ॥
खोजत खोजत तुमपे आये। सर्व भँडार तुम्हें खोल बताए ॥
अब तुम कहा हमारो करहू। सोरा सतको चौका विस्तरहू ॥

साखी-सोरा सुतका चौका, एक अंग गुरु सिख होय।
सदा हजूरी वे रहैं, मिले बिछुरे कोय ॥

सोरठा-जाने संत सुजान, बरंगीके रंगको ॥
समुन्दर बुन्द समान, मर्म कोइ जाने नहीं ॥

छन्द-ज्ञान प्रकासे दीपका, जुगति नाम जिन पाइया।
सोइ दीप आदि साजिके, सोइ गुरु शीस चढ़ाई॥

साखी-ब्रह्मज्ञानकी

अगम कोइ चीन्हें नहीं, लोभे ज्योति प्रकाश।
रसबस जिव बांधे कालसों, फिरि फिरि बांधे आश॥

चौकाविधि धर्मदास उवाच

धर्मदास तब सोंज मँगाये। कर जोरे उठि विनती लाये ॥
चौका जुगति बतावो सोही। पाँन प्रवाना देहो गुरु मोही ॥
सद्गुरु सम्मुख आसनकीन्हा। चौका पूरि प्रदक्षिण दीन्हा ॥
पान मिठाई नारियर सोपारी। लौंगएलची कपूर विचारी ॥

नारियर मोरिके मालुम कीन्हा। समरथ भोग सुर्तसों लीन्हा ॥
लिखनी पान हाथके लेऊ। सत्यके अंक पानपर देऊ ॥
तब यमपुरमें परचो खँबारा। मुक्तिके पंथ चल्यो संसारा ॥
अजरपान धर्मदासको दीन्हा। हंसरूप करि अपना लीन्हा ॥
अब तुम हमको चिन्हों भाई। गई तिमिर पिछली सुधि आई॥
पान प्रसाद सिखावन पावा। शीश उतारि ले चरण छुवावा॥
धर्मदास तुम्हें सब विधि कीन्हा। मांगों बचन मैं सर्वस दीन्हा ॥

धर्मदास उवाच

धर्मदास विनती अनुसारी। पायो बोल वचन मैं हारी ॥
मैं तरों और हमारी शाखा। और पीछले सबही पुरखा ॥

सद्गुरु उवाच

तब सतगुरु मनमें विहसाने। ते कहा माँग्यो कछु माँगेनजाने॥
सर्व सृष्टिको तारो भाई। तुम तो आपन वंश ठहराई ॥
एहि प्रपंच काल सब कीन्हा। मतिबुधि खैंचि तुम्हारी लीन्हा॥
तब धर्मदास जो भये मलीना। जैसे कँवलको संपुट दीन्हा ॥
तब सतगुरु फिर बोध विचारा। धर्मदास तुम अंश हमारा ॥
एक वस्तु गोय हम राखी। सो निर्णय नहिं तुमसों भाखी॥
नौतन सुरति हमारी शाखा। सातसुरति जो उत्पति भाखा॥
आठवींसुरत तुमहि चलि आए। नौतम सुरति हम गुप्त छिपाए॥
नौतम सुरति वचन निज मोरा। जेहिते पला न पकरै चोरा ॥

धर्मदास उवाच

धर्मदास दोनों कर जोरा। कहो वचन सोई सद्गुरु मोरा॥
सोई वचन कहौ समुझाई। जेहिते जीवन सृष्टि नहिं आई॥

सद्गुरु उवाच

आठ बुन्दकी जुगति बनाई। नौतमते आठों बुन्द मुक्ताई ॥
बिना गुरु कोऊ भेद नहिं पावे। युग बँधे सो हंस कहावे ॥

तब युग बंध भये धर्मदासा । नौतम सुरतबुन्द परकासा ॥
नौतम अंश हिरम्म कीन्हा । आशिकबुन्दसावतिह दीन्हा ॥

धर्मदासकी विनती

धर्मदास विनती अनुसारी । साहब विनती सुनो हमारी ॥
नारायण दास हमारे सोई । उनकी सिखावन कैसी होई ॥
कैसी पंगति उनको करहू । अब तुम अपना वंश विस्तरहू ॥
दोइ कैसे चलिहैं रजधानी । सो सतगुरु मोहिं कहो बखानी ॥

सद्गुरु उवाच

तब सतगुरु एक वचन पुकारा । चूडामणि वंश छत्र उजियारा ॥
और सब बीज कील है भाई । तातेनारायणनामजीव कहाई ॥
चूरामणि नाम से काल डराई । नरनामको धरि धरि खाई ॥
अदली वंश चुरामणि सोई । बीज वंश निज हमते होई ॥
और सकल जगनाद सनेही । बिन्द वंश पारसकी देही ॥
तिन्हके सनद चले संसारा । उनके हाथ मुक्ति टकसारा ॥
धर्मदास तुम नाद सनेही । तुम्हरे वंशहि ब्यालिस देही ॥
मैं दीन्हों तुम लेन नहिं जाना । मुक्तिके वचन हम दीन निदाना ॥
वंश बयालिस बुन्द तुमारा । सो मैं एक वचनते तारा ॥
और वंश लघु जेते होई । विना छाप नहिं छूटे कोई ॥
बिंद मिले तो वंश कहावे । बिना वचन नहीं घर पावे ॥
नाद बिन्दु युग बन्ध जब होई । तबही काल रहै मुख गोई ॥
गर्भित नाद बचन नहिं मानै । ताते बिंद हम निर्णय ठानै ॥
बिंद एक नाद बहुताई । बिंद मिले सो बिंद कहाई ॥
मम सरूप है बिंदके वंशा । तिन्हके सनद छूटे सब हंसा ॥

साखी-बंश थापे सो सार है, जो गुरु दिढकै देहि।
सांचे दाव बतावही, जीव अपन करि लेहि ॥

धर्मदास उवाच

धर्मदास विनती अनुसारी। साहब विनती सुनो हमारी ॥
पंथ पंगती कैसे नीर बहाई। सो गुरु साँचे दया कराई ॥

सद्‌गुरु उवाच

धर्मदास मैं कहौं समुझाई। हमही तुमहि कैसे बनि आई ॥
ऐसे नाद मिले बिंदको जाई। तबही हंस पहुचे वह ठाई ॥
अंश होइहैं उनके कडिहारा। तिनकी छाप चले संसारा ॥
कोटिन योग युक्ति धरि धावै। बिना बिंद नहिं घरको पावै ॥
हम बूंद तुम नाम प्रमाना। नारायण नाम नहिं ठिकाना ॥
वंश विरोध चलिहै पुनि आगे। काल दगा सब पंथहि लागे ॥

वंशप्रकार

प्रथम वंश उत्तम।१। दूसरा वंश अहंकारी।२। तीसरा वंश प्रचंड।३। चौथे वंश बीरहे।४। पाँचवेंवंशनिद्रा।५। छटे वंश उदास।६। सांतवें वंश ज्ञानचतुराई।७। आठे द्वादश पन्थ विरोध।८। नौवें वंश पंथ पूजा।९। दसवें वंश प्रकाश।१०। ग्यारहवें वंश प्रकट पसारा।११। बारहवें वंश प्रगट होय उजियारा।१२। तेरहवें वंश मिटे सकल अँधियारा।१३। एती दगा कालकी समाई है। तत्त्वबिन्दुकी टेक रह जाई है ॥

अगम बानी

अब तुम सुनो अगम्य की बानी। तुम पर कोपे काल अभिमानी ॥
चार सुरति काल की भाई। ताको काल पुनिनिकट बुलाई ॥
तुमसों मैं चार बानी भाषा। चारि निर्णयकी बोली भाषा ॥
तेहि पर काल करै चतुराई। चारों सुरति कहें संधि बताई ॥

कालकी चारसनंघ

चित्तभंग जग कीन्ह प्रकाशा। बीजकसंघ तिन्ह कीन्ह निवासा ॥
मन भंग ले मूल समाई। फैल जान बहुत चतुराई ॥
ज्ञान भंग है बड़ो अन्याई। सो टकसार भेद ले आई ॥
चौथे अकिल भंगको लेखा। वो तारतम ले करै विवेका ॥

छे दर्शन

आगे चारि संप्रदा भक्ति दृढ़ाई। सत्य पुरुषकी खबरि न पाई ॥
चारि पंथ आगम हम भाषा। ताके मैं न्हेंचे तुम्हरी साखा ॥
ताते पंथ निनार हम राखा। सो सब तोसों दीनो भाषा ॥
बिंदु हमार चूरामणिदासा। उन्हके हाथे मुक्त निवासा ॥
इनके निकट काल नहिं आवे। बचन वंश को शीश नवावे ॥

साखी—चारि वानी चारि खानी, चारि ज्ञान निधान ॥
लाख चौरासी जिया जोनिनमें,तहां तीन जीवप्रमान॥

धर्मदास पूछे तीन जीव की सनद

धर्मदास पूछे चितलाई। तीन जीवन गुरु देहो बताई ॥

गुरु कहें तीन जीवन की परीक्षा

तब सद्गुरु बोले अस बानी। तीन जीवकीलखो सहेदानी ॥
तीन प्रकारके जीवबोधमें आई। चाल चले सो घरको जाई ॥
प्रथम जीव ब्रह्मसृष्टि है भाई। जिन्ह आवागमन रहितघरपाई॥
दूसर जीव सृष्टि व्यवहारा। करनी करि लीन्हे अवतारा ॥
तिसरी माया सृष्टि बन्धाना। बोध बचन कीनो परमाना ॥
अब तुम पंथ चलावो जाई। पहुचे जीव तुम्हारी बांई ॥
प्रथम वानिसुनि सुरतिलगावे। निश्चय दर्श हमारा पावे ॥
प्रथम बानि है ज्ञान हमारा। सुनि हंस आवे सत्य दरबारा ॥
संमत पंद्रासे बीस प्रमाना। मास जेठ बरसायत जाना ॥
तेहिदिनकालिमोउतरेफुरमाना। वंश बयालिस रोपे थाना ॥

चारि गुरु निज सीख हमारा । तिन्हकी छाप चले संसारा ॥
बंस बयालिस वचन हमारा । तिन्हते मुक्त होय संसारा ॥
सहसर भांति होम जो कोइ धावै । कोटिनयोग समाधि लगावै ॥
कोटिन ज्ञान छान बिल छाने । अर्थ परीक्षा बहुविधि आने ॥
वचन वंश को बीरा नहिं पावै । फिर मरे फिरहि गर्भमें आवै ॥
धर्मदास सुनो सत्य की बानी । काल प्रपंच बहुतविधि ठानी ॥

द्वादश पंथ चलो सो भेद

द्वादश पंथ काल फुरमाना । भूले जीव न जाय ठिकाना ॥
ताते आगम कहि हम राखा । वंश हमार चूरामणि शाखा ॥
प्रथम जगमें जागू भ्रमावै । विना भेद ओ ग्रन्थ चुरावै ॥
दुसरि सुरति गोपालहि होई । अक्षर जो जोग दृढ़ावे सोई ॥
तिसरा मूल निरञ्जन बानी । लोकवेदकी निर्णय ठानी ॥
चौथे पंथ टकसार भेद लैआवै । नीर पवन को सन्धि बतावै ॥
सो ब्रह्म अभिमानी जानी । सो बहुत जीवनकीकरीहै हानी ॥
पांचो पंथ बीज को लेखा । लोक प्रलोक कहें हममें देखा ॥
पांच तत्व का मर्म दृढ़ावै । सो बीजक शुक्ल ले आवै ॥
छठवाँ पंथ सत्यनामि प्रकाशा । घटके माहीं मार्ग निवासा ॥
सातवां जीव पंथले बोले बानी । भयो प्रतीत मर्म नहिं जानी ॥
आठवें राम कबीर कहावै । सतगुरु भ्रमलै जीव दृढावै ॥
नौमें ज्ञानकी काल दिखावै । भई प्रतीत जीव सुख पावै ॥
दसवें भेद परमधाम की बानी । साख हमारी निर्णय ठानी ॥
साखी भाव प्रेम उपजावै । ब्रह्मज्ञानकी राह चलावै ॥
तिनमें वंश अंश अधिकारा । तिनमेंसो शब्द होय निरधारा ॥
संवत सत्रासै पचहत्तर होई । तादिन प्रेम प्रकटें जग सोई ॥

आज्ञा रहै ब्रह्म बोध लावे। कोली चमार सबके घर खावे॥
साखि हमार ले जिव समुझावे। असंख्य जन्ममें ठौर ना पावे॥
बारवें पन्थ प्रगट है बानी। शब्द हमारेकी निर्णय ठानी॥
अस्थिर घरका मरम न पावै। ये बार पंथ हमहीको ध्यावै॥
बारहे पन्थ हमही चलि आवै। सब पथ मिट एकहीपंथ चलावै॥
तब लगि बोधो कुरी चमारा। फेरी तुम बोधो राज दर्बारा॥
प्रथम चरन कलजुग नियराना। तब मगहर माडो मैदाना॥
धर्मरायसे मांडो बाजी। तब धरि बोधो पंडित काजी॥
बावन वीर कबीरं कहाऊ। भवसागरसों जीव मुकताऊ॥

कलियुगको अंत पठ्यते

ग्रहण परै चौंतीससो बारा। कलियुग लेखा भयो निर्धारा॥
३४००ग्रहणपरैसो लेखाकीन्हा। कलियुग अंतहु पियाना दीन्हा॥
पांच हजार पाँचसौ पांचा। तब ये शब्द होगया सांचा५५०५
सहस्र वर्ष ग्रहण निर्धारा। आगम सत्य कबीर पोकारा॥
तेरा वंश चलै रजधानी। वंश चूरामणि प्रगटे ज्ञानी॥
तिनकी देह छायाँ नहिं होई। सर्व पृथ्वी प्रमानिक सोई॥

किया सोगंद

धर्मदास मोरी लाख दोहाई। भूल शब्द बाहर जिन जाई॥
पवित्र ज्ञान तुम जगमों भाखौ। मूलज्ञान गोइ तुम राखौ॥
मूलज्ञान जो बाहेर परही। बिचलेपीढीवंशाहंस नहिं तरही॥
तेतिस अर्व ज्ञान हम भाखा। मूलज्ञान गोए हम राखा॥
मूलज्ञान तुम तब लगि छपाई। जब लगि द्वादश पंथ मिटाई॥

द्वादशपंथका जाव अस्थान

द्वादश पंथ अंशनके भाई। जीवबांधि अपने लोक लेजाई॥
द्वादश पंथमें पुरुष न पावै। जीव अंशमें जाइ समावै॥

तुमजिन भूलो ज्ञानमो भाई । बिगड़े हंस सब जीव भुलाई ॥
सोरठा—हमरो करै सब ज्ञान, वंस बयालिस तिलक है ।
द्वादस पंथमें मान, पुरुष शब्द तोसे कहूँ ॥

धर्मदास वचन

धर्मदास पूछे चितलाई । वंस बखान गुरु कहो समुझाई ॥
कौन वंस कौन अंस हमारा । कौन वंश अंश मर्जाद सुधारा ॥
पंथ पंगति तेहि भाव बतावौ । जैसे जगमो पंथ चलावौ ॥
तुम्हरो डर माने सब कोई । वचन डोर बांध्यो जग सोई ॥
दास नरायण सरण न पावा । दुसरा वंश अंश धरि आवा ॥
तेहिकी पंगति कहो समुझाई । सोई पंगति आगे चलि जाई ॥
साखी—इतनी निरभये भाखिहों, गुरु मोहि कहो समुझाय ॥
वंश अंशकी पंगति, सब विधि देहु सिखाय ।

साखी—वंशनिखेहकी । सद्गुरु उवाच

धर्मदास सुन भेद अपारा । तुमसों कहूँ वंश अंश निरधारा॥
समर्थ हमसों ऐसी फ़ुरमाई । धर्मदासको लेहो जगाई ॥
धर्मदास है अंस हमारा । उन्हसों भेद कहो निर्धारा ॥
उनको जागा एक पंथ दृढावौ । पीछे हम अपनी अंश पठावौ॥
ते जन्म लीहे धर्मदाससे आई । वोही हंसनके बन्ध मुकताई ॥
तिन्हके वंश चले कडिहारा । बहुत जीवनि के करे उबारा ॥
तब हम पुरुषसों बिनती कीन्हा। धन्य वंस धर्मदास जो लीन्हा॥
वो कैसे कै लोकै आवा । सोई बात गुरु मोहिं सुनावा ॥

सुदबानी

तब समर्थ अस बोले बानी । धर्मदासको वंस अभिमानी ॥
ताते हम अपना अंश पठावा । जंबुद्वीपमें थाना बैठावा ॥

अच्छर अच्छर अतीतकी बानी। निःअच्छर कोई बिरले जानी ॥
निःअक्षर की अक्षर श्वासा। नहीं धरनी नहीं गगन प्रकासा॥
अक्षर तीनि लोक बिस्तारा। तामें अरुझो सब संसारा ॥
तीन सुत तेज अंडमों आई। आप आप इन्हें आप हढाई ॥
चार वेद कहै तिनकी साखी। अक्षर अतीत थापि उन्ह राखी ॥
अब भिन्न भिन्न कहूं अर्थाई। सात सुरतिके स्थान बताई ॥
अक्षर अतीत माया सो कहिये। सोई सुरति निरंजन लहिये ॥
अक्षर सुरति दुतिय है स्थाना। जिनके चार वेद परवाना ॥
शब्दातीत अनहद रहता। प्रेम धाम अक्षरकी चहता ॥
चार सुरतिका भेद नियारा। तीनि सुरतिका देउ बिचारा ॥
पांचे सुरति अंकुरकी बानी। पांचे स्थान तेहि ठहरानी ॥
छटे स्थाना अंकुरको है आपा। जेहिते सात करी उततापा ॥
सातवी सुरति सहजकी रही। उहि समरथको देखा सही ॥
सात सुरति सात है स्थाना। मूल सुरति है समर्थ प्रमाना ॥
सहज सुरति सब सुत उपजाई। मूल सुरति ले हंस समाई ॥
मूल सुरति है सबको मूला। सात सुरतिको एक स्थूला ॥
सात सुरति मूल सिध सब माहीं। धर्मदास लखि राखौ ताहीं ॥
शब्द पांजी इतना परमाना। अब कहूँ कायाकी बन्धाना ॥
सातों सुरति कायामें रहै। औ काया धरि बातें कहै ॥

सुरति स्थान

प्रथमहि दीप अमर मनियारा। तहँ वा मूल सुरति बैठारा ॥
दुसरा अजर दीप तहां कीन्हा। सहज सुरतिको बैठक दीन्हा ॥

चौपाई

तीसर दीप हिरण्मय सोई। सुरति अंकुरकी बैठक होई ॥
चौथे दीप सुरंग निर्मावा। ओहं सोहं तहाँ बैठावा ॥

पाँचवें अधर दीप रहे वासा । तहाँ है अचिंत सुरतिको वासा॥
छठये पच्छ दीप जो कीन्हा । तहाँ अक्षरसुरतिको बैठकदीन्हा॥
सातवीं सुरत कलदीप बिलमाना। काम क्रोध मोह तहाँ समाना ॥
सातवीं सुरति सातहूँ स्थाना । तीन सुरति निरंजन कालप्रमाना॥
पुहुप दीप है सबते न्यारा । तहां समर्थसे जीव विस्तारा ॥

साखी-घटघटकी जो परच कहो, सब स्थान बताय ।
कह कबीर बिनु काया परचै, फिरि फिरि रह भटकाय॥

साखी-सुरति पांजीकी धर्मदास उवाच

मैं सद्गुरु तुम्हरी बलिहारी । कर्म फास कैसे निरुवारी ॥
मोहि कहो जेहि दुख ना होई । काल चरित्र कहो सब सोई ॥
जो तुम्हरे दिल आवे गुसांई । संशय जालते लेहु छुड़ाई ॥
साखी-तुम्हरो भेद अगम्य है, काहु लख्यो नहीं भेद ।
सुर नर मुनि सबही ठगे, सनकादिक शुकदेव ॥

सतगुरु उवाच

धर्मदास सुनियो चितलाई । तुम जनि शंका मानों भाई ॥
पंथ हमारो चलावो जाई । वंश ब्यालिस अटल अधिकाई॥
वंश बयालिस अंस हमारा । सोई समरथ वचन पुकारा ॥
वंश बयालिस गरवाई दीन्हा । इतना वर हम तुमको दीन्हा ॥
वंश अंश समरथ कड़िहारा । सोइ जीवनको करे उबारा ॥
तुम जिन शंका मानो भाई । समरथ वचन राखो चितलाई॥
अटक काहुकी तुम जिन मानों । पाँन नाम तुम निश्चय जानों ॥

साखी-तुम समर्थके अंश हो, जाग्रत वंश तुम्हार ।
समर्थ बचन जनि छोड़हूँ, मानो बचन हमार ॥

साखी–ब्यालिसके निकासी–धर्मदास उवाच

धर्मदास जब विनती लाई । हमसों पन्थ ना चलै गोसाँई ॥
नरदेहीसों पन्थ चलै ना भाई । जाते अपना अंश पठाई ॥
अंश बयालिस देहु पठाई । ते जग हंस लेहि मुकताई ॥
तुम्हें सिखावन हमसों लीना । तुम्ह लै धर्मदासको दीन्हा ॥
बचन वंश एक है भाई । नाम वंश जग मैं बताई ॥
वचन वंश है आदि निशानी । तिन्हकी पावै जग सहेदानी ॥
नाम नरायण हैं अभिमानी । तुम संसार फिर जावो अब ज्ञानी ॥

कबीर उवाच

तब समर्थ मोसे अस कही । बंशहि अस चुरामणि सही ॥
तुम्ह जो सिखावनहमसों लीन्हा । ऐसा जग चूरामणि कीन्हा ॥
संधिक नाम है उन्हकी देही । पावै हंसा जो हमरे सनेही ॥

साखी–यह निज बचन समर्थके, हमसो मेटि न जाय ।
अमीनिको मैं सोंपो है, तुमको सोंपि न जाय ॥

साखी–धर्मदास उवाच

धर्मदास तब भए मलीना । उठि सद्‌गुरुसों बिनती कीन्हा ॥
हो साहेब मैं तुम बलहारी । बंसनारायन शरण तुम्हारी ॥
नाम प्रतीत तुम करो संभारी । नामनरायन तुम बोल विचारी ॥
अपनो बोध राखो संसारा । बिन्द बंस प्रण आए हमारा ॥

साखी–इतनी विनती मैं करूं, तुम दाता गुरु मोर ।
संशय मेटो जीवको, लेहो फँदको छोर ॥

साखी–वंश विषेदकी–सतगुरु उवाच

धर्मदास तुम बड़े विवेकी । तुम्हरे घटमें बुद्धि बढ़ देखी ॥
घर घर गुरु जगतमें होई । हमरे गुरु बचन बंस हैं सोई ॥
बह सब करै मुख चतुराई । ताते जीव राखे भरमाई ॥

मान तजी लेहि परमाना । खोवै जगतपान अभिमाना ॥
वचन वंशकी पारख पावै । सोइ हमारे वंश कहावै ॥
वचन वंश पारख नहिं होई । वंश हंस सब जाय विगोई ॥
वचन वन्धीप वंश अधिकारा । पारस सरूपी है संसारा ॥
पार्स छुवे लोहा कँचन होई । पोहोप बास तिल भेदे सोई ॥
वचन वंश है पुरुष सनेही । कागरूपते हंस करि लेही ॥
सो सब उत्पत्ति कहो समुझाई । जो चीन्हे तो लोके जाई ॥
धर्मदास तुम पन्थके राजा । नाद बिंदु हम दोनों साजा ॥
तुम्हरे वंश पंथके कडिहारा । वचन बंश लोक सठिहारा ॥
सतगुरु बचन लेहि सिर नाई । तब तुमरे वंश करे गुरुवाई ॥

साखी–कहै कबीर

नाम नरायण जगदगुरु, करै बोध संसार ।
वचन प्रतापसे छूटहि, वो समर्थके कडिहार ॥

साखी–वंश अंसनके–धर्मदास उवाच ॥

धर्मदास विनती अनुसारी । साहब विनती सुनो हमारी ॥
काया पांजीको भेद लखाओ । वंशअंश दोऊ तत समझावो ॥
वा सन्धि कहोजातेहोयउवारा। सोई भेद तुम कहो पुकारा ॥
धाम चारिका भर्म बताओ । कैसे कैलसो आनि समावो ॥
धर्मराय जो अपरबल बीरा । तीन लोकमें ताकी पीरा ॥
कैसे पंथ चले जगमाहीं । तीन लोकमें ताकी छाहीं ॥

साखी–पांजी भेद लखा न हो, वंश अंशनिरधार ॥
इतनी संशय मिटावहू, सतगुरु हंस उबार ॥

साखी–कायापांजी–सतगुरु उवाच

धर्मदास कहीं समुझाई । काया पांजी आदि है भाई ॥
सुर नर मुनि कोई गम्य न पावा । झूठी आस बांध सब धावा ॥

पांजी चार भेद है भाई । चार अंश सब जगहि भ्रमाई ॥
अक्षर तीनि लोक उरझावा । तीनि लोक अक्षर ठेहेरावा ॥
जम्बु दीप है यमको बासा । कैसे मुक्ति होय परकासा ॥
तुम तो जुगनजुगन चलि आए। काहे न शुक्र जीव मुक्ताये ॥
चारि वेद तुम्हें नाहीं माने । वेद क्रिया सब जीव समाने ॥

साखी–हमसों पंथ ना चलिहै, भवसागर दारुण है द्वन्द्व ॥
वंश बयालिस तारहु, काटो कर्मके फंद ॥

सद्गुरु उवाच

सुनो धर्मदास कहुँ मैं तोहीं । तुम नहिं निजके चीन्हे मोहीं॥
हमरो कह्यो नहिं मान्यो भाई । अपना वंश मान्यो मुकताई ॥
सकल सृष्टि गुरु तुमकूँ कीन्हा । तुमसों बंस बयालिस लीन्हा ॥
तुमको जानि बड़ाई दीन्हा । जक्तगुरु हम चूरामणि कीन्हा ॥
हमसों समरथ ऐसी कही । चूरामणि वंश जीवन निरवही॥
वचन वंशको जो नहिं मानी । ताको काल करै जिवहानी ॥
तुमकूं सेवे गुरु व्यवहारा । सो देखे समरथ दरबारा ॥
जो नहिं मानें कहा तुम्हारा । ताका साखीकरै वहिपारा ॥

चौपाई–तुम गुरु बयालिस वंशके, हम कह्यो वचन टकसार॥
तुम्हरे हाथ जीव सब पहुँचहिं, तुम समर्थ कडिहार॥

साखी–गुरुव्याख्यानकी–धर्मदास उवाच ।

हो सतगुरु मैं तुम बलिहारी । हिम मान्यो निज कह्यो तुम्हारी॥
तुम सतगुरु हम शिष्य अजाना। तुम सम हम पुरुष पुराना ॥
गुरुवाईका लेखा सुनाओ । बिन लेखा जीव कैसे मुक्तावो ॥

साखी–लेखा कहो तुम सद्गुरु, सब संशय निरधार ।
हम गुरुवाई करी हैं, मान्यो वचन तुम्हार ॥

चौपाई–गुरुवाईको जुगति–सद्गुरु कहै ।

सुनो धर्मदास कहों मैं बानी । बात हमारी तुम निश्चय मानी ॥
वचन वंश नहिं लागै भारा । लेखा देखि चलै कडिहारा ॥
बिन लेखा गुरुवाई करहीं । आसाबन्ध कालमुख परहीं ॥

चौथा बिसथारकी जुगति

प्रथम लेखा जब चौका पोतावै । तब निकुत मंत्र ले नीर मँगावै ॥
दुसरे चौका पूरो भाई । काया मूलको मन्त्र जगाई ॥
तिसरे आसन करो विस्तारा । पुरुष शब्द निज करो पुकारा ॥
चौथे कलश लै आगे राखौं । पंचतत्वको मन्त्र मुख भाखौं ॥
पाँचमो नारियर स्नान करावो । सोहं शब्द लै भद्र करावो ॥
छठवें स्वेत मिठाई आनो । मानसरोवर मन्त्र बखानो ॥
सातवें उत्तम पान मँगावो । पक्ष पालना मन्त्र गोहरावो ॥
आठवें दलकी जुगति सुधारी । दयाशब्द धोखो अधिकारी ॥

साखी–अरु कपूर लोंग इलायची, दल निरनेकी जुगति ।
विधि विल छांनि केन्हहूँ, दीन्हा गुरु जिव मुक्ति ॥

चौपाई

नौमे नया वस्त्र ले आवो । अमर चीरको मन्त्र जपावो ॥
दसवें सोरा सुपारी धरहु । पाताल अंशको मन्त्र उचारहु ॥
ग्यारवें पांच बरतन आनो । आदि नामको मन्त्र-बखानो ॥
बारहें आनि धरो परवाना । संधिकमन्त्र कहो परवाना ॥
तेरहें चँदवा छत्र बनाया । समरथ मन्त्र छत्रपति आया ॥
चौदहें आरति आनि बनाई । सोहँग मन्त्र निर्णय गोहराई ॥
पंद्रहें तिनका अर्पण कीन्हा । चौदा यमका मन्त्र तब चीन्हा ॥
सोरहें षोडश मन्त्र प्रवाना । कदली दल तहां उत्तम आना ॥
सत्रह सतगुरु करे निशानी । सो नरियर मों डारो पानी ॥

अठारवें अमि शब्द लेनरियर मोरे। नहिं तौ काल सीस ले तोरे ॥
विना एकोत्री जो कडिहारा। ते सब बांधे यमके द्वारा ॥
बिना लेखे जो गुरु कहावे। गुरु डूबै शिष्य पार न पावे ॥

साखी—इतना लेखा पावै, सो साँचो कडिहार।
कहें कबीर बिन लेखा जाने, छलइ काल बटपार ॥

साखी—कडिहारी भेदकी धर्मदास उवाच

साहेब इतना भेद न आवे। सो नाहीं कडिहार कहावै ॥
मूल भेद तुम कहो प्रमाना। तेहिते हंस होय निर्वाना ॥
मूल भेद है आदि निशानी। सो समरथके होय प्रमानी ॥
इतनी परचै हमकूं दीजै। मूल भेदकी दया गुरु कीजै ॥
गुरु सोई जो ज्ञान बतावे। और गुरू को काम न आवे ॥

साखी—धर्मदास कीया करै छुओ सतगुरुके पाँव।
साहब जो मैं तुमते बिछुरो, तो मूलशब्द बारह होइ जाव॥

साखी—मूल भेदकी सद्गुरु उवाच

धर्मदास कहो मैं सोई। मूल भेद घट राखो गोई ॥
गुरु मर्याद काहु ना पाई। ताते शब्द तुम राखो छिपाई॥
मूल भेद है अगम अपारा। विरला हंस पावही पारा ॥
सुर नर मुनि गण गन्धर्व देवा। तिनहू मूल नहिं पायो भेवा ॥
काया मूल है आदि निशानी। सौ धर्मनि तुम सुनो प्रमानी॥
जो निज योग समाधि लगावे। सो तो लाभ तिनहु नहिं पावै॥
चार वेद जिस आगम बखाना। मूल भेद वेदो नहिं जाना ॥
अक्षर मूलकी उत्पति भाखी। अजर मूल ले बारह राखी ॥
अजर मूल है सबको मूला। तेहिते प्रथम काया है स्थूला॥
लाखो सैनमें देउ लखाई। अजर मूल लै लोक समाई ॥
भिन्न भिन्न सब मूल बताऊं। अजर मूल माया दिखलाऊं॥

मूल भेद

प्रथम मूल आदि है भाई। जिन सब उत्पति अंकुर बनाई ॥
दूसर मूल बानी है व्यवहारा। तेहिते सहज सुरति निरधारा ॥
तीसर मूल मर्मको पावै। मूल सुरति सब भेद बतावै ॥
चौथ मूल सोहंग बँधाना। तामें सुरति ओहंग समाना ॥
पाँचएँ है अचित पर बानी। प्रेम सुरति तिहि माँहि समानी ॥
छठे मूल अक्षरकी बानी। योगमाया अक्षर उतपानी ॥
सातवें मूल अक्षरहीकी बानी। तेहिते कैल निरंजन जानी ॥
अक्षर मूल हैं सातवें काला। त्रिगुण काल उत्पति प्रतिपाला ॥
चार काल अपरबल बीरा। जाते जीवको व्यापे पीरा ॥
इतनो मूल चारि काल बखानी। अजर मूल चारि माँहि समानी ॥
सद्गुरु मिले तो भेद लखावैं। बिना सतगुरु कोइ पार न पावैं ॥

साखी—बिनु सद्गुरु बाँचे नहीं, कोटिन करै उपाय।
अजर मूलका खोज न पावै, बांधे यमपुर जाय ॥

साखी—मूल व्याख्यानकी धर्मदास उवाच

तुम सद्गुरु हौ समरथ दाता। कैसे मिटै कालकी घाता ॥
तीन भेद गुरु देहु बताई। जेहिते हंस लोकको जाई ॥
शब्द परीक्षा हमको दीजै। सब जीवनकी परचै कीजै ॥
कैसे सीख हम करै संसारा। तीन भेद मोहे कहो विचारा ॥
कैसे तरिहैं जगके हंसा। कैसे निर्भय तुम्हारे वंसा ॥

साखी—वंश अंशकी निर्णय, हमसों कहो समुझाय।
केहि विधि हम जो निस्तरे, कैसे लोकहि जाय ॥

सद्गुरु उवाच

सुनो धर्मदास कहूं मैं तोही। वचन वंश प्रताप है सोही ॥
वंश बयालिस वचन हमारा। जिनको समरथ है रखवारा ॥

ताको खोजि परमपद पावै । भवसागर में बहुरि न आवै ॥
जिनके ब्यालिस वंश तुम्हारा । जिनके वचन अंश है कड़िहारा ॥
वचन वंशको अंश न दावै । तुम्हरो वंश नहिं बोध चलावै ॥
एहि विधि वंश अंश जो होई । दूत भूत यम कंपन सोई ॥
जाति न जै और मोह न आवै । सोई वंश अंश जो कहलावै ॥
कलकी दशा जानिके खावै । निश्चय राज वंश गुरु होवै ॥
जिनके पारस चले संसारा । देखत काल होय जरि छारा ॥

कड़िहारी लेखा

अब सुनो कड़िहारी लेखा । वंश अंशको जानि विवेका ॥
वंश अंशको करै विचारा । सो कहिये बोहित कड़िहारा ॥
वंश अंश नहिं अक्षर पावै । सो कड़िहार बोधक ध्यावै ॥
वंश वचन कड़िहारी करहीं । सो कड़िहार फाँस नहीं परहीं ॥
कड़िहारका किन होय कड़िहारा । लक्ष चौरासी अटकै सो बारा ॥
जाति पाँतिकी दासी न राखै । सद्गुरु परिचय निशिदिन भाखै ॥
वंश अंशको पान चलावै । सो साँचे कड़िहार कहावै ॥

हंसकी चाल

अब सुनियो जग हंस विचारा । प्रथमहि चौका करै हमारा ॥
चौका अंश समर्थके भाई । तिन्ह अपनी युग अदल चलाई ॥
चौका अंश कालकी हानी । तेहिते पुरुषकी सुरति समानी ॥
तिनुका तोए लेहि प्रमाना । यम भाजे छोड़े अभिमाना ॥
चरणामृत हि तत्त्वसों लेही । यमके हाथ चुनौती देही ॥
प्रेम पतीत सो सेवा लावै । नाम पान गुरु अक्षर पावै ॥
हंस वरन हो तहवाँ जाई । जब सतगुरु सतशब्द लखाई ॥
एहि विधि वंस हंसकी करनी । ताते तुमसों कहुं वचन प्रमानी ॥

साखी—एहि वचन सत्य है, तुम वंश अंशको पान ।
कड़िहारी लेखा सार है, हंसहि भाव भक्ति परवान ॥

साखी-वंशअंशकी-धर्मदास उवाच

साँचे सतगुरु हम भल पावा। जमको धोखा सबहि मिटावा॥
गुरुशिष्यको भेद हम पावा। वंश अंश लै सबै परखावा॥
अब वंश अंशका कहो प्रमाना। केते वंश केते अंश ठिकाना॥
वंश अंश केते कडिहारा। तेहिकी परिचै देहो विचारा॥
केतिक वंश कडिहारा समुझाई। केतिक संग हंस लै जाई॥
केतिक प्रमानवंश हंसचलिजाई। सो समर्थ मोहे देहो चिन्हाई॥

साखी-वंश अंशके प्रमान कहो, लेखा देहो बताय।
एती सन्धि मोसों कहो, सब संशय मिटजाय॥

साखी-सब वंश प्रमानकी-सद्गुरु कबीर उवाच

धर्मदास तुम बड़े विवेकी। तुम्हरे घट बुद्धी बढ़ि देखी॥
वचन वंश बयालिस ठीका। तिन्हको समर्थ दीनो टीका॥
वंश अंश वचन एक सोई। दीर्घ वंश अंश लघु होई॥
जेठो अंश वचन मोरो जागे। और वंश जगके पीछे लागे॥
तिन्हकी छाप चले संसारा। और वंश जगके कडिहारा॥
बीस दिन और वर्ष पचीसा। इतना कुलमें चले सँदीसा॥
साठि वरण अंशा प्रमाना। चारवंश तेहि माँहि समाना॥
नामवंशकी पारख देऊ। तिनसे ब्यालिस वंश कढिदेऊ॥
तिनसे ब्यालिस वंश कडिहारा। वचन वंश ब्यालिस पसारा॥
चाल चले और पन्थ दृढावे। भुले जिवन घर घर समुझावे॥
वंश छत्रपतिसिद्ध सुधारी। नाम अंश करे कडिहारी॥
धर्मदास एक वंशकी हानी। पावे वचन वंश सो समानी॥
हमरो वचन चुरामनि सारा। वंशअंश ब्यालिस है अधिकारा॥
सोइ वंश जे वचन विचारे। बिना वचन नहिं वंश हमारे॥

कडिहार ओ हंस

वंश अंश मोहित कडिहारा । सदा हजूरी पलक न न्यारा ॥
वैसी चाल हंसकी होई । सदा हजूरी पलक दूरि न होई ॥

वंश अंश हंस प्रमाना

पीढी १

प्रथम वंश अंशकी बानी । बचन कडिहार एके प्रमानी ॥
दो सित्तर हंस तिन्ह तारें । अपने कर सब जीव उबारें ॥

पीढी २

दुसरे वंश अंश चलि आवे । पांच कडिहार निशानी लावें ॥
दूसरे वंश अंश अधिकारा । सातसौ तेरे जीव उबारा ॥

पीढी ३

तीसर वंश अंश जब होई । नख कडिहार ताकुके होई ॥
हंस सोरासे लोक प्रमाना । १६०० । तिनके हाथ मुचन बन्धाना ॥

पीढी ४

चौथे वंश अंश जग आवें । भवसागरमो पीर कहावें ॥
तेरह सोहंस तीन कडिहारा । १३०३ । तिनके सङ्ग उतरि गयो पारा ॥

पीढी ५

तेहि पीछे काल अचरज होई । अंशहि वंश विरोधे सोइ ॥
पांचवे वंश अंश परवाना । सात कडिहारा तिनके बन्धाना ॥
तीन हजार चारसै सोई । ३४०० । इतना हंस लोकको होई ॥

पीढी ६

छठे वंश अंश अधिकारा । ताते काल आनि पेठारा ॥
पुनि आवे पुरुषहि सहदानी । तरें कडिहार तिन्हके परवानी ॥
छःसै सत्तर सात हजारा ७६७० । वंश अंश सङ्ग उतरे पारा ॥

पीढ़ी ७

सातवें वंश अंश परवानी । द्वादश ताके कडिहार बखानी॥
तीन हजार पांचसै बावन । ३५५२ । इतने हंस पहुँचे मन भावन॥

पीढ़ी ८

अठवें वंश बचन परकासा । सत्रा कडिहार तिनके रहे बासा॥
पांच हजार चारिसै बारह ।५४१२। पहुँचे लोक पुरुष दरबारा॥

पीढ़ी ९

नौमें वंश अंश जब आवै । पचीस कडिहार सङ्ग तब पावै॥
सात हजार आठसै छत्तीसा ।७८३६।प्रगटे बंश अंशजगदीसा॥

पीढ़ी १०

दशे वंश अंश अधिकारी । बत्तिस कडिहार भेद जग भारी॥
तीनसै पांच और आठ हजारा।८३०५।तबही पंथ चढ़े असरारा॥

पीढ़ी ११

ग्यारह वंश तेतीस कडिहारा । नवसै पांच और नव हजारा ॥

पीढ़ी १२

द्वादशवें वंश छतीस कडिहारा । ३६ दोसै सत्तर सात हजारा॥

पीढ़ी १३

तेरहा वंश अंशकी बानी । चालिस कडिहार तिनके परमानी॥
सोरासहस्र चारिसै पन्दरा।१६४१५। पहुँचे लोक मिटै यम निद्रा॥

पीढ़ी १४

चौदह वंश अंश निर्बाना । बावन५२ कडिहार बोहित परवाना॥
तीससहस्र और नवसै तेरा।३०९१३ सब पंथका न होय निबेरा॥

पीढ़ी १५

पन्द्र वंश अंश चलि आवै । पंथ मेटि आप पंथ चलावै ॥
साठिकडिहार मिलि बोध चलावै। साठि हजार हंस मुक्तावै ॥
चालिस मण्डल भयो पसारा । तबहि पंथ चलै असरारा ॥

पीढी १६

सोरह वंश कला अधिकारी।सत्तर ७० कडिहार शब्द उजियारी॥
चौंसठ हजार पांचसै बारा।६४५१२।इतने हंस सब उतरे पारा॥

पीढी १७

सत्रह वंश अंशकी बानी। असी कडिहार तिन्हकी परमानी॥
छिहत्तर सहस्र पांचसै तीसा।७६५३०।धर्मदास कुल आदिसदीसा

पीढी १८

वंश अठरहे नवे कडिहारा। असी हजार हंस लै उतरे पारा॥
८००००तब कलियुगकी दसी मिटाई।वंश अंशप्रगटे अधिकाई॥

पीढी १९

उन्निस वंश अंश अधिकारा। एकसै सात तिन्हके कडिहारा॥
छानबे हजार सातसै दोई। ९६७०२। इतने हंस लोकको होई॥

पीढी २०

बीसो वंश अंशकी बानी। एकसौ तेरह कडिहार बखानी॥
लाख एक औ बीस हजारा। पांचसै हंस ज्योति निर्धारा॥
॥ १२०५०० ॥

पीढी २१

वंश एकसौ जग चलि आई। एकसौ तीस कडिहार अधिकाई॥
१३०लाख दोय और तीस हजारा।छःसे अंश जो पांच अधिकारा॥
॥ २३०६०५ ॥

पीढी २२

वंश बावीसे दोय सौ कडिहारा २००। तीन लाख और चालिस हजारा। सातसौ अंस जो बीस अधिकारा॥ ३४०७२०॥
जाग्रत बंस करे कडिहारा॥

पीढ़ी २३

तेइस वंश अंशका बानी । दोईसे तेरा कडिहारा जो जानी२१३॥
तीन लाख और तीस हजारा । इतने हंस जो पांच अधिकारा
॥ ३३०००५ ॥

पीढ़ी २४

चौवीसे वंश अंश जग आवै । तीनसै कडिहार बीसते पावै ॥

पीढ़ी २५

लाख चारि जो तीस हजारा । चालिस हंस पहुँचे दरबारा ॥
वंश पचीसे तीनसे छप्पन कडिहारा । लाख पांच हंस भयो पारा॥

पीढ़ी २६

छबीसौं वंश चारसौ कडिहारा । लाख पांच और तीन हजारा॥
नवसै सत्तर हंस उबारा ॥ ५०३९७० ॥
इतना मर्म हंसको जानी । सब मंडल अटले रजधानी ॥

पीढ़ी २७

सत्ताविस वंश अंश अधिकारी।छः सो हंस करै कडिहारी॥६००॥
सात लाख छानवें हजारा।सातसै पैसठ हंसनिरधारा॥७९६७६५

पीढ़ी २८

वंश अठाविस जाग्रत होई।पांचसौकडिहारजो पंदरा सोई॥५१५॥
लाख चारि जो बीस करोरी । पैंतिस हजार तीन सौ कोरी ॥
॥ २००४३५३०० ॥

पीढ़ी २९

उनतिस वंश मंडल उनचासा ॥ सातसै तीस कडिहार प्रकाशा ॥
७३०॥ तीस करोर लाख है सोरा । साठ हजार सात सौ तेरा ॥
॥ ३०१६६०७१३ ॥

पीढ़ी ३०

वंश तीस नौसों कडिहारा ९०० बयालीस करोड़ लाख है सत्रा ॥ बारा हजार आठसों सत्रा ॥ ४२१७१२८१७ ॥ इतना हंस कीन्ह पवित्रा ॥

पीढ़ी ३१

एकतिस वंश त्रेपन हजारा । चारिसौ बावन भये कडिहारा ४९२ सत्तर करोड़ और पैंसठ लाखा । सैंतालिस हजार और नौसे बावन हंस उबारा ॥ ७०६९४७९५२ ॥

पीढ़ी ३२

बतीसे वंश सतावन हजारा । नौसौ सैंतालिस तिनके कडिहारा ५७९४७ ॥ एक पदम दोय नील बखानी । छहत्र करोड़ लाख बाविस जानी । नौ हजार सातसे तेरे । इतने हंस पहुँचे निजमेरे १०२००००७६२२०९७१३ ॥

पीढी ३३

तेतिस वंश ओनसठि हजारा । छेत्तीस हंस अधिकारी कडि-हारा । ५९०३६ । चारी शंख पदम दस सोई । तीस खर्व नील ब्यालिस होई ॥ सित्तर लाख और पचीस हजारा । सातसै हंस चार अधिकारा ॥ ४१०४२३००००००७०२५७०४

पीढ़ी ३४

चौतीसौ वंश और बासठि हजारा । सातसों चौपन तिन्हके कडिहारा ॥ ६२७५४ ॥ छतिस शंख खर्व उनइत्तर ॥ चारि पदम अर्व छेहत्तर ॥ बत्तीस करोड़ लाख नव आवे । ब्यालिस हजार तीनसे आवे ३६०४००६९७६३२०९४२३०० ॥

पीढ़ी ३५

वंश पैंतिससत्तर हजारा । पांचसे उनचास तिनके कडिहारा ॥ ७०५४९ ॥ पदम असी सात खर्व अर्व है बारे । छतीस

कोड़ लाख है तेरे । बारे हजार नवसै साता । पहुँचे हंस निज इतने साथा ८०००००७१२३६१३१२९०७ ॥

पीढ़ी ३६

छत्तीस बंस और साठ हजारा । तीनसै चौंसठ तिन्हके कडिहारा ॥ ६०३६४ ॥ पचहत्तर पदम खरब उनचासा । अर्बुद सात करोड़ पचासा ॥ लाख चार तेरा हजारा सातसै बावन । इतने हंस पहुँचे मनभावन ॥ ७५००४९०७५००४१३७५२ ॥

पीढ़ी ३७

सतीससै वंश और चौसठ हजारा । सातसै पैंतालीस हैं कडिहारा ॥ ६४७४५ ॥ सत्तर शंख पदम नव होई । छ्यासी खर्व नील बावन सोई ॥ नव अर्बुद हैं चौदह करोड़ी । ग्यारे लाखा बारें हजारा नौसे तेरें जोड़ी । मंडल अठानवें फिरे दोहाई । सत्य थापि असत्य उठाई ॥ ७००९५२८६०९१४१११२९१३ ॥

पीढ़ी ३८

अडतीसौ वंश बहत्तर हजारा । छहसैं तेरा हंस कडिहारा ॥ ७२६१३ ॥ शंख तीस और खरब है सोरा । नव अर्बुद करोर है तेरा ॥ छप्पन लाख हजार चौबीसा । नवसै बहत्तर पहुँचे हंसा ॥ ३००००००१६०९१३५६२४९७२ ॥

पीढ़ी ३९

उनतालीस वंश और असी हजारा । सातसौ तिहत्तर तिनके कडिहारा ॥ ८०७७३ ॥ पांच अशंख शंख पंचवीसा । चालिस पदम नील एक बीसा । सात खरब अरब है बारे । नव करोड़ लाख है छ्यानु । पंचवीस हजार सातसौ बानी । बानी उत्तम जानि बखानी । इतने हंस लोक भल जानी ।

पीढी ४०

चालिस बंश छचासी हजार। नवसै बहत्तर तिनके कडिहार॥ ४६९७२ ॥ नव शंख नीले हैं। बावन । पचहत्तरि खरब ॥ अर्ब दोय भावन ॥ सात करोड़ और बत्तिस लाखा॥ त्रेसठ हजार पांचसै तेरा साथा। इतने हंस लोक लै राखा ॥ ९००५२७५०२०७३२६३५१३ ॥

पीढी ४१

ग्यालीसवें वंश विस्तारा। लाख एक चौसठ हजार कडिहारा ॥ गणित हंस लहै को पारा। १६४००० ॥ तीस अंश शंख परदा सोई। आठ नील नौ खर्व तहां होई॥ अर्ब बयालिस तेरा करोड़ी। ग्यारा लाख सहस्र दश जोरी॥ इतनो वंश अंश हंसको लेखा। जो पहुँचे सो करै विवेका ॥ ३०१५०००८०९४२१३१११००० ॥

एते बचन वंश परमाना। सो पावै निज बंशको पाना॥ चारि गुरुके बाहर राखो। उन्हके प्रमान उनहीसो भाखो॥

साखी–कहैं कबीर

वंश अंश हंसकी निर्णय, और कडिहारी लेख।
कहै कबीर धर्मदास सों तुम हिरदे करो विवेक ॥
लिखेत कबीर बाकीके कलसा। धर्मदास पूछेव।

चौपाई

धर्मदास विनती अनुसारी। धनि सतगुरु तुम्हरी बलिहारी॥ संशय एक मोरे दिल आई। सो समर्थ मोहे कहा समुझाई ॥ इतना आगम ठानी तुम राखा। सो समर्थ तुम आगम भाखा ॥ वंश संग चलैं कडिहारा। सो तुम खोलि कहो विस्तारा॥ कडिहार संग जो हंस पियाना। ताका तो तुह्म कीन्हा बन्धाना॥

तिनमें फेरफार कछु नाँई । सो समर्थ कहिं दिखलाई ॥
सबही इंसलोकको जाई । तो काहेको पुनि करै कमाई ॥
सब कड़िहार जहँ एक ठिकाना । सब इंसनको एकै स्थाना ॥
सबही इंसा एक सरीखा । अवगुरुमहिमाकोकौनबिशेखा ॥
एक भौम्य एक है स्थाना । सब कड़िहार एक करि जाना ॥
वचन वंश थापे कड़िहारके बोधे । योग युक्ति काहेको सोधे ॥
काहेको एहि तन मन वारे । काहेको धन जोवन गारे ॥
काहेको चरणामृत लेही । सीथ लियेकी महिमा केही ॥
सबही हंस हैं एक समाना । काहेको चौका आरतिठाना ॥

साखी—धर्मदास

भलौ नांव बाही कैलको, जिव सब एक न समान ।
जैसी कमाई जीवकी, ताको देवै सोउ स्थान ॥

चौपाई सद्गुरु कबीर उवाच

सुनो धर्मदास यह भेद नियारा । तुमको खोलिकहों सोनिस्तारा ॥
सब रजधानी पुरुषहि कीन्हा । कैलक सिखावनपुरुषहिदीन्हा ॥
ऐसी शंक जिन पूछो भाई । कच्चा जीव विचलिके जाई ॥
समुझे हंस बहुत सुख पाई । सर्वज्ञान कालमूल बताई ॥
द्वादश पंथ भेद ना पावो । सातों सुरति पुरुष निर्मावो ॥
सर्व सरीखे नहिं होय कड़िहारा । कैसे रहे एक दरबारा ॥
केतिक सातों सुरति घर जैहैं । उन्हके दीपमो बासा लैहैं ॥
सोलहे अंश समर्थ बड़ कीन्हा । उन्हको दीप बड़े बड़े दीन्हा ॥
कितने रहैं उन्हें दीप मँझारा । आपन बोध लिये कड़िहारा ॥
अवरदीप पुरुषके रहई । उन्हीं दीपमें बासा लहई ॥

सहस्र अठासी दीप सुथेरा ८८००० । तहाँ सब हंसा करै बसेरा॥
सब दीपनमाँ शोभा पावैं । वहांके गए बहुरि नहिं आवैं ॥

गुह्यभेद

एक बात है अन्य नियारी । सोइ मैं धर्मनि कहीं पुकारी ॥
सकल दीप थे दीप निन्यारा । तहवाँ अमरथको दरबारा ॥
कितने कडिहार वा घरकूं जाई । गुप्त भेद तुम अछप छिपाई ॥

छन्द–तहाँ समर्थ आपबिराज है ताका महिमा को लहै ।
दीपउजियारी कहा बरनौ बास स्वासा सो रहै ॥
आन दीपके हंस हैं सो वाको जाने नहीं ॥
उहांके वासी हंस सोहेला सो और दीप मानैं नहीं ॥
सदा हजूरी हंस विहँगम जिन देही वन बिसराइया ॥
गुरु शिष्य दोई एक होइकै सो वा दीपसिधाइया ॥

सोरठा–कदली केरे पात, पात पातमें पात है ।
ऐसे बात बातमें बात, जानैगा जन जोहरी ॥

चौपाई–धर्मदास उवाच

धर्मदास फिरि शीस नवावा । दोउ कर जोरिके विनतीलावा ॥
सोइ हंस रहै पुरुष हजूरी । उनकी रहनि कहो गुरु थोरी ॥
कैसे रहैं वे कैसे बोलैं । केसे बैठैं वे कैसे डोलैं ॥
कौन ज्ञान कौन है करनी । सो सद्गुरु कहो मोहि बरनी॥
जगमें रहैं कौन सत्य भाऊ । कैसे काया केर सुभाऊ ॥
आन दीप रहै सत्य सुभाऊ । कहो उन्हकी कायाकेर प्रभाऊ॥
दोउकी परचै मोहि सुनावो । ज्ञान दृष्टि करि मोहि दिखावो॥

साखी–यह कछु अचरज बात है, कहि दिखावो मोहि ।
देखो ज्ञान विचारिके, तबहि हृदय सुख होहि ॥

सद्गुरु कबीर उवाच

सुनो धर्मदास मैं कहूँ समुझाई । गुप्त भेद जिन बाहेर जाई ॥
द्वादश पंथ यह भेद न पावे । वेहे दोजकका पंथ चलावे ॥
बहुत होइहें अपनो कडिहारा । सो नहि जाने भेद हमारा ॥
पूरण दया सद्गुरुकी होई । वंश आपुमें लेहि समोई ॥
जिनकूं देहि निर अक्षर पहिचानी । सो कडिहार लेअगमकीबानी ॥
सो निज पावे भेद टकसारा । सदा हुजूरी पलकनहिं न्यारा ॥
देखा देखी करे कडिहारा । भेद न पूछे मूढ गँवारा ॥
देखा देखी बोध चलावे । फूलि फूलि साखी पद गावे ॥
चौके बैठि ना करे निरुवारा । चौका जुगति ना जाने गँवारा ॥
पूरुष अंश पुरुष सम होई । अपने दीप ले जावे सोई ॥

बिहंगमतिके हंसवर्णन

अब तुम सुनो विहंगम बानी । विहंगमति हंस पहँचानी ॥
निरअक्षर निस्तत्त्व निवासा । निहंतत्त्व अगम्य है वासा ॥
चौका करे जाने वहिवारा । अंश बनीसे सबसो प्यारा ॥
सब अंशनको प्रमाण करिजाने । अपने अपने स्थान वे जाने ॥
सब अंशनकी लाग्य चुकावे । सुरति निरति सद्गुरुसों पावे ॥
नौतम सुरति संग सनेही । एको पलक दूर नहिं होई ॥
ओ कहिये बोहोत कडिहारा । सदा हुजूरी पलक नहिं न्यारा ॥
अस कडिहार ते साररसहोही । एक प्राण दोई है देही ॥

साखी–जैसी मति कडिहारकी, तैसी मति हंस होय ।
सदाहजूरी पुरुषके, छिन छिन दर्शन जोय ॥

चौपाई–धर्मदास उवाच

सुने सद्गुरु कडिहार रहानी । सबहि स्थान परे मोहि जानी ॥
अब कहिये नूर हंसका भाऊ । सो समर्थ मोहि बानी सुनाऊ ॥

आन दीपमों करै रजधानी । प्रथम भाषौ उनकी सहिदानी ॥
सदा रहै वह पुरुष हजूरी । उन हंसनकी कहो मत पूरी ॥
साखी–जेहि तुम बानी कहत हौ, मोहि सुनि होत अनन्द ।
पूरा सद्गुरु पाइया, मिटे कालके फन्द ॥

चौपाई–सद्गुरु कबीर उवाच

आनद्वीपके हंसनके वर्णनकी

अब सुनियो उन हंसनकी बानी । कुल करनीमें रहै लपटानी ॥
सहजभाव वोह भक्ति करैहीं । झूठ संसार सों रहै सनेहीं ॥
चौका आरति ज्ञान समाना । दोइ दिशा वह रहै लपटाना ॥
इतनी वंश छाप अधिकाई । धोखे हंस नष्ट नहिं जाई ॥
जिन्ह जैसी चाल प्रमाना । जो जस पहुंचे जाहि स्थाना ॥
जिन हंसन जैसो सुतन सवारा । जाहि दीपमें बास बसारा ॥
सब दीपनमें करें आनंदा । देहि कांत ऊगे रवि चन्दा ॥

विहंगमस्ती हंसके वर्णन

अब तुम सुनो उन हंसकी बानी । विहंग मताके हंस पहिचानी ॥
जगमें रहै कमल जस भाऊ । तन मन यौवन सब विसराऊ ॥
देहि इर्हा सुरती गुरुरचना । मूंझै नहिं सुखजीव न मरना ॥
जैसे सर्प कांचरी जानै । कायाको ऐसे करि मानै ॥
युक्ती युक्ती देह बनावै । जगका सुखनहिं उनको भावे ॥
गुरु शिष्य एकै मत होही । एकै प्राण दाई है देही ॥
सो कडिहार गुह्य नहिं भाई । सोही जाने ताके ताई ॥
सोई हंस जानौ सब दूरी । जिन्हको कहिये पुरुषहजूरी ॥
नूतन सुरति है उनके पासा । सो कडिहार रहत उरदासा ॥
ज्ञान ध्यान सद्गुरु मन प्यारा । सदा हजूर पलकनहिं न्यारा ॥
युक्ति सांझि चरणामृत लेही । युक्तिहि युक्ति बनावे देही ॥
सदा रहै वह पुरुष हजूरा । छिन छिन दर्शपलक नहिं दूरा ॥

चार लाख छानवै हजारा । नवसे बावन निज कड़िहारा ॥
इतने कड़िहारनिजधरे सिधावे । छिन छिन दर्श पुरुषका पावे ॥
इतनेके शिर छत्र धराई । अर्ध सिंहासन बैठक पाई ॥
हंस सुहल जाइ हजूरी । छ्यानौं लाख औरतेराकरोरी ॥
बावन हजार पांचसे आवे । इतने हंस शिर चँवर करावे ॥
एक देही एकै हैं मूला । पुरुष हंस एकसम तूला ॥
पुरुष हंस एक सम भाई । सबके शीसपर छत्र तनाई ॥
इतना सुख है पुरुष हजूरा । पहुँचे हंस सद्गुर मत पूरा ॥

साखी–निःतत्त्व भेद यह गुप्त हैं, पांच तीनसे न्यार ।
निःतत्त्वी जो हंस हैं, जैहैं पुरुष दरबार ॥

धर्मदास वचन चौपाई

सांचे सतगुरुकी बलिहारी । अपनाकरिजिन लीन्ह उबारी ॥
कठिन काल दारुन बड़ होई । यहि संसार लखै ना कोई ॥
विन सतगुरु कोई भेद ना पावै । सतगुरु मिले तो संधि लखावे ॥

साखी–मनका संसय सब मिटा, हम पाया गुरु पूर ।
विना परिचय जो गुरु करै, सो नर मूरख कूर ॥

चौपाई

सुनौ धर्मदास हम तुम्हें बखानी । आदि अन्तकी सुधि तुम जानी ॥
सम्वत पंद्रसे उनहत्तर आवे । सतगुरु चले उड़ीसा जावे ॥
जबलगि वंश करे गुरु आई । तब लगि धरनी धरौं न पाई ॥
जबलगि वंशब्यालिस संसारा । तबलगि नहिं आऊँ पिछारा ॥
वचनवंश हम ब्यालिस भाखा । जगकी मुक्ति वचनकी शाखा ॥

साखी–तीन लोक के बाहिरे, सात सुरतिके पार ।
तहवाँ हंस पहुँचावहूँ, समरथके दरबार ॥

इति ग्रन्थ कबीरबानी समाप्त

विवेचन

इस ग्रन्थकी एक ही प्रति सम्वत् १८४७ की लिखी हुई है इसकी दूसरी प्रति न होनेसे बहुत स्थानोंमें ज्योंका त्यों छोड़ना पड़ा है और अशुद्धियाँ रह गयी हैं। जब इतने वर्ष पीछेकी लिखी कबीरपंथी ग्रन्थोंकी यह दशा है तब नवीन कबीर पंथियोंकी लिखे ग्रन्थोंकी क्या गति होगी पाठक स्वयम् विचार कर लें ॥

इति

सत्यसुकृत, आदि अदली, अजर, अचिन्त, पुरुष,
मुनीन्द्र, करुणामय, कबीर, सुरति योग, संतायन,
धनी धर्मदास, चूरामणिनाम, सुदर्शन नाम,
कुलपति नाम, प्रबोध गुरुबालापीर, केवलनाम,
अमोल नाम, सुरतिसनेही नाम, हक्कनाम,
पाकनाम, प्रकट नाम, धीरज नाम,
उग्र नाम, दया नामकी वंश-
ब्यालीसकी दया

अथ श्रीबोधसागरे

*

एकोनविंशस्तरंगः

कर्मबोध

*

कर्म कथा अब कहूँ बखानी। जौन फांस अटके नरप्रानी ॥
चारों खानि कर्म अधिकाई। चहूँ खानी मिलि कर्म दृढाई ॥
कर्महि धरती पवन अकाशा। कर्महि चन्द्र शूर प्रकाशा ॥
कर्महि ब्रह्मा विष्णु महेशा। कर्महिते भयो गौरि गणेशा ॥

सात वार पन्द्रह तिथि साजा । नौ ग्रह ऊपर कर्म बिराजा ॥
कर्महि राम कृष्ण अवतारा । कर्महि रावण कंस संहारा ॥
कर्महिते ले वसुदेव घर आवा । कर्म यशोदा गोद खिलावा ॥
कर्महिते वन गऊ चराई । कर्मते गोपी केलि कराई ॥
कौशल्या तप कर्म जो करिया । कारण कर्म राम औतरिया ॥
कर्महि दशरथ कीन्ह उदासा । कर्महि राम दीन्ह बनवासा ॥
कर्म जाय जब धनुष चढ़ावा । कर्महि जनक सुता सिर नावा ॥
कर्म हरयो सीता कहँ आई । दुख सुख कर्मताहि भुगताई ॥
कर्म रेखते कोई न मुक्ता । लछिमन राम करम फल भुगता ॥
कर्मसागर बांधेउ बन्ध कहिया । कर्महि जल जीवन दुख सहिया ॥
रुद्र राम कर्म कीन्ह लड़ाई । भला मिलाप हनू भेंट चढ़ाई ॥
कर्मरेख नहिं मिटे मिटाई । जीव पपील लंका होय आई ॥
कर्मरेख लंकापति गयो । लंकापति बिभीषण भयो ॥
कर्म रेख सबहीं पर छाजा । कहा राम कह रावण राजा ॥
कर्मरेख सबहीं पर होई । देखो शब्द बिलोय बिलोई ॥
कर्मरेख सागर बँध हीना । विरला कोई चीन्हे चीन्हा ॥

साखी—कर्म रेख सागर बँध्यो, सौयोजन मर्याद ।
विन अक्षर कोई ना छुटे, अक्षर अगम अगाध ॥

रमैनी

सागर भव सागर धारा । नहिं कुछ सूझे वार न पारा ॥
तहवाँ बावन अक्षर लेखा । कर्म रेख सबहिन पर देखा ॥
कर्म रेख बंधा सब कोई । खानी बानी देखि त्रिलोई ॥
वेद कितेब कर्महीं गाया । कर्महिको निःकर्म बताया ॥
सद्गुरु मिले तो भेद बतावें । कर्म अकर्म मध्य दिखलावें ॥
कर्म अकर्म मध्य है सोई । सो निःकर्म अकर्म न होई ॥

अक्षर सागर निर्भर बानी । अक्षर कर्म सबन पर जानी ॥
गोरख भरथरि गोपीचन्दा । कर्म फांस सबही पुनि फन्दा ॥
सौ औ सात चौदह इक्कीसा । ब्रह्माके चौरासी भेसा ॥
कर्म फांस तहवाँ लग राखा । जहाँ लगवेद व्यास कछु भाखा ॥
दश औ द्वादश कर्म बखाना । जिन जाना तिनही पहिचाना ॥
कर्म अकर्म भूल जो करई । गहे मूल सो कर्म न परई ॥
अक्षर सागर मूल भँडारा । अक्षर मूल भेद उजियारा ॥
अक्षर मूल भेद जो जाने । कर्मी होय निःकर्म बखाने ॥

साखी—कबीर—कर्म डोर चारों युग, सुनो सन्त सब दास ।
तत्त्वभेद निस्तत्त्व लहि, जगते रहो उदास ॥

रमैनी

सतयुग तप कीन्हे रघुराजा । कारन कर्म नन्द घर गाजा ॥
एक नारि रघुवर दुख पावा । सोलह सहस गोपी निरमावा ॥
कारन कर्म केलि भवकीन्हा । कुञ्ज कुञ्ज गोपिन सुख दीन्हा ॥
जहँ तहँ गोरस जाय चुरावा । जहँ तहँ कर्म तहाँ ले खावा ॥
कर्म कंस ठीका आयो जबहीं । मारन कृष्ण विचार्‌यो तबहीं ॥
कर्म पूतना भेष बनायो । कर्म पयोधर कृष्ण लगायो ॥
कर्म कारण जो तहाँ सिधारा । कारण कर्म पीव विषधारा ॥
मारि तासु कीन्हीं गति चारा । कर्म फाँस बोन्यो संसारा ॥
कर्म इन्द्र बरस्यो दिन साता । कर्म कृष्ण गिरि लीन्यो हाथा ॥
कर्महि मारि विध्वंस जो कीन्हा । कर्म फांस सबही आधीना ॥
कुब्जा कछू कर्म जो कीन्हा । कारन कर्म कृष्णगति दीन्हा ॥
कर्मपताल कालेश्वर नाथा । सांवर अङ्ग भयो तेहि साथा ॥
यज्ञ अश्वमेध करत बलिराजा । कर्मते जाय पताल विराजा ॥
कर्महीं वामन रूप बनाया । बलिराजापै दान दिवाया ॥

कर्म अढूठ नापी पग लीन्हा । तीने पग तीनों पुर कीन्हा ॥
आधा पांव कर्म अधिकारी । बाँ नृपति पातालहिं डारी ॥
जहँ लगि जीव जन्तु उत्पानी । तहँ लगि कर्म राय परवानी ॥
कर्म फाँस ते कोई न छूटे । कर्म फाँस सवहिन घर लूटे ॥

साखी—कर्म फाँस छूटे नहीं, केतो करो उपाय ।
सद्गुरु मिले तो ऊबरे, नहीं तो परलय जाय ॥

रमैनी

जो कुछ कर्म जगतमें करई । करि करि कर्मबहुरि भवपरई ॥
एक न होय यज्ञ व्रत ठाना । एक न पाप पुण्य पहँचाना ॥
एक कर्म कुल लीन्ह उठाई । कर्म अकर्म न जाने भाई ॥
एक छापा और तिलक बनावै । पहिरि मेखला साधु कहावै ॥
वैष्णव होय करै षट कर्मा । वेद विचार सदा शुचि धर्मा ॥
कथा पुराण सुनै चितलाई । कर्महिं सुमिरै बहुविधि भाई ॥
विष्णुसुमरितपबहु विधि कियो । सो निष्कर्मविष्णु नहिं भयो ॥
कर्मकी डोरि बँधा संसारा । क्यों छूटे उतरे भवपारा ॥
एक अभंग एकादशि करई । तन छूटे वैकुण्ठहि तरई ॥
यह वैकुण्ठ न स्थिर होई । अन्त कर्मगति परलय सोई ॥
करै कर्म वैकुण्ठहि जाई । कर्म घटे भवजलफिरि आई ॥
योगी योग कर्मको साधे । किरिया कर्म यवन आराधे ॥
योगी कर्म पवनकी किरिया । भुगतै कर्म्म देहपुनि धरिया ॥
संन्यासी जो वन बन फिरहीं । होय निष्कर्मकर्म फिर परहीं ॥
जीयत दग्ध देहको करई । जटा बढ़ाय व्यसन परिहरई ॥
कोई नग्न कोई वस्त्र कछोटा । भरमत फिरै सहै पग ढोटा ॥
राजद्वार पावै अवतारा । भुगतै कर्म अकर्म व्यवहारा ॥
पण्डित जन सब कर्म बखानी । नख शिखकर्म फाँस अरुज्ञानी ॥

कर्म धर्मकी युक्ति बतावे । दान पुण्य बहुविधि अरथावे ॥
वज्र दान ले जन्म गँवावे । होय ऊँट बहु भार लदावे ॥
एक जो करे बरत अवतारा । होई है सूकर श्वान सियारा ॥
सूकर श्वान होकर्म्मंजो भुगता । विन निष्कर्म न होइहै मुक्ता ॥

साखी

कबीर–बहु बन्धनसे बाँधिया, एक विचारा जीव ।
जीव बेचारा क्या करे, जो न छुड़ावे पीव ॥

रमैनी

शब्द भेद निःशब्द बताओं । करि निःकर्म हंस मुक्ताओं ॥
निरालम्ब अवलम्ब न जानैं । शब्द निरन्तर आप बखानैं ॥
पाप पुण्यकी छोड़े आशा । कर्म धर्मते रहे उदासा ॥
रहे उदास नाम लौ लाई । तत्त्व भेद निस्तत्त्व समाई ॥
तीरथ व्रतके निकट न जाई । भरम भूतको दई बताई ॥
सुखसम्पतिनहिंविपति विसारे । काम क्रोध तृष्णा परचारे ॥
क्रिया कर्म आचार विचारे । होय निःकर्म कर्म निर वारे ॥
सो ग्रहे जो निग्रह काया । अभिअन्तरकी मेटे माया ॥
शील स्वभाव शरीर बसावे । अन्तर स्थिर ध्यान लगावे ॥
ब्रह्म अग्नि मनमें परजाले । ताको विष्णु चरण परछाले ॥
गहे तत्त्व निस्तत्त्व विचारा । काम क्रोधका करे अहारा ॥
सहज योग सो योगी करई । कर्म योग कबहूँ नहिं परई ॥
धन यौवनकी करै न आशा । कामिनि कनकसे रहे उदासा॥
चहुँ दिशि मंसा पवन ककोले । ज्ञान लहर अभ्यन्तर डोले ॥
उनमुनि रहे भेद नहिं कहई । तत्त्व भेद निस्तत्त्वहि लहई ॥
ना कोइ आय अग्नि होय दहई । आप नीर होय नीचा बहई ॥
मन गयन्द गुरुमतसे मारा । गुरु मन लूटे ज्ञान भँडारा ॥

शूरा होय सो सम्मुख जूझै। भोंदू शब्द भेद नहिं बूझै ॥
दुखिया होय रैन दिन रोई। भोगी भोग करै सुख सोई ॥
दुख सुख भोग सोगसम जाने। भली बुरी कछु मन नहिं आने॥
भली बुरीका करे सो त्यागा। निश्चय पावै वह बैरागा ॥
सींगी अछय रैन दिन बाजै। सिद्ध साधु तहँ आसन छाजै॥

साखी–आसन साधे आपमें, आपा डारे खोय।
कहैं कबीर सो योगी, सहजे निर्मल होय ॥

काल पुरुषने जब सृष्टिकी उत्पत्ति की तब कर्मका जाल बनाया। वे कर्म दो प्रकारके हैं। एक शुभ दूसरा अशुभ। ये दोनों कर्म बड़ी बेड़ी हैं। इन दोनों कर्मोंकी बेड़ीने समस्त सृष्टिको बाँध लिया। जो कोई शुभ कर्म करता है सो सांसारिक धन स्वर्ग वैकुण्ठ इत्यादि सब सुखकी सामग्री पाता है और इस पुण्यका अंतिम फल चार प्रकारकी मुक्ति है, इससे अधिक नहीं। सो सब बनावटी हैं ऋषीश्वरोंने कठिन तपस्या की और योग समाधी तथा पूजादिको उच्च श्रेणीपर पहुँचाया। दाससे स्वामी बन गये तो भी उनका बन्धन न छूटा और आवागमनमें फँसे रहे। काल पुरुषने समस्त वेद और किताबवालों को इन्हीं दोनों कर्मोंमें बाँध लिया। इस कर्मके तीन भेद हुए। कर्म-अकर्म विकर्म। कर्म तो मनुष्यको करना उचित है। अकर्मसे दूर भागना और विकर्मसे मनुष्य अपनेको मुक्त और भाग्यवान बनाता है जो शास्त्रानुसार कर्म ईश्वर निमित्त किया जाता है वह विधि है। दूसरा अकर्म जिससे लोक परलोकमें कहीं सुखकी प्राप्ति नहीं होती है, उसे शास्त्रसे निषेध कहते हैं, यह अकर्म ईश्वरके विरुद्ध है विकर्म उसको कहते हैं जिसके करनेसे कर्मसे छूटे और बन्धनकी पाश टूटे और ज्ञान लाभ हो। पहिले स्वर्ग आदिककी लालच

दिखाकर कर्म करवाते हैं इसके उपरान्त स्वर्ग इत्यादि सुख सबका त्याग है। जिस प्रकार पिता रोगी लड़केको लड्डू दिखाकर औषध देता है, उसी प्रकार स्वर्ग तथा वैकुण्ठादिकी लालच मनुष्योंको दिखाई गई है। फिर भी एक कर्म तीन नामोंसे प्रख्यात हुआ संचित-प्रारब्ध-क्रियमाण। सञ्चित उस कर्मको कहते हैं जो रक्षापूर्वक रखा हुआ हो-अर्थात् सहस्रों जन्मसे बराबर उसके साथ लगा चला आता है। ऋण अदा करनेका समय नहीं मिला और वह ऋण माथे चढ़ा रहा। दूसरा प्रारब्ध कर्म वह है जिसे भाग्य कहते हैं। इसी प्रारब्ध कर्म अनुसार मानुषिक शरीर प्रस्तुत हुआ है। अर्थात् अपने पूर्वकर्मानुसार शरीर बना है। जब यह जीव अपने पूर्व शरीरको छोड़ता है तब अहम् बोलता है। अहम् का अर्थ मैं हूँ। अहं बोलकर दूसरे शरीरमें प्रवेश करता है। चारों खानिके जीवोंकी यही रीति है। जैसे एक प्रकारका कीड़ा होता है। जो वृक्षोंके पत्तोंपर रहता है जब वह एक पत्तेको छोड़कर दूसरेपर जाया चाहता है तब पहले वह अपने अगले पैरोंको पत्तेपर जमा लेता है। जब उसके अगले पैर दूसरे पत्तेपर भली प्रकार जम जाते हैं। तब वह अपने पिछले पैरोंको भी खींचकर दूसरे पत्तेपर जमा लेता है और अगले पत्तेपर भली प्रकार जम कर बैठ जाता है। और पिछले पत्तेसे संबन्ध छोड़ देता है इसी प्रकार सदैव ही इस (जीव) का आवागमन हुआ करता है। ब्रह्मासे लेकर सर्वजीवोंमें अहङ्कार भरा हुआ है जिसमें अहङ्कार नहीं उसका आवागमन नहीं अहम् बोलनेसे उसके आवागमन सम्बन्ध बराबर जारी रहता है। वह ब्रह्मा जो पहले अहम् बोला वही ब्रह्मा अनन्त स्वरूप और स्वभावोंमें चारों खानमें समा रहा है। अहम् कर्मोंका आकर्षण है।

जो एक योनिसे खींचकर दूसरीमें डाल देता है। जैसे चुम्बक लोहेको खींच लेता है।

तीसरा क्रियमाण कर्म वह है जो अब कर रहे हैं। यदि यह क्रियमाण कर्म बलवान् होकर शुभ वा अशुभकी ओर झुका तो वह अपना रङ्ग ढङ्ग दिखला देता है। यदि वह सुकर्मकी ओर झुक जावे और सुकर्मकी पूर्णता करले तो वह अपने स्वरूपको प्राप्त करा देता है। यदि अशुभकी ओर झुका तो जड़ योनिमें जा समाता है और नरकके समस्त दुःखों तथा अत्यन्त कष्टोंमें अपनेको डालकर कंकड़ पत्थरकी तरह बेकाम कर देता है, फिर उसको सुपथ नहीं मिलता।

महाकर्ता–महाभोगी–महात्यागी। महाकर्ता उसको कहते हैं कि, जो कर्म करता है और अपनेको कर्ता नहीं मानता।

महाभोगी उसको कहते हैं कि, जो सर्व भोग भोगता है और अपनेको भोगता नहीं मानता।

महात्यागी उसको कहते हैं जो अहंकारको त्याग दे। इस त्यागका गुण तब जाना जाता है जब उसको अन्तर–दृष्टि होती है जबलों इन तीनों बातोंका गुण भलीप्रकार जाना न जावे तबलों वेद और पुस्तक पाठसे कोई लाभ नहीं होगा। अन्तरदृष्टिसे जाना जाता है कि, यह तीनों क्या बात है।

महाकर्ता तो यह तब होता है कि जब यह अन्तरदृष्टिसे भली भांति देखता है, कि मैं कुछ करही नहीं सकता और मैं किसी कार्यका कर्ता नहीं हूँ केवल मैं अपनी मूर्खतावश आपको अपने कार्यका कर्ता समझ रहा हूँ। मैं और यह समस्त संसार कलके सदृश चल रहा है। मेरा और किसीका कोई वश ही नहीं कि कोई काम करे। न मालूम वह कौन है जो मुझको तथा समस्तसंसारको

चला रहा है। जब मैं कुछ करता ही नहीं और न मेरा किया कुछ हो सकता है, ऐसी अवस्थामें यह अपनेको कर्मोंका कर्ता नहीं मानता। जब यह अपनी अन्तरदृष्टिसे भली प्रकार देख लेता है तब फिर यह अन्यान्य ओर ध्यान नहीं देता और जानता है कि जब मैं किसी कार्यका कर्ता ही नहीं तो मैं व्यर्थही अपनेको कर्ता क्यों ठहराऊँ ? तब वह अज्ञानतासे पृथक् होता है। संसारी इसी अज्ञानतामें फँसा रहता है और आपको अपने कर्मका कर्ता समझकर दुःख सुखमें धक्के खाता है। मैं क्यों अहम् बोलता हूँ नहीं जाने मुझे कौन अहम् बोलता है और कौन बोलता है। अतः इससे जाना गया और प्रमाणित हुआ कि मुझको मेरे कार्योंके बन्धन अहम् बोलाते हैं और दूसरा कोई नहीं। जब मैं अपने कर्मोंके बन्धनसे छूट जाऊँगा तब मेरा अहम् बोलना भी छूट जावेगा। जबलों यह आपको करनेवाला मानता है तब-तक यह क्रियामें आपको स्वतन्त्र समझता है। तब यह अन्तर दृष्टिसे भली भांति निगाह कर लेता है कि, मैं अपने कर्मोंका कर्ता नहीं, तब अपने शुभ अशुभ कर्मोंको परमेश्वरको सौंपके और उसके शरणमें होकर उससे सहायता मांगता है और जान लेता है कि, मेरे कार्य मुझको बचाने योग्य नहीं। मैं सत्यगुरुकी शरण हूँ, इसके अतिरिक्त और छुटकारेका कोई उपाय नहीं है। अपनी अज्ञानताके कारण मैं अपने कार्योंका कर्ता आपको जानता था; परंतु आगे अब ऐसा कदापि न करूँगा।

यदि यह स्वतन्त्र होता तो सब कुछ करलेता। फिर अपनेको दीनता तथा दुर्दशामें कदापि नहीं फँसाता।

एक दिनका वृत्तांत है कि, एक पादरी साहब आकर मेरे पास बैठे और वाद विवाद पर प्रस्तुत हुए। उसने कहा कि

मनुष्य अपने कार्योंमें स्वतंत्र हैं इसपर मैंने उत्तर दिया कि यह बात कदापि नहीं, कर्म स्वतंत्रता किसीको प्राप्त नहीं । सब फलके समान गतिमान् हैं । सुतरां तौरीतमें उत्पत्तिकी पुस्तक देखो जब आदम उत्पन्न हुआ । खुदाने उसको मना किया कि तू यह कार्य कदापि न करना और इस वृक्षके फलको न खाना । आदमने न माना और खाया जिससे वह दुर्दशाग्रस्त हुआ । यदि आदम कर्म करनेमें स्वतंत्र होता तो ऐसा कदापि न होता। फिर आदमके पुत्र काबील और हाबील हुए वे भी ऐसे ही थे। कारण यह है कि, दोनोंने एक दिवस परमेश्वरके समक्ष भेंट चढ़ाई छोटे भाईकी भेंट तो स्वीकृत हुई और काबीलकी अस्वीकृत हुई, इस कारण काबील अत्यन्त क्रुद्ध हुआ, तब परमेश्वरने कहा कि ऐ काबील ! तू काहेको क्रोध करता है यदि तू अच्छे मनसे देता तो क्या तेरी भेंट स्वीकार न की जाती ? परंतु तू अपने भाईपर जय पावेगा। काबीलने अपने भाईपर जय पाई और उसको मार डाला । जब परमेश्वरने उसको पूछा कि तेरा भाई हाबील कहां है । तब उसने उत्तर दिया कि मै नहीं जानता क्या मैं अपने भाईका रखवाला हूं। इस पर खुदाने उत्तर दिया कि तेरे भाईका खून मुझे पुकारता है । अब तू हत्यारा तथा दोषी हुआ यह कहकर खुदाने उसको शाप दिया । भलाजी ! यह न्यायकी बात थी कि खुदाने तो स्वयम् कहा कि तू अपने भाई पर जय पावेगा उससे जय पाई और उसको मार डाला । फिर वह दोषी कैसे ठहरा ? यदि अपने भाईको न मारता तो खुदा झूठा होता और मारा तो दोषी हुआ और वह हजूरसे दूर किया गया तथा उसकी सन्तान पापिष्ठी ठहरी ।

ऐसा ही नूहके विषयमें जानना चाहिये कि नूह सिखाते-सिखाते विवश हो गया, किसीने उसका कहना न माना अन्तको बाढ़ आई और समस्त मनुष्य डूब मरे। कोई जीव सिवा उनके कि जो नूहकी नावपर था नहीं बचा। फिर नूहकी शिक्षा तथा खुदा की चौकसी किसी कामकी आयी। वह भी कर्ममें स्वतंत्र ठहरा जब बाढ़से सबको सत्यानाश कर चुका और नूहकी ओर खुदाने ध्यान दिया तब खेद करने और पछताने लगा कि मैंने सबको बाढ़से क्यों नष्ट किया। कारण यह कि मनुष्यों के ध्यान तो बचपनसेही बुरे हैं अब भविष्यमें मैं बाढ़से लोगोंको न मिटाऊँगा। इससे प्रमाणित हुआ कि इस खुदाको भी स्वतंत्रकार्याधिकार प्राप्त नहीं यदि ऐसा होता तो जब वह आदमका पुतला बनाने लगा फिरिश्तोंने मना किया कि आदमका पुतला न बनाओ वे पाप करेंगे फिर पृथ्वी रोई और कहा कि मुझसे मिट्टी मत लो और मनुष्यका पुतला न बनाओ, मनुष्य बड़ा पाप करेंगे पर खुदा साहबने किसीका कहना न माना। अपनी इच्छासे मनुष्यका पुतला बनाया। आगे मनुष्योंके पापोंसे रुष्ट होकर बाढ़ लाकर पछताया आगे फिर मैं कैसे कहूँ कि खुदा साहबको कार्यस्वतंत्रता प्राप्त थी।

हजरत नूहकी उपरांत हजरत इबराहीम अच्छे और पवित्र-खुदा के पैगम्बर हुए। वे भी स्वतंत्र नहीं थे कारण यह कि उनकी शिक्षासे नमरूद बादशाह इत्यादि सभी विरुद्ध होगये।

इबराहीमकेउपरांत इसहाकको पैगम्बरी मिली और इसहाककी स्त्री रबका जब गर्भवती हुई उसके पेटमें दो बालक थे और वे दोनों पेटके भीतर परस्पर लड़ते थे-तब रबकाने खुदाके निकट जाकर निवेदन किया कि मेरे पेटके दोनों लड़के आपसमें क्यों

फिसाद करते हैं तब खुदाने कहा कि, बड़ा छोटेकी सेवा करके बड़ाई पावेगा। फिर इसहाकने ज्येष्ठपुत्र ईसूको बरकत देनी चाही पर उस बरकतको छोटा पुत्र याकूब ले गया। इसहाक-कीयुक्तिने काम नहीं दिया।

देखो मूसाकी पहली पुस्तक २५ बाबका २१-२२-२३ आयत।

इनके उपरान्त हजरत मूसा थे वह भी अपने कार्य्यमें स्वतंत्र नहीं थे। कारण यह कि परमेश्वरने मूसाको मिस्रमें फिरूनके सिखलानेके लिये भेजा और यह भी कह दिया था कि फिरूनके मनको मैं कड़ा करूंगा। वह तेरा कहना न मानेगा। मूसाकी शिक्षा किसी काम न आई।

मूसाके उपरान्त हजरत ईसाने खुदासे बहुत प्रार्थनाकी कि सलीबसे बच जाऊं पर नहीं बचे।

इसके उपरान्त मुहम्मद मुस्तफाने बहुत कुछ बललगाया और रक्तपात किया तो भी सबको मुसलमान कर नहीं सके यह बात सब कहकर और नहीं दिखाकर फिर मैंने पादरी साहबसे कहा कि इन महाशयोंमें तो कोई स्वतन्त्र नहीं ठहरा। कदाचित् आपके नाम अब खुदाई परमाना कार्य स्वतन्त्रताका उतर पड़ा हो तो क्या आश्चर्य है? मेरी बातें सुनकर पादरी महाशय चुप हो रहे और फेर मुखतारीका दावा छोड़ दिया।

केवल कबीर साहबको ही स्वतन्त्रता है दूसरेको नहीं। कारण यह है कि, जब वे मनसे छुटकारा दिलाया चाहते हैं उसको अवश्य छुटाही लेते हैं और जो कुछ करना चाहते हैं करही लेते हैं उनका रोकनेवाला दूसरा नहीं।

जैसा कुल कार्य यह मनुष्य जाग्रत अवस्थामें करता है वैसाही कार्य स्वप्नावस्थामें किया करता है। परन्तु स्वप्नावस्थाके कर्मोंको कोई नहीं कहता कि मैंने किया। यद्यपि जाग्रत अवस्थाके कर्मोंका कर्ता यह स्वयम् बनता है कि यह कर्म मेरे हैं, यद्यपि जाग्रत तथा स्वप्नावस्था दोनों समान हैं। केवल इतनी ही विभिन्नता है कि, जाग्रत देरलों उसके साथ रहती है और स्वप्न थोड़ी देरमें बीत जाता है। यदि स्वप्नके कर्म उसके नहीं तो जाग्रतके कर्म भी उसके नहीं, इस कारण आपको स्वकर्ममें स्वतन्त्र समझना अज्ञानता है। यह स्वतन्त्र कदापि नहीं। ज्ञान की दृष्टिसे यह अहंकार जाता रहता है। इस जीवकी चारों दशा स्वप्नके समान हैं।

दूसरे महाभोगी वह है कि जो समस्त भोगोंको भोगता है और आपको भोगनेवाला नहीं मानता। यह भी विना अन्तरप्रकाशके जाना नहीं जा सकता कि, भोगनेवाला कौन है और मैं कौन हूँ। यदि मैं भोगनेवाला होता तो मैं जो चाहता सो भोग भोग लेते और भोगोंसे कभी न भागता। कोई भोग ऐसा नहीं है कि जो भोगोंसे अलग जानता है उसके सामने अच्छा और बुरासमस्त भोग समान हैं कारण यह है कि, जब रानी द्रौपदीने श्वपच सुदर्शनके सामने भांति भांतिके स्वादिष्ठ भोजनोंके थाल धरे तब उन्होंने सब खट्टा मीठा और नमकीन एकमें मिलाकर खाना आरम्भ किया। कारण यह कि उनको स्वादोंकी कामना नहीं थी एक साधुको एक मनुष्यने कडुई तुम्बेकी तरकारी बनाकर खिला दिया। वह साधू कडुई तरकारी बिना कुछ कहे सुने खा गया जब पीछे गृहस्वामी खाने लगा तब उसको वह तरकारी विषसम मालूम हुई। वह अपनी स्त्रीको डाटने लगा कि तूने यह विषसमान तरकारी साधूको खिला दी साधूको कितना दुःख हुआ होगा।

उनके मनमें बड़ा भय समाया और वह साधुके पास जाकर उससे क्षमा प्रार्थना करने लगा।

एक साधुको एक गृहस्थ ने खीर खिलाई और चीनीके बदले भूलसे नमक डाल दिया। कारण यह कि, वह नमक चीनीके सदृश था। वह साधु बिना कुछ कहे खा गया उसके भीतर जब नमककी आग लगी तब उस गृहस्थके घरमें आगलगी जब घरमें देखने लगे तब जान पड़ा कि साधुको चीनीके भ्रमसे नमक दे दिया गया। लोगोंने कहा कि,उस साधुके हृदयमेंठण्ढक आवे तबघर की आग भी बुझे। थलीमें कोई सरदार था उसके पास एक वैष्णवसाधु आया और उसने नहा धोकर ठाकुरजी की पूजा की। उस समय उस सरदारने दूध और चीनी साधुके निमित्त मँगवा दी,उस वैष्णवने ठाकुरजीको भोग लगाया। इसके उपरांत जब आप वह दूधपीने लगा तब उस सरदारको याद आया कि, जहां चीनी थी वहां घोड़ेकी दवाईके लिये संखिया भी पीसा था ऐसा न हो कि साधुको संखिया दिया गया हो दौड़के देखा तो संखिया दिया गया था। उस सरदारने पुकारके कहा महाराज! यह दूध मत पीओ इसमें संखिया पड़ गया। तब उस वैष्णवने कहा कि अब तो यह संखिया ठाकुरके भोग लगाया जाचुका है मेरे ठाकुर संखिया पीवें और मैं चीनी पीऊँ? वह वैष्णव दूध तथा संखिया सब कुछ पीगया और चंगा रहा संखियाने उसको किसी प्रकारकी क्षति नहीं पहुँचाई। उसके भीतर भोगता विष्णु था विष्णु उसको देखता था और वह विष्णुको देखता था। आप उस भोगसे अलग रहा।

तिसरे महात्यागी-तब होता है जब देहके अभिमानको छोड़े जबलों देहका अभिमान न छूटे तबलों त्यागी नही। अभिमानही करके यह देह मिलती है और इसीसे स्थित हो रही है। सहस्त्रों त्यागी हो गये परन्तु देहका अभिमान न छोड़ने से

बन्धनमें रहे बाहरसे तो उन्होंने सब छोड़ दिया, पर भीतरसे छोड़ नहीं सके और न देह अभिमान छूटा। देहका अभिमान छूटा तब जाने कि जब किसी प्रकारकी आपत्ति तथा साहसकी घटनासंघटित हो तब स्थिरता न छूटे और न किसी प्रकारकी घबड़ाहट हो। सुतरां ऋषिमुनिगण उजाड़ तथा बनमें बसते हैं। उनको वहां प्रत्येक प्रकारकी आपत्तियां आ घेरती हैं। शेर, सांप, भेड़िया, रीछ और कानखजूरे इत्यादि नाना-प्रकारकी आपत्तियां दिखाई देती हैं। इस स्थानपर साधु अपने मन को बहुतही दृढ़ रखते हैं। कोई हिंसकजीव फाड़कर खाजावे तो तनिक भी न समझते कि यह मेरी देहहै। सब तपस्वियोंकी ऐसीही अवस्था होती है। जब भीतरी अथवा बाहरी उनको अपनी शरीरकी ओर ध्यान हुआ तब उनका त्याग कुछ नहीं सुतरां सर्व त्यागियोंमें बड़े त्यागी शुकदेवजी थे कि मायाके भय से बारह वर्ष पर्य्यन्त माताके गर्भमें थे। जब बाहर निकले तब उनको त्याग और वैराग्य रहा। उनका हाल बहुतप्रसिद्ध है जब राजा जनकके समीप गये तब उन्होंने एककौतुक दिखाया कि उनके समस्त नगरमें आग लगी और सब कुछ जलने लगा। राजा जनक निर्भय बैठे रहे और शुकदेवजी अपनी तुंबी लँगोटी लेने को दौड़े। तब राजाने कहा कि बैठ, किधर जाता है? तूतो आपको बड़ा त्यागी समझता है अब लँगोटी और तूंबी लेने दौड़ा। मेरे राज्यका समस्त सामान जल रहा है और मैं तनिक भी अधीर नहीं हुआ। तू कैसा त्यागी है। तुझे तो लँगोटी और तूंबीकी चिन्ता लगी है जिसको तूंबी लँगोटीकी चिन्ता नहीं छूटी उसको देहका अभिमान कैसा छूट जावे? अतः जबलों देहका अभिमान न छूटे तबलों महात्यागी कैसे हुआ, यह सब

प्रशंसा तथा गुण कबीर साहबके हैं और दूसरेके नहीं बनारसमें कैसे २ कष्ट मिले परंतु उनका तनिक भी ध्यान नहीं किया औरन मनमें कुछ कष्टमाना महात्याग इसीका नाम है। सहस्त्रों साधुसन्तोंने अपनेको ईश्वरमें लीन कर दिया तो भी देहका अभिमान और वासना उनके मनमें रही,इस कारण उनका भगवतमें लीन होनाभी काम न आया। जो लोग सत्यगुरुको पहँचानकर भगवतमें लीन होते हैं वे धन्य हैं। उन्हींका भगवतमें लीन होना सफल है।

वेद तीन भागोंमें विभक्त हुआ—कर्म-उपासना-ज्ञान। कर्मोंमें दो भाग हुए एक तो यज्ञ इत्यादि जो सांसारिक अर्थोंके निमित्त करते हैं। दूसरा योग जो अपनी मुक्तिके निमित्त करते हैं। इन कर्मों द्वारा सांसारिक तथा पारलौकिक अभिप्राय सिद्ध होते हैं जिनके जैसे पाप पुण्य होते हैं वैसी ही अवस्थामें वे जाते हैं और वैसा ही उनको भोग मिलता है।

दूसरी उपासना है—सांसारिक लोग उपासना करते हैं और उपासनाके निमित्त विष्णु, राम, कृष्ण, शिव, चण्डी, सूर्य और गणेश आदि देवता ठहराये हैं।

तीसरा ज्ञान-इसकी सात भूमिका हैं और यह सब स्वप्नवत् हैं। इनमें समस्त युक्तियों द्वारा किसीका छुटकारा नहीं हो सकता। इनमें पारखपदकी कुछ सुध नहीं। अतः ये समस्त कर्मकाण्डी और ज्ञानी अपनी अपनी सीमाको पहुँच जाते हैं। तो भी उनको छुटकारेकी राह नहीं मिलती। बिना पारख गुरुके अन्धोंकी तरह टटोलते फिरते हैं। परंतु वे राह नहीं पाते। क्या युक्ति करें कोई तदबीर नहीं सूझती, तब विवश होकर बैठे रहते हैं। जो जो तदबीरें वेदने बताई उनसे तो कुछ काम न

हुआ और अब दूसरा उपाय कहां पावें, क्या करें। जो कुछ ज्ञान मिला उसीपर सन्तोष कर बैठे आगे कोई पथ वेदों तथा पुस्तकों द्वारा नहीं मिला, किसे पूछे और किसके घर जावें।

मीमांसक और जैन कर्महीको मुक्तिमार्ग समझते हैं। परन्तु यह नहीं जानते कि, यह कर्म कहाँसे उत्पन्न हुआ है और कहाँ तक पहुँचा सकता है। यह विधि निषेध दोनों शाखा निरञ्जन निर्मित हैं। वहां ही तक पहुँचानेका सामर्थ्य रखते हैं। इन कर्मों द्वारा स्वर्ग तथा नरक सब कुछ प्राप्त होता है। जहाँलों कर्मोंकी पहुँच है वहींलों कालपुरुष हस्तक्षेप करता है। कर्मोंका सुविशाल वन है उसमें यह जीव भूलकर अपने घरसे बाहर हो गया है वनहिंसक जन्तुओंसे भरा हुआ है और सूर्य चन्द्र सितारे इत्यादि तनिक भी दिखाई नहीं देते। न कोई सड़क और न पगडण्डी है जो पगडण्डी कहीं है, सो पशुओंकी है मनुष्यकी नहीं। इस कारण इन कर्मोंके वनसे कोई बाहर हो नहीं सकता। कर्म करता है और फिर फिर कर्म करनेके लिये बारम्बार देह धारण करता है। इसको कुछ पता नहीं लगता कि वह कौन कर्म है जिससे मेरे कर्मका बन्धन कटे। वह कर्म जिससे इसका बन्धन कटे केवल स्वसंवेदकी शिक्षा है, उससे तो यह जीव अज्ञान है। इन्हीं कर्मोंकरके समस्त योनि ठहराई हैं जैनी जिनका समस्त ध्यान कर्मोंपर है वे आठ प्रकारके कर्म कहते हैं, वे ये हैं:-

१-ज्ञानवर्णी कर्म। २-दर्शनावर्णी कर्म। ३-वेदनी कर्म। ४-मोहिनी कर्म। ५-नाम कर्म। ६-आयु कर्म। ७-गोता कर्म। ८-अन्तराय कर्म।

अब इन आठों कर्मोंका सुविस्तृत विवरण सुनो। आवरण नाम ढकनका है। १ ज्ञानवर्णी कर्म अर्थात् ज्ञानका ढांकनेवाला कर्म इसके कारण ज्ञान नहीं होने पाता, यह ज्ञानके ऊपर परदा डाल देता है। इसके कारण ज्ञान जो उत्पन्न होने नहीं पाता सो ज्ञान पांच प्रकारका है।

१-मतिज्ञान। २-श्रुतिज्ञान। ३-अवधिज्ञान। ४-मनप्रजय-ज्ञान। ५-केवल ज्ञान।

मति ज्ञान-मति नाम बुद्धिका है अर्थात् वह ज्ञान जो बुद्धि तथा सोचसे सम्बन्ध रखता है। इस मति ज्ञानमें समस्त संसार की हुनर तथा कारीगरियां संयुक्त हैं। जिसको मतिज्ञान होता है वह कारीगरी और शिल्पकारीमें बड़ा चैतन्य रहता है। जिस किसीको मतिज्ञान आवर्णी कर्म उगता है-उसको गुणोंका पांडित्य प्राप्त नहीं होता।

दूसरा श्रुतिज्ञान है-श्रुतिज्ञान समस्त शास्त्रोंके कण्ठस्थ करनेको कहते हैं कुछ कागज तथा ग्रन्थ इत्यादि देखनेकी आवश्यता न हो सब बातें हृदयमें रहें। शास्त्रद्वारा तीनों कालोंकी बातोंको जानता हो उसको श्रुति केवली अथवा श्रुतिज्ञानी कहते हैं। इस श्रुतिज्ञान को जो कर्म रोकले और न होने दे उसका श्रुतिज्ञान आवर्णी कर्म नाम है।

तीसरा अवधिज्ञान है-अवधिज्ञान उसको कहते हैं जिसके द्वारा लोग मनुष्योंके मनकी बातको जान लेते हैं। समस्त गुप्त बातोंको बतलाते हैं और अन्तर्यामी कहलाते हैं, जो कर्म इस अवधि ज्ञानपर परदा डाले और होने न दे उसको अवधिज्ञानवर्णी कहते हैं।

चौथा मन प्रजय ज्ञान है-मनप्रजय ज्ञान उसको कहते हैं कि जो हृदयकी गतिको जाने। अर्थात् जहां हृदय दौड़े वह सब कुछ

मालूम करले हृदयकी समस्त चाल तथा स्थिरताको बूझ ले जो कोई इस प्रकारकी विद्या रखता हो उसको मन प्रजयज्ञानी जानते हैं। मन प्रजय ज्ञानमें यह गुण है कि, जब जिसको यह ज्ञान उत्पन्न हो जाता है फिर कभी नहीं जाता। मन प्रजयज्ञानी अवश्य-ही केवल ज्ञानका अधिकारी हो जाता है, पूर्वके तीन ज्ञानोंमें तो संदेह रहता है क्योंकि वे होते हैं और जाते भी रहते हैं परंतु मन प्रजयको स्थिरता तथा स्थिति है, मनप्रजय ज्ञान अवधिज्ञानसे बहुत बढ़के है। जो कर्म इस मनप्रजय ज्ञानको छिपा लेता है और नहीं होने देता उसको मनप्रजय आवर्णी कर्म कहते हैं।

पांचवां केवलज्ञान है—यह सबसे बढ़कर है। यह समस्त-ज्ञानोंका राजा है। जैनी ऐसा मानते हैं कि इस केवल ज्ञानसे कोई बात छिपी नहीं रहती। सबसे उच्च श्रेणी ज्ञानकी यही है। जैनके चौबीस तीरथंकर सब केवल ज्ञानी होते हैं उनके अतिरिक्त और कितने दूसरे साधू भी केवल ज्ञान रखते हैं। इस केवल ज्ञानको जो छिपाये रखे और न प्रकाशित होने दे उसका नाम केवल ज्ञानवर्णी कर्म है। दूसरा दर्शनावर्णी कर्म है—जिसके कारण प्रत्यक्षमें दर्शन नहीं होता और उसके परदेमें अलख करतार रहता है। उसकी चार शाखायें हैं।

तीसरा वेदनी कर्म है—जिसके कारण जीवको दुःख सुख होता है। उसकी दो शाखायें हैं।

चौथा मोहिनी कर्म है—उसकी दो शाखायें हैं।

पांचवां आयु कर्म है—इससे आपदाका अन्दाजा होता है और इसकी चार शाखायें हैं।

छठवें नाम कर्म्म है—इसकी तिरानवे शाखायें हैं। यह नाम कर्म जीव धारियोंकी मूर्ति और स्वरूप बनाता है।

सातवां गोतकर्म है-इस गोत कर्मकी शाखायें हैं। एकसे नीची जगह और दूसरी ऊँची जगह जीव देह धरकर उत्पन्न होता है

आठवां अन्तराय कर्म है-उसकी दो शाखायें हैं। इस अन्तराय कर्म का यह काम है कि जो ज्ञान होनेवाला हो उसको होने दे उसमें विभिन्नता डाल दे आठों कामोंका विवरण मैं ग्रन्थ कबीर भानुप्रकाशमें लिख आया हूँ जो चाहे सो देखले। इन्हीं आठकर्मों से समस्त जीव चार खानि चौरासी लाख योनिमें आवागमन किया करते हैं। कर्मोपासना और ज्ञान भी सविस्तर रूपसे वहीं लिखा है जिससे स्पष्ट प्रगट होता है कि इस जीवका आवागमन कैसे सुकर्म तथा कुकर्मोसे हुआ करता है। यह समस्तकर्म तो भ्रमरूप हैं। इनसे कदापि छुटकारा नहीं होता। जिसको वेद धर्मके लोक और जैनी केवल ज्ञान कहते हैं सो केवल ज्ञान शुद्ध नहीं है इसमें अन्धकार है इस कारण इन केवल ज्ञानियोंको स्वच्छ प्रकाश नहीं है, जिससे वे लोग मुक्तिकी सुधि नहीं रखते हैं, जीवके कर्म ही उसका स्वरूप बनाते हैं। कर्मोंसे ही इस जीवका आवागमन चारों खानिमें बरावर बना रहता है। सत्यगुरु भेद बतलावें तो आवागमन सम्बन्ध टूटे।

मुसद्दस

तू है करतार किब्रिया बारी। तेरा है हुक्म सब जगह जारी
तेरी तसबीर सुबुक और भारी। नकशहा सब शिगरफोजंगारी

आलमोंका है सारे काम तुम्हें।
ऐ अमल हाय सद सलाम तुम्हें॥

तूही इनसान हुआ तूही हैवान। तूही रहबर हुआ तूही शैतान॥
जिस्म सदहाव एकही हैं जान। होवे क्योंकरबयां तुह्मारी शान॥

लोक तीनों दिया इनाम तुम्हें ।
ऐ अमलहाय सद सलाम तुम्हें ॥

मालिक व आदमवजिन्नो परी । हवशी हिन्दीवखवर औरतरी ॥
रंगबिरंग ढंग चार खान करे । अदलो इनसाफ साफसाफ करे ॥

दिया आलमका इन्तजाम तुम्हें ।
ऐ अमलहाय सद सलाम तुम्हें ॥

बन्द: साहब कहीं किया है जुदा । कहीं बन बैठे आप आद खुदा ॥
सारे आलममें तेरी सूतोसदा । तुझसे सारे शरी शाहो गदा ॥

सिजदा करते हैं खासो आम तुम्हें ।
ऐ अमलहाय सद सलाम तुम्हें ॥

तूही वाचून और तुही बचून । सूरत मूत्र तुझीने गूनागून ॥
तूही मकबूल औ तूही मलऊन । तूही खुद रमरहा है सारंजून

दे जमीनों जमा तआम तुम्हें ।
ऐ अमलहाय सद सलाम तुम्हें ॥

तूही जेरीन दरमयां बाला । मनका मनका हुआ तुही माला ॥
तूही पैदा किया तूही पाला । तूही सबजा हुआ तुही जाला ॥

कौन पहचान अक्ल खाम तुम्हें ।
ऐ अमलहाय सद सलाम तुम्हें ॥

इन्द्र ब्रह्म व विष्णु भी भूले । अपने अमलोंके झोकमें झूले ॥
कहीं पजमुरदा और कहीं फूले । हिर्स हर्त्तां घर बघर डोले ॥

दे रहीमो करीम नाम तुम्हें ।
ऐ अमलहाय सद सलाम तुम्हें ॥

आशकोंको दिखाया राहे सवाब । फासिकोंके लिये सहीद अजाब

साराअलम बना खयालोख्वाब। कोई न देरी ना सारने कशबरआब

सारे जान्दार दे गुलाम तुम्हें।
ऐ अमल हाय सद सलाम तुम्हें॥

सारे जान्दारको फँसा मारा। नहीं इस जीवका रहा चारा॥
करके तदबीर तुमसे सब हारा। जिन्दा करकरके फिर फिर मारा॥

दे मुकद्दर बदस्त दाम तुम्हें।
ऐ अमलहाय सद सलाम तुम्हें॥

तूही बख्सिन्दा है अपनो अमाँ। मातहत तेरे सब हैं जिसमो जाँ॥
तुझसे पैदा हैं वाणीवदो कुराँ। अविदानो जादिदाने जमाँ॥

याद करते हैं सुबहों शाम तुम्हें।

ऐ अमल हाय सद सलाम तुम्हें॥

सारे मजहब जहाँमें जारी है। पीर मुरशिदकी राहदारी है॥
अर्शफर्शोंकी सब तयारी है। आजिज इसरारसे सब आरी है॥
पेशवा भी किये इनाम तुम्हें। ऐ अमलहाय सदसलाम तुम्हें॥

कर्मोंके चिह्नके विषयमें

कर्मोंके चिह्न जीवधारियोंके शरीरमें कालपुरुषने बनाया है इस जीवने जैसे कर्म पूर्वजन्ममें किये हैं वैसेही चिह्न उसकी देहमें बने हैं। सब जीवोंके शरीर पर चिन्ह होते हैं परन्तु मनुष्योंके शरीर पर भली भांति स्पष्ट प्रगट होते हैं इसी कारण मनुष्यकी देहहीसे इसके कर्मोंका भली प्रकार हिसाब किताब होता है। मनुष्यके शरीरके चिह्न देखनेसे भलाई बुराई जानी जाती है। जिस समय वीर्य स्त्रीके गर्भमें स्थिर होता है, उसी वीर्यके भीतर जीव होता है और उस जीवके साथ उसके पहलेके किये हुये कर्म

हैं। उसके भाग्यके अनुसार उसका शरीर प्रस्तुत होता है तथा समस्त रंग डीलडौल पूर्वकर्मानुसार ही होता है। जब वह माताके गर्भसे निकलता है तब उसके पूर्व जन्मके कर्मोंके चिन्ह उसके शरीरके ऊपर होते हैं। पांच वरषके भीतर चिन्ह स्पष्ट प्रकट नहीं होते जैसे जैसे यह बड़ा होता जाता है वैसेही वैसे इसके पूर्व कर्मके चिन्ह दिखाई देते जाते हैं। तिल और मस्सा-इत्यादिभी पूर्वकर्मानुसारही प्रगट होते हैं और बहुतेरे चिन्ह छिपे रहते हैं। शिरसे लेकर पैरतक सुकर्म तथा दुष्कर्मके चिन्ह भरे हुये हैं। कहीं दुर्भाग्यके तो कहीं सौभाग्यके चिन्ह होते हैं। यदि एक स्थानपर दुर्भाग्य और दूसरे स्थानपर सौभाग्य एक ही बात पर चिन्ह होवे तब उसका मध्यम फल होता है। जो लोग सामुद्रिक जानते हैं उनको यह बात मालूम होती है। सामुद्रिक विद्या अत्यन्त कठिन है। जो सामुद्रिकमें प्रवीण हो वह मनुष्यका आकार देखकर सब कुछ कह सकता है।

कबीर साहबने इस सामुद्रिक विषयमें बहुत कुछ कहा है कर्मोंके चिन्ह देखकर सामुद्रिकका ज्ञाता सब कुछ कह सकता है उदाहरण युनान देशका महातत्त्वज्ञानी सुकरात (Socraties) एक पाठशालामें अपने शिष्यको पढ़ा रहा था उस पाठशाला-में एक सामुद्रिक जाननेवाला आगया। जब सुकरातके शिष्योंने जान लिया कि यह पुरुष इस प्रकारकी विद्या रखता है, तब उनको वे अपने उस्तादके निकट ले गये और कहा कि, इस पुरुषके दोष और अवगुण कहो। वह सामुद्रिक जाननेवाला इस बातको नहीं जानता था कि वह हकीम सुकरात है। उस

१ देखो पुस्तक रवास गुंजार।

समय उस सामुद्रिकीने सुकरातकी देहके समस्त चिह्न देखे और पहचानकर बोला कि यह मनुष्य बड़ा पाजी, दुष्ट व्यभिचारी, झूठा ठग, दगाबाज और दुष्कर्मी है, यह बातें सुनकर सुकरात के शिष्यों ने उसके ठट्ठे उड़ाये और हँसते हँसते बोले कि यह मनुष्य झूठा है तब सुकरात जो स्वयं सामुद्रिक विद्या जानता था कहने लगा कि तुम लोग इसको झूठा मत समझो। यह मनुष्य जो कहता है वह सत्य कहता है। उसमें कोई सन्देह नहीं कारण कि, उसने जो कुछ कहा उन सब बुराइयोंके चिह्न मेरे शरीरमें परिलक्षित हैं मेरे शरीरमें वे सब चिह्न ज्योंके त्यों बने हुए हैं। मेरा स्वभाव वैसाही था परंतु मैंने अपनी विद्या और योग्यतासे अपनी वासना-ओंको भलीप्रकार दमन किया है, अपने हृदयको दुष्कर्मोंकी ओर हिलने नहीं दिया और भलीप्रकार दृढ कर लिया जिससे तनिकभी हलचल न हो ऐसी वासना दमन किया है कि वे मुरदेकी तरह होगई हैं। परंतु ये चिह्न जली हुई रस्सीकी ऐंठनके समान हैं तब सुकरातके शिष्योंको निश्चय हुआ कि, हमारा उस्ताद सत्य कहता है इस प्रकार पुरुषार्थ प्रारब्ध पर जय पाता है। मनुष्यके अति-रिक्त कितनेही पशुओंमें भी यह चिह्न देखे जाते हैं जैसे कि हाथी, घोड़ा, बैल इत्यादिमें जो लोग उनको मोल लेते हैं। उनके भले बुरे चिन्होंको पहचान कर दुर्भाग्य तथा सौभाग्य जान लेते हैं। उनके कर्मोंके चिन्ह साधारणतः जड़ स्थावर पदार्थ पर प्रगट नहीं होते गुप्त रहते हैं, परंतु कभी कभी किसी चिह्नसे उनके पूर्वजन्मोंका चिह्न प्रगट होता है और सर्व साधारण देखकर जान लेते हैं। सुतरां लगभग पैंतालीस वर्ष होते हैं जब मैं एक बस्ती चुनारगढ़में जो काशीके समीप है गया। वहां पर्वतपर जाके मैंने एक प्रकारका वृक्ष देखा। उस वृक्षके जड़से लेकर डालियों पर्यन्त नागरी अक्षरोंमें राम राम लिखा था। वहां इस प्रकारके

अनेक वृक्ष थे। समस्त वृक्षोंकी यही दशा थी कि सबमें राम राम लिखा हुआ था। जब सर्व वृक्षोंकी यही दशा देखी तब भली भांति दृष्टि दौड़ाई जड़से ऊपर पर्यंत समानही देख पड़ा। तब अनुमान किया कि इन वृक्षों पर कोई आकर लिख गया होगा और इन वृक्षोंमेंसे एक वृक्षकी छाल हटाकर देखा तो छालके भीतर भी वही राम राम सुन्दरताके साथ लिखा हुआ था। तब निश्चय होगया कि यह किसी मनुष्यके हाथों का लिखा हुआ नहीं बरन् प्राकृतिक लिखावट है और उसकी उत्पत्तिकालसेही वह गुण उसमें आगया है उन वृक्षोंकी यह दशा देखकर मै गाँवमें गया लोगोंसे पूछा कि इस वृक्षका क्या नाम है तब लोगोंने कहा कि इसे रामनामी वृक्ष बोलेते हैं। उस वृक्षकी जड़में जो अक्षर थे उनकी स्याही बहुत काली थी और जैसे जैसे वे ऊपर जाते थे वैसेही वैसे स्याही फीकी पड़ती जाती थी। पतली डालोंकी स्याही बड़ी फीकी थी। परंतु पत्तोंके नामतो अत्यन्त फीकी स्याही में होंगे कि वे दिखाई भी न देते थे। उस वृक्षका वह रंग ढंग देखकर मैंने जाना कि, पूर्वकालका यह कोई भक्त है और किसी दोषवश वृक्ष होगया है।

उस समय यमलार्जुन कुबेरके पुत्र याद आये जो नारद मुनिके शापसे दोनों वृक्ष हो गये थे कृष्णजीने उनका उद्धार किया उस वृक्षकी अवस्थासे उन्हें छुड़ाकर उनको यथार्थ स्वरूप प्रदान किया। इसी प्रकार गौतम ऋषिकी स्त्री (अहल्या) गौतमके शापसे पत्थर होगयी थी। श्रीरामचन्द्रजीकी कृपासे अपनी पूर्वावस्थामें प्राप्त हुई इसी प्रकार सर्व जीव कर्मके बन्धनसे पड़े हैं जड़ और चैतन्यमें सर्व फँसे हुए हैं और किसी योग्ययत्नसे कदापि नहीं छूटते उलटा दिन प्रतिदिन अधिक फँसते जाते हैं।

इस प्रकार सर्व जीव बन्धनमें पड़े और कर्मकी फाँसी सब जीवोंको लगी। इससे छूटना असम्भव हुआ। सहस्रों युक्तियां करता है परंतु प्रतिदिन बँधा जाता है। यह तीन लोक भवसागर (उत्पत्तिसागर) कर्मने बनाया है, कर्म-मन ब्रह्म-काल पुरुष इत्यादि यह सब नाम इसीके हैं। इसी कर्मने यह भवसागर बनाया है और यही कर्म इस पर अधिकार कर रहा है, ब्रह्मांड और पिण्ड दोनोंकी स्थिति कर्मसे है। अनगिनती ब्रह्माण्ड हैं जिनकी सीमा नहीं। यह ब्रह्माण्ड तथा पिण्ड दोनों अनगिनती नाना प्रकारके जीवोंसे परिपूर्ण है। जीवोंका अनगिनती स्वरूप तथा स्वभाव है कि जिनका कुछ विवरण हो नहीं सकता। किसीका वय लाखों वर्षका है और कोई ऐसे हैं कि एक बार स्वांसके आने जानेमें बहुत बार उत्पन्न होते और मर जाते हैं। कोई गरम हैं कोई अत्यन्त ठण्ढे हैं ये सर्व जीव वासनासे भरे हुये हैं इस भवसागरमें पड़े गोता खाया करते हैं। कभी स्वर्ग/ कभी नरक और कभी मृत्युलोकमें रहते हैं। इस चौरासी लाख योनिके जीवोंको सुख नहीं मिलता सदैव दुःखी सुखी हुआ करते हैं। चारों खानिके जीवोंमें कोई न सुखी और न सन्तुष्ट है कर्मोंके बन्धनसे सदैव इनका आवागमन हुआ करता है। यह भवसागर पशुओंसे बसा हुआ है इसमें मनुष्य कोई नहीं और जो मनुष्य हैं उनके काम क्रोध लोभ आदि वासना नहीं जबलों अपनेको वासनाओंसे पृथक् न करे तबलों मनुष्यताके योग्य न होगा। जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति तुरिया यह चारों अवस्था मनमें स्थिर किया है। जबलों कलुषित कार्योंसे पृथक् न हो तबलों प्रकाशका मार्ग न

देखेगा। इस कारण वासनाओंके आनन्दसे दूर भागना चाहिये। हंस वही है कि, जो भवसागरके दूसरे जीवोंको कालके जालमें फँसा देखकर बुद्धिमानीसे दूर भाग जावे। जबलों मनुष्य अपने को जाग्रत अवस्थामें न अधिकृत करे तबलों मनुष्यता प्राप्त न करेगा। इस जीवको वासनासे नष्ट करके भवसागरमें बाँध रखा है। समस्त बुराई तथा बन्धनकी जड़ यही वासना है। इस मनके पांच अहंकार हैं इन्हीं पांचोंमें स्वामी तथा सेवक सभी फँसे हुये हैं।

इति कर्मबोधे एकोनविंशस्तरंगः

श्रीः

अथ श्रीअमरमूल प्रारंभः

भारतपथिक कबीरपंथी

स्वामी श्रीयुगलानन्द द्वारा संशोधित

*

मुद्रक व प्रकाशक-

गंगाविष्णु श्रीकृष्णदास,

अध्यक्ष-"लक्ष्मीवेङ्कटेश्वर" स्टीम्-प्रेस,

कल्याण-बम्बई.

पुनर्मुद्रणादि सर्वाधिकार "लक्ष्मीवेंकटेश्वर" मुद्रणयन्त्रालयाध्यक्षके अधीन है।

सत्यसुकृत, आदि अदली, अजर, अचिन्त, पुरुष,
मुनीन्द्र, करुणामय, कबीर, सुरति योग, संतायन,
धनी धर्मदास, चूरामणिनाम, सुदर्शन नाम,
कुलपति नाम, प्रबोध गुरुबालापीर, केवलनाम,
अमोल नाम, सुरतिसनेही नाम, हक्कनाम,
पाकनाम, प्रकट नाम, धीरज नाम,
उग्र नाम, दया नामकी वंश-
व्यालीसकी दया

अथ श्रीबोधसागरे

*

विंशस्तरंगः

अथ श्रीअमरमूल प्रारम्भः

*

धर्मदास वचन साखी

धर्मदास बिन्ती करें, सुन गुरु कृपानिधान ।
जरा मरन दुख मेटके, दीजे पद निर्वान ॥
मरन काल त्रयलोकमें, अमर न दीखा कोय ।
यह संशय निश दिन लगो, जीते ताहि विगोय ॥

सोरठा—हे प्रभु दीनदयाल, जक्त जीव अति दुखित है।
हरहु वेग उर साल, करहु कृपा निज दास कहँ ॥

सद्गुरु वचन—चौपाई

धर्मदास तुम मुक्ति अधीना। सो तव कथा सुनहु परवीना ॥
जरा मरन जिवको मिटजाई। पुरुष नाम गहे चितलाई ॥
अम्मर काया तबहीं पावे। अमर शब्द घट मांहि समावे॥
ताकी महिमा और न जानी। अमर मूलमें कही बखानी ॥
अमर मूल है सबते सारा। अमर मूलका कहौं विचारा ॥

साखी—अमर मूल निज ग्रंथ है, कहैं कबीर विचार।
अमर मूल जाने बिना, बूड़ा सब संसार ॥

चौपाई

अमर मूल जानो धर्मदासू। ताकर भेद कहौं परकासू ॥
अमर नाम कब्बीर कहाई। अक्षर बिन बूड़ी दुनियांई ॥

धर्मदास वचन—चौपाई

धर्मदास विन्ती अनुसारी। सुनहु गुरू अपराध विसारी ॥
अमर भेद साहिब कह दीजे। तृषा बुझाय अमीरस पीजे ॥
बन्दी छोड़ मुक्तिके दाता। अमर मूल कहिये विख्याता ॥
संधि भेद कहिये निर्वारी। यहै ग्रंथ है बहुत अपारी ॥
भिन्न भिन्न सब मोहि बताई। जिहिते मनकी संशय जाई ॥
प्रेम प्रीती तुमही सो लागी। वचन सुधा सुन हो अनुरागी॥
अमृत नाम कबीर है सारा। पाऊँ ताहि होय निस्तारा ॥

सद्गुरु वचन—चौपाई

तब सतगुरु अस कहै बिचारी। तुमसों ज्ञान कहों अति भारी॥
प्रथमहि सुनो पाकर लेखा। तिहि पीछे नरिअरका लेखा ॥
तव प्रसाद मैं कहों विचारी। इतनी बातमें जीव उबारी ॥

शब्द विदेह भयो उच्चारा । तिहि पीछे त्रैलोक पसारा ॥
शब्दहि नाम लोक है भाई । निःअक्षर में रहै समाई ॥
निःअक्षर की परिचय होई । तब सतलोक पहुँचे है सोई ॥
जीवत लोक बैठ पुन जाई । सार शब्द महँ रहै समाई ॥
अमर शब्दकी होय चिन्हारी । अम्बू द्वीप ताही बैठारी ॥
अम्बू द्वीप लोक कर नामा । शोभा कहा कहौं निजधामा ॥
अवर्ण रूप वर्णो नहि जाई । धर्मदास सुनियो चितलाई ॥
षोडश भान हंस को रूपा । पुरुषहि महिमा अमृत अनूपा ॥
अमर शब्द सों प्राणी भयऊ । वही शब्द सों लोकहि गयऊ ॥
पान परवाना शब्द है सारा । एही मूल सों हंस उबारा ॥
अकह नाम अक्षर है भाई । तुम निःअक्षर रहो समाई ॥
निःअक्षर को करै निबेरा । कहैं कबीर सोई जन मेरा ॥

धर्मदास वचन–चौपाई

निःअक्षर गुरु मोहि बताई । जाते हंसलोकमें जाई ॥
लोक प्रतीति करौं मैं कैसे । कहो विचार चित आवै तैसे ॥
तुम प्रभु निर्गुण भाख सुनावा । अब कहिये सर्गुण परभावा ॥

सद्गुरु वचन–चौपाई

धर्मदास तुम मतिके आगर । सार शब्द कहियो सुखसागर ॥
हंसा सज्जन परम सनेही । कहियो ताहि परम पद तेही ॥
धर्मदास सो शिष्य तुम्हारा । सार शब्दको कहो सम्हारा ॥
तुम्हरे वंश कहिये उपदेशा । ज्ञानी होय तेहि कहो संदेशा ॥

साखी–मूरख सों जिन खोलिहो, कहै कबीर विचार ।
ज्ञानी सों न दुराइ हौ, सुनो सत्त मत सार ॥

चौपाई

ज्ञानी होय जे मतिके धीरा । तहीं समाय वस्तु गम्भीरा ॥
धर्मदास सुनियो चितलाई । लोक प्रचय अब देउँ बताई ॥
निर्णय नाम निःअक्षर सारा । सर्गुण सकल कीन्ह विस्तारा ॥
निर्गुण सर्गुण बुझै कोई । सार शब्दमें रहे समोई ॥
अमर मूलका करे विचारा । धर्मदास सो शिष्य हमारा ॥
और ग्रन्थ बहुत मैं भाखा । अमर मूलकी है सब शाखा ॥
शाखा पत्र सबै लपटाना । अमर मूल काहु नहिं जाना ॥
अमर मूल धर्मनि सुन लेहू । यही सँदेश हंसन कहि देहू ॥
यह संतन को मत है भाई । जातें आवागवन नशाई ॥
सोई जीव उतर है पारा । नातर बूड़ मुआ संसारा ॥

साखी—ज्ञानी होय सों मानहीं, बुझे शब्द हमार ।
कहे कबीर सो बाचि है, और सकल यमधार ॥

धर्मदास वचन—चौपाई

पावन भेद अब कहो बुझाई । तामहिं जक्त रह्यो अरुझाई ॥
नीर भेद मोहिं कहो विचारी । बन्दी छोड़ जाउं बलिहारी ॥

सद्गुरु वचन—चौपाई

नीर पवन का भाखों लेखा । सुकृत घटमें करो विवेका ॥
हम टकसार ग्रन्थ यक भाखा । नीर पवन ताही महँ राखा ॥
एही माहिं रहे लिपटाई । नीर पवन महँ रहे भुलाई ॥

साखी—नीर पवन की उत्पति, कहें कबीर विचार ।
जो निज शब्द समावही, सोई हंस हमार ॥

चौपाई

सार शब्द मैं कीन्ह नवेरा । नहिं माने सो जमको चेरा ॥
गर्भ वास जन्म सो धरई । जो यह लेखा बाहर परई ॥

छत्तिस नीर पचासी पवना। तासों रची सकल ही भवना॥
यह हो भेद कालको दीन्हा। नाम जो एक गुप्त हम कीन्हा॥
नाम भेद जो पावे सांचा। सोई जीव काल सों बांचा॥
साखी-सार शब्द जो जानही, सो जैहै भव जीत।
नातो जमपुर जायँगे, कठिन काल विपरीत॥

चौपाई

गोरख पवन साध मर गयऊ। नाम प्रचय अजहूँ नहिं भयऊ॥
व्यास देव ज्योतिषहि विचारा। लगन सोधकर घरी सम्हारा॥
नामहि सार चित्त नहिं दीन्हा। लग्न मुहूरत सब गहि लीन्हा॥
साखी-लग्न मुहूरत साधिया, कर्म का भीत बनाय।
भर्म टरे सद्गुरु मिलें, तबहीं लोकहि जाय॥

चौपाई

यहै भर्म तब छूटै भाई। सतगुरु शब्द गहे चित लाई॥
नाम पान मैं कहौं बिचारी। जातें छूटै भर्म किवारी॥
मोह नसे सत चौकी होई। तबहि नाम कहँ पावै सोई॥
ताते पान प्रवाना भाखा। भक्ति ज्ञान ताकर है साखा॥
बिना नाम नहिं उतरे पारा। कैसे साध कहावे सारा॥
पढ़ पढ़ विद्या वेद पुराना। नाम बिना नहिं होय प्रमाना॥
चारहि गुरु जक्तमहँ कीन्हा। तिनके हाथ मुक्ति हमदीन्हा॥
वे हंसन कहे लोक पठावें। भवसागर महँ बहुरि न आवें॥
साखी-चार गुरु संसारमें, धर्मदास बड़ अंश।
मुक्ति राज मैं दीन्हऊँ, अटल ब्यालिसहि वंश॥

चौपाई

धर्मदास तुम मतके धीरा। तातें दीन्ह मुक्ति कों बीरा॥
तुमतें जीव उतर है पारा। दीन्हां सौंप जक्त को भारा॥
राय बकेजी चतुर्भुज राजा। सहतेजी गुरु तहां बिराजा॥

साखी–राय बंकेजी चतुर्भुज, सहते जी हैरान।
येहि छुड़ाय हरेक हीं, शब्द देहिं पहिचान ॥

चौपाई

यही छुड़ाय काल सों हंसा। शब्दहि दे कर हैं निःशंसा ॥
तुम धर्मदास ब्यालिसहि बंशा। ये निज आहि पुरुषके अंशा॥
इन कहिये सौंप दीन्ह जिवभारा। सब जीवनको करें उबारा ॥
इनही छोड़ अन्त चित लावे। जन्म जन्म सो भटका खावे॥
बंश ब्यालिस तुम्हरे सारा। और सकल सब झूठ पसारा ॥

साखी–नाम भेद जो जानही, सोई बंश हमार।
नातर दुनियाँ बहुत ही, बूड़ मुआ संसार ॥

चौपाई

धर्मदास मैं कहों बिचारी। यह विधि निबहे यह संसारी॥
काल कठिन है बहुत अपारा। जिन यह सृष्टि कीन्ह संहारा॥
ता कहँ कोइ न जाने भाई। कालहि सुमरण करहिं बनाई ॥
काल दुःख दे सबहि रुवावे। शब्द होय तहँ माथ नवावे ॥
नाम एक गुप्त है अमोला। सो धर्मनि मैं तुमसे खोला ॥
जो यह नाम को करे सम्हारा। सो भवसागर उतरे पारा ॥
तुम कहँ दीन्ह शब्द उपदेशा। सो हंसन कहँ कहो सँदेशा ॥
ज्ञान प्रकाश जाहि घट होई। जीवन मुक्ति पावे जन सोई ॥

धर्मदास वचन–चौपाई

धर्मदास कहें सुनिय गुसांई। जीवन मुक्ति कहो समुझाई ॥
जीवन मुक्ति कहो किमि जाना। लोक बेद कैसे पहिचाना ॥
सो मोसों यह कहिये भेदा। जिहितें मनकी संशय छेदा ॥

सद्गुरु वचन–चौपाई

कहैं कबीर सुनो धर्मदासू। वह निज भेद कहौं तुम पासू ॥
उग्र ज्ञान जाके घट होई। मुक्ति भेद कहँ पावे सोई ॥

अब मैं कहौं ज्ञान उपदेशा । तुम अपने घट करो प्रवेशा ॥
मुक्ति नाम निःसंशय होई । अमर नाम जब सुर्त समोई ॥
जहँलग कहि जिभ्या कर गाया । तहँ लग जानौ सो सब माया ॥
अकह नाम कहा नहिं जाई । घट २ व्याप्त निरंतर आई ॥
नाद शब्द जबहीं उच्चारा । तासौं अक्षर भयो विस्तारा ॥
अक्षर हीते उपजी माया । संशय भई सबनकी काया ॥
तब ही शब्द सुर्त मन लाया । मन थिर भए नहीं है माया ॥
स्थिर घट मन लहर समानी । मुक्तिरूप तबही पहिचानी ॥
सो निःकर्मी जीव हमारा । कर्म काट भव उतरै पारा ॥
जो यह गहै शब्द मन लाई । ताकर आवागमन नसाई ॥
सीखे पढ़े काम नहिं आवै । कर्मी जीव मुक्ति नहिं पावै ॥
ज्ञान प्रकाश जाहि घट होई । ताके हृदय मोह नहिं कोई ॥
जैसे सूरज बादल रूँधा । ऐसे मोह ज्ञान कहँ मूँदा ॥
जब लग मोह न छूटे भाई । तबलग नाम न हृदय समाई ॥
जबलग मोह रहै तन बासा । तबलग नहीं ज्ञान प्रकाशा ॥
जन्म जन्म कर भक्त जो होई । तबहि नाम कहँ पावै सोई ॥
कोटिन जन्म भक्ति जिन कीन्हा । अमर मूल तबही पर चीन्हा ॥
अमर मूल कर पावै भेदा । कहैं कबीर सो हंस अछेदा ॥

धर्मदास वचन–चौपाई

धर्मदास विनती अनुसारी । सद्गुरु वचन जाऊँ बलिहारी ॥
जिहि विधिममन होय अछेदा । सो समरथ कहि दीजे भेदा ॥
जो मोहे कहो पान परवाना । नरियर भेद कहो सहिदाना ॥
कहाँ ते भयो पान परवाना । कहवाँ ते नरियर उतपाना ॥

सतगुरु वचन

अमर मूल सों पान बनावा । बेली बीज नहीं निर्मावा ॥
हतो न बेल बीज तिहि ठाईं । शब्द माहि बेली निर्माई ॥

उपजो तबै पान परवाना । जाते हंस होय निर्वाना ॥
नरियर आहि धर्मको माथा । सो मैं दीन्ह तुम्हारे हाथा ॥
जीवके बदले नरियर दीन्हा । हंस छुड़ाय धर्म सो लीन्हा ॥
नारियर पान प्रसादकी जोरी । सार शब्द सो नरियर मोरी ॥
जिन नरियरको पाय प्रसादा । जन्म मरणका पाप नसादा ॥
जे जीव पायो पान प्रवाना । देह छोड़ सतलोक पयाना ॥
काल दगा तबही मिटजाई । सत्यलोक महँ जाय समाई ॥
ऐसी भक्ति जीव जो करई । भक्ति बिना सो नहिं निस्तरई ॥

धर्मदास वचन

धर्मदास बिन्ती अनुसारी । हे सतगुरु तुम्हरी बलिहारी ॥
नरियर पान प्रसाद बतावा । ताकर भेद नाहिं हम पावा ॥
सोई भेद मोहे देहु बताई । जिहिते मन संशय मिटजाई ॥

सतगुरु वचन

धर्मदास तुम सुनो सुजाना । नरियर भेद पान परवाना ॥
धर्मदास जब सेवा लाई । तबकी कथा कहौं समुझाई ॥
जब तुम सुनो धर्मकी आदी । तब मिटि है जिवकी बकवादी ॥
सेवा बसहि पुरुष तब भयऊ । तीन लोग भवसागर दयऊ ॥
मानसरोवर बैठक दीन्हा । कामिनि देख बहुत सुख कीन्हा ॥
धर्मराज कामिन कहँ ग्रासा । तबही पुरुष श्राप परकाशा ॥
तीनलोक जिव करौ अहारा । तबही भरि है उद्र तुम्हारा ॥
तीनलोक महँ जीव जो होई । धर्मराय कहँ आवैं सोई ॥
ताते नरियर बदला दीन्हा । जीव छुड़ाय कालसो लीन्हा ॥
भक्ति प्रवान कहेउ समुझाई । बिना भक्ति नहिं काल पराई ॥
नरियर पान शब्द है नौका । भक्ति प्रवान कहेउ तहँ चौका ॥

भक्ति प्रवान कहो समुझाई । कवन भक्ति सों जीव मुक्ताई ॥
तुम प्रभु हो हंसनके नायक । पुरुष पुरातन जीवहित लायक॥
भक्ति अँग मोहे देव बताई । तिहि गहि हंसा लोक सिधाई ॥

सद्गुरु वचन

धर्मदास सुन भक्ति विचारा । जासों उतर जाय भव पारा ॥
प्रथमहि पान प्रवाना पावै । साधनकी सेवा मन लावै ॥
सार शब्द घट रहे समोई । अक्षर भेद पावै जन कोई ॥
अमर वस्तु गुप्त हम राखा । ज्ञानी होय तेहि सों भाखा ॥
शब्द रूप निःअक्षर जानो । सो हंसा सत लोक पयानो ॥
इतना ज्ञान जाहि घट होई । अमर मूलको जानै सोई ॥

छन्द–ज्ञान पूरन होय जा घट पान नरिअर भक्ति हो ।
बिन ज्ञान नहिं भेद पावैं केते पढ़ गुण शक्ति हो ॥
अमरमूल यह ग्रन्थ धर्मनि सुनियो चित्त लगायकै ।
जन्म २ को पाप नासै अमरलोक सिधायकै ॥

सोरठा–सुन धर्मदास सुजान, किहि विधि साधु कहावई ।
कहैं कबीर बखान, अमरमूल जाने बिना ॥

इति श्रीअमरमूल ग्रन्थ प्रथम विश्राम

ज्ञान भक्ति वर्णन

धर्मदास वचन चौपाई

धर्मदास कहैं सुनो गुसांई । जीवन मुक्ति सो मोहे बताई ॥
नाम अमोल तत्त्व अति भारी । दुविधा माहिं जीव संचारी ॥
यह संशय मोहे निसदिन व्यापे । हरहु बेग गुरु यह संतापे ॥

तुम सतगुरु घर बैठे तारा । आवागमन मोरे निबांरा ॥
मन अरु जीव भेद बतलाओ । अबजिनमोसन अन्तर लाओ ॥
समझो तबै जीव मुक्ताऊँ । वही डोर गहलोक पठाऊँ ॥

सद्गुरु वचन

पावन पचासी सकल पसारा । जीव पवनसों आहि निसारा ॥
ब्रह्म रूप सब मांहि समाई । सुक्ष्म रूप जीव दरसाई ॥
दसवां भाग राई कर जाना । आतम रूपी देह समाना ॥
अरू योगिनमें बरते भाऊ । मानस देहमें मुक्ति प्रभाऊ ॥
पांच तत्त्व दस इन्द्री संगा । प्रकृति पचीस कहेउ प्रसंगा ॥
यह प्रमान मन करे बखाना । जीव ब्रह्मसों भये उतपाना ॥,
मन करता यह देह समाना । सूक्ष्म रूप नाहि पहिचाना ॥
अंक चीन्ह स्थिर होये सोई । ताकी आवागमन न होई ॥
ताकौ बरन भेद जब पावे । मुक्ति होय जग बहुरि न आवे॥
चौरासी कब बन्धन छूटे । काल जंजाल ताहि नहिं लूटे ॥
मुक्ति भेद कोइ बिरले जाना । काल फांस जग सब लपटाना॥
अमर मूल है मुक्ति पसारा । ताकौ संतो करो विचारा ॥
आतम ब्रह्म एक है भाई । परमातम मिल ब्रह्म कहाई ॥
ज्यों जलमधि सों लहरि उगाई । तिमि परमातम आतम आई॥
जिमि किसान चिनगी संचारा । इमि जिव भयउ ब्रह्म विस्तारा॥
जिमि कंचन आभूषण कीन्हा । ऐसे जीव ब्रह्म कहँ चीन्हा ॥
उभै अंश दीपक इक फूटैं । जीव ब्रह्म संग न छूटैं ॥
जिमिरविज्योतिकिरणपरकाशा । ऐसे ब्रह्म कर मोहिं जिवबासा ॥
यहि विधि ब्रह्म जीवहिं गाई । समझे तबही एक होजाई ॥
शिव शक्ती एकहिं मतकीन्हा । तारक भेदको बिरले चीन्हा ॥
जे जाना ते मुक्ति समाना । प्रेम भाव सद्गुरु पहिचाना ॥

साखी-जिन जाना निज प्रेम कहँ, सोई जन परवान ।
तासों कहिये सूरमा, कहैं कबीर बखान ॥

चौपाई

केवल ज्ञान पाय है सोई । जिहि पर कृपा गुरुकी होई ॥
केवल ज्ञान प्रगट समझाऊँ । भिन्न २ कर तोहि लखाऊँ ॥
प्रथमहि सुनो ज्ञान कर भेदा । निर्मोही होय हंस अछेदा ॥
सुर्तवंत अक्षर पहिचाना । और सकल जग मिथ्या जाना ॥
सुखदाई सबही कहँ भावै । बाल रूप होय अग्नि बुझावै ॥
समदृष्टी एकहि कर जानै । भला बुरा कछु मन नहिं आनै ॥
हृदय पुनीत शुद्ध मन होई । पाखण्ड भर्म डार सब खोई ॥
ब्रह्म वियोग सदा अनुरागी । दसहूँ दिशा झूठ तिन त्यागी ॥
झूठ सकल जग देखौ जानी । जैसे अहै बुदबुदा पानी ॥
अस मति जाकर होय सुहाई । केवल ज्ञान ताहि समुझाई ॥
माया बिना मोह नहिं आवै । नाम पदारथ निश्चय ध्यावै ॥
यह विधि केवल ज्ञान कहावै । जो सुमिरत सतलोक सिधावै ॥
केवल काम निःअक्षर आई । निःअक्षर मैं रहै समाई ॥
निःअक्षर तो करै नवेरा । कहैं कबीर सोई जन मेरा ॥
अमर मूल मैं बरन सुनाई । जिहिते हंसा लोक सिधाई ॥
शब्द भेद जाने जो कोई । सार शब्द मैं रहै समोई ॥
शब्द ज्ञानका लख जिन पाया । समदृष्टि सब माहिं समाया ॥
जेतक जीव देह धर आए । शब्दहिं सों ते सकल उपाए ॥
शब्द अखण्डा और सब खंडा । सार शब्द गरजे ब्रह्मंडा ॥
निःअक्षर की परिचय पावै । सत्त लोक महँ जाय समावै ॥

धर्मदास उवाच-छन्द

बिन्ती करैं कर जोर धर्मन, सुनहु सत गुरु सार हो ।
सत्तलोक है कौन शोभा, तहां कौन व्योहार हो ॥

कवन रूप जो पुरुष रहहीं, कवन सुख हंसा करे ।
कामिनी किहि रूप राजे, तहां सुख विस्तार हो ॥

सोरठा-सो मोहे प्रगट सुनाव, दया करो निज दास कहँ ।
बार बार बलि जांव, अब जिन मोहि छिपावहू ॥

सतगुरु वचन-चौपाई

कहैं कबीर सुनहु धर्मदासु । सत्तलोक को कहों प्रकासु ॥
है सतलोकहि अम्मर काया । एक रूप सबही त्रय माया ॥
षोडश भान हंस की कांती । अमर चीर पहिरे बहु भांती ॥
शोभा पुरुष कही नहिं जाई । कोटिन रवि इक रोम लजाई ॥
अमर लोक अमर है काया । अमर पुरुष जहां आप रहाया ॥
अमर पुरुष का पावै भेदा । कहै कबीर सों हंस अछेदा ॥
सत्तलोक सत शब्द पसारा । सत्त नाम है हंस अधारा ॥
अमृत फल के भोजन करहीं । युगन २ की क्षुध्या हरहीं ॥
पीवत सुधा भर्म मिट जाई । जन्म २ की तृषा बुझाई ॥
कामिनी रूप वरन उजियारा । चार भान की ज्योति पसारी ॥
शोभा बहुतक प्राण पियारी । प्रेम भाव सब हंस निहारी ॥
अनहित वचन बोल नहिं बानी । प्रेम भाव अमृत रसरानी ॥
शोभा बहुत जहां मन भावन । हंस कामिनी रंग बढ़ावन ॥
अमृत नाम हृदयमें लावे । प्रेम भाव पुरुषहि मन भावे ॥
आशा बस मन कोऊ नाहीं । भयो प्रकाश शब्दके माहीं ॥
बूझे संत ज्ञानी जो होई । सतगुरु शब्द हृदय समाई ॥
है निहशब्द शब्द सौं कहेऊ । ज्ञानी सोई जो वह पद लहेऊ ॥
धर्मदास मैं तोहि सुझावा । सार शब्दका भेद बतावा ॥
सार शब्द का पावै भेदा । कहैं कबीर सो हंस अछेदा ॥

सार शब्द निःअक्षर आहीं। गहै नाम तेहि संशय नहीं॥
सार शब्द जो प्राणी पावै। सत्तलोक महँ जाय समावै॥
साखी—कहै कबीर विचार के, सुनहु साधु धर्मदास।
अमरमूल निज शब्द है, ताकर अस परकास॥

चौपाई

अमर मूल ग्रन्थ में सारा। बिना अमर नहिं हंस उबारा॥

धर्मदास वचन

धर्मदास कर जोर निहोरा। स्वामी सुनिये बिनती मोरा॥
कवन प्रसाद दरश हम पाया। कवन प्रसाद अमर भइ काया॥
कवन प्रसाद साधु कहलायऊ। कवन प्रसाद हंस गति पायऊ॥
कवन प्रसाद ज्ञान हम पाया। कवन प्रसाद अमर भइ काया॥
कवन प्रसाद नाम हम पाया। कवन प्रसाद हम लोक सिधाया॥
कवन प्रसाद सजन जन जानी। सो समुझाय कहो मोहि बानी॥

सद्गुरु वचन

कहैं कबीर सुनो धर्मदासू। यह सब भेद कहों परकासू॥
पुरुष दयातें दर्शन पावा। कोटि भक्ति सत नाम समाया॥
जब कीन्ही सतगुरु ने दाया। नाम जान अमर भई काया॥
सेवा कीन्ही साधु कहाए। लोक जायके हंस कहाए॥
हेत दीप सज्जन जन जाना। कहैं कबीर भेद निर्वाना॥
साखी—एक नामकी शोभा, कहँ लग कहों बखान।
निःअक्षर जो जानि है, सोई सन्त सुजान॥

चौपाई

सत सहिदानि तोहि समझाई। अमर मूल महँ देखो आई॥
कोटि जन्मको पातक होई। नाम प्रताप जाय सब खोई॥
नामहि गहैं सूरमा जानी। बिना नाम कायर सो मानी॥

नाम बिना सबही विधि हीना । नाम बिना है ज्ञान विहीना ॥
नाम बिना सो मूरख कहिये । नाम बिना सो पापी लहिये ॥
नाम जान सोई गुण आगर । नाम जान पहुँच सुख-सागर ॥

छंद

नाम अमी अमोल अविचल अंक हीरा पावही ।
तज कागकि चाल मरालपथ गइ अमरलोक सिधावही ॥
जिमि सदन दीपक बिना नहिं मिटत है अँधियार हो ।
तिमि नाम बिन सुनु दास धर्मनि नहीं घट उजियार हो ।

सोरठा–नाम अमोल अपार, अमर मूल मैं वर्णेऊ ।
करहि कर्म जर छार, कहै कबीर विचार कर ॥

इति श्रीअमरमूल नाम लोकमहिमा वर्णन ।

द्वितीय विश्राम

धर्मदास वचन–चौपाई

बिन्ती इक मैं करों गुसाँई । जिहि तें मन की संशय जाई ॥
अमरमूल का कहौ विचारा । जाते हंस उत्तर है पारा ॥
कौन भक्त सों हंस कहावा । कौन विधीसों पंथ चलावा ॥
सो मर्याद देहु बतलाई । तुम प्रभु हौ हंसन सुखदाई ॥

सद्‌गुरु वचन

कहै कबीर सुन धर्मनि नागर । यह विधि हंस पहुँच सुख सागर ॥
प्रथम करै सतगुरु की सेवा । जाते मिटै काल कर भेवा ॥
महा प्रसाद प्रेम सो पावै । सेवा कर निज गुरुहि मनावै ॥
घट में राखे प्रेम अनंदा । चौरासी के छूटे फंदा ॥
गुरु साहिब एकहि कर जाने । सो हंसा सतलोक पयाने ॥
साधन सों एकहि मति रहई । दुबिधा भाव न कबहूँ करई ॥
गुरु साधु सेवा जिन कीन्हा । ताकहँ मुक्ति निकट हम दीन्हा ॥

साखी-गुरु संतनको जान कै, हृदय करै परतीत ।
कहै कबीर सो हंस है, चलि है भव जल जीत ॥

चौपाई

सतगुरु तहां आरती करहीं । सब तज जहां जाय पग्रु धरहीं ॥
चरणामृत साधन को लीजे । मुख पूजाकर अचवन कीजे ॥
गुरुकी दया निरन्तर रहई । निंदा रूप न कबहूँ करई ॥
निःअक्षर सुमिरो चितलाई । जासों आवागवन नसाई ॥
निःअक्षर को निरखै भावा । देह छोड़ सतलोक सिधावा ॥
गुरुके वचन सोचकर माना । नाम बिना मिथ्या जगजाना ॥
और न देख और नहि पेखै । निस दिन पल २ नाम बिवेखै ॥

साखी-झूट पसारा देख जग, करनी देय बताय ।
एक नाम कहँ जानके, ता महँ रहै समाय ॥

चौपाई

कर्म भर्म की छोडहि आशा । एक नाम सों कर विश्वासा ॥
कुलकी लज्जा भर्म नसावै । ऐसी रहिनी साधु कहावै ॥
यह विधिसों तुम पंथ चलाओ । जन्म जन्म को पाप नसावो ॥
वंश तुम्हार लोक कहँ जाई । नाम बिना बूडी दुनियाई ॥
नाम जान सो वंश तुम्हारा । बिना नाम बूडा संसारा ॥
नाम पार नहिं वेदन पावा । नेति नेति कर सब गुहरावा ॥
आदि ब्रह्मको पार न पावे । पढ पढ पण्डित भर्म लगावे ॥
मुक्ति पंथ नहिं सुर्त समावा । पढ गुन थकित पार नहिं पावा ॥
अंतकाल जम घेरे आई । तब विद्या कछु काम न आई ॥
विद्या पढ कीन्हा अभिमाना । अंतकाल होय नर्क निदाना ॥
वेद पुराण सास्त्र यह भाखा । नाम बिनाको जमसों राखा ॥
व्यास ब्रह्मकी अस्तुति कीन्हा । श्रीभागवत भाखनित लीन्हा ॥

काम रूपकर सबहि सुनावा । पंडित तासु मरम नहिं पावा ॥
पूरन ब्रह्म नाहिं चित दीन्हा । काम रूप सबहीमहि लीन्हा ॥
बिन सद्गुरु कोइ मरम न पावे । झूठ राह सबही लपटावे ॥
सतपुरुषको मरम न जाने । झूठहि धाय सांच कर माने ॥
झूठहि झूठ रहा लिपटाई । सत्तपुरुषको लखा न जाई ॥
अठारा पुराण ग्रन्थ बहु भाखा । तिनमहि सिरे भागवत राखा ॥
ब्रह्म महातम कहि समुझावें । श्रीभागवत भक्त दृढावें ॥
कृष्ण चरित्रसबकरहिबखाना । कृष्ण मरम काहू नहिं जाना ॥
निर्गुन भक्ति नहीं चित दीन्हा । सर्गुण भक्ति सबहिगहिलीन्हा॥
निर्गुन ब्रह्म मरम नहिं जाना । शिव समाधिलगावहिं ध्याना॥
विष्णु ध्यान कीन्हा मनमाहीं । अलख निरंजन देखैं छाहीं ॥
देखत छांहि मग्न मन भयऊ । निरंजन रूप विष्णु ह्वैगयऊ ॥
दैत्य देव कीन्हें उतपानी । कीन्हें दैत्य देवनकी हानी ॥
दैत्य मारिके देव छुडावा । ताते विष्णु सबन मन भावा ॥
गोपिन मिलकर रास पसारा । लीला एहि भक्त चित धारा ॥
ता लीला महि सृष्टि भुलानी । ब्रह्मादिक सबमुनि अरु ज्ञानी ॥
ज्ञान कथैं अरु जोति दृढावैं । जोति स्वरूप मर्म नहिं पावैं ॥
जोति स्वरूप निरंजन राई । जिन यह सकल सृष्टि भर्माई ॥
सत्त पुरुष का मर्म न जाना । झूठ ज्ञान सबही लिपटाना ॥
सत्य पुरुष सतगुरु सों पावे । सत्य नाम महँ जाय समावे ॥

साखी–कहे कबीर धर्मदाससों, अमर मूलनिज ज्ञान ।
अमर शब्द जा घट बसे, पावै पद निर्वांन ॥

चौपाई

सत्य महँ पावहु बासा । विना अमरनहिंकालविनाशा ॥
पढ पढ मूरख ज्ञान बिगारे । ज्ञान गम्य नहिं कोइ विचारे ॥

ज्ञान गम्य जाके घट होई। शब्द खोज करि है जन सोई ॥
ज्ञान गम्य नहिं मूरख पावे। सतगुरु मिले तो भेद बतावे ॥
सब संसार ढूण्ढ फिर आवै। ज्ञान बिना सब मूल गँवावै ॥

साखी—संत मिले संशय नसे, नहिं तो पच पच मरना।
नाव मिली केवटनहिं, किसी बिधि पार उतरना ॥

धर्मदास वचन—चौपाई

धर्मदास कहै सुनहु गुसाँई। ज्ञान शब्द मोहे समुझाई ॥
ज्ञान रूप सतपुरुष प्रकाशा। सत्य लोक महँ कीन्हो बासा ॥
किहिविधि समझ परे यह बानी। कहिये सद्‌गुरु नाम निशानी ॥

सद्‌गुरु वचन

ज्ञान स्वरूप पुरुषकर आही। ज्ञानहि रूप कबीर लखाही ॥
ज्ञान प्रकाश दीप सम जानो। बिना ज्ञान सब झूठ बखानो ॥
बिना ज्ञान घटमें अंधियारा। ज्ञानबिना नहिं होय उबारा ॥
ज्ञान बिना अक्षर नहिं पाई। ज्ञान रूप अक्षर है भाई ॥
ज्ञान रूप पुरुष कर जानो। यही वचन सत्य कर मानो ॥
ज्ञान रूप निःअक्षर कहिये। अक्षर भेद ज्ञान सो लहिये ॥
निःअक्षर हो ज्ञानहि जानो। अक्षर निःअक्षर पहिचानो ॥
ज्ञान शब्द पूरुष कर अंशा। ज्ञान जान जन सोइ मम वंशा ॥
बिना ज्ञान नहिं वंश कहावे। ज्ञान होय तब शब्दहि पावे ॥
सोई वंश सत शब्द समाना। शब्दहि हेत कथे निज ज्ञाना ॥

साखी—कहे कबीर विचारके, सुनियो हो धर्मदास।
जो यह शब्दहि पाय है, करि है लोक निवास ॥

धर्मदास वचन—चौपाई

बिनती करी धर्मनि कर जोरी। हे समरथ विनती यक मोरी ॥
जेहि ते वंश शब्द कहँपावे। सत्य लोक कहँ सत्य सिधावे ॥
औ जीवन कहँ देहु दृढाई। जाते जीव मुक्ति गति पाई ॥

अब मैं वंशका कहों विचारा। धर्मदास तुम अंश हमारा॥
आदि नाम आमोदिक शाखा। सोई शब्द वंश कहँ राखा॥
साठ समै बारह चौपाई। एही तत्त्व हंस घर जाई॥
जब माली का भेदहि पावे। सत्य नाम में जाय समावे॥
ऐसो भेद सुनो धर्मदासू। जन्म जन्म की मेटत त्रासू॥
सद्गुरु दया कर्म होय छीना। अमर होय नामहि लौ लीना॥
संशय का मैं कहों ठिकाना। संशय काल घटमाहिं समाना॥
जबही पुरुष धर्म कहँ कीन्हा। तबही संशय उत्पन लीन्हा॥
निः अक्षरकी परिचय पावे। संशय मिटे अमर घर जावे॥
संशय को खंडित हैं ज्ञाना। ज्ञान हीन संशय लिपटाना॥
संशय काल सबन कहँ खाई। निःसंशय हो नाम समाई॥
संशय काल लखै नहिं कोई। तातें गए बिगोय बिगोई॥
संशय नाम सुनो धर्मदासू। एक नाम की राखहु आसू॥
नाम छोड़ अन्तहि चित आने। संशय तमहि पकर गहि ताने॥
नामहि गहै तेहि निहसंसा। नाम बिना बूडे सब हंसा॥

साखी-कहैं कबीर धर्मदाससों, संशय को विस्तार।
एक नाम कहँ जानके, उतरहु भौ जल पार॥

धर्मदास वचन-चौपाई

हे स्वामी संशय उतपानी। ज्ञान हीन सब जीवहिं जानी॥
बिरला हंस होय अंकूरी। सो यह ज्ञान गहै निज मूरी॥
ज्ञान लखे बिन मुक्ति न होई। तौ यह दुनियां जाय बिगोई॥
नाम महातम भाख सुनावा। बिना नाम कोई पार न पावा॥

सद्गुरु वचन

कहैं कबीर सुनो धर्मदासू। यह निज भेद कहों तुमपासू॥
ज्ञान हीन प्रानी जो होई। ताकर भेद कहौं मैं सोई॥

ता कहँ दीजै पान प्रवाना। निश्चय हंस होय निर्वाना॥
और प्रतीत हीय में धरई। सो प्राणी भवसागर तरई॥
पान पाय सत्यहि मुख भाखे। सद्गुरु चरण हियेमें राखे॥
सद्गुरु केर निछावर करई। साधु चरण चितनिश्चय धरई॥
तन मन धन संतन पर वारै। सतगुरु चरण हृदयमें धारै॥
सुत नारी कर मोह न आवै। सबही त्याग चरण चित लावै॥
चरण धोय चरणामृत लीजै। सत्यलोक महँ अमृत पीजै॥

धर्मदास वचन

पुरुषरूप कर यह उपदेशा। नारी को अब कहो सँदेशा॥
नारी नाम मुक्ति किमि होई। ताके घट महँ ज्ञान बिगोई॥

सद्गुरु वचन

ताकर तोहि भेद समुझाऊँ। मनो कामना सकल मिटाऊँ॥
नारी तरै सुनो धर्मदासू। कहैं कबीर नाम विश्वासू॥
ज्ञान हीन नारी को रूपा। ताको मैं सब कहों स्वरूपा॥
तन मन धन संतन पर वारै। संतनकी सेवा चित धारै॥
साधन सों जो अन्तर करई। धर्मरायके फंदा परई॥
गुरुके चरण निछावर जाई। तन मन धन सब देय चढ़ाई॥
गुरुकी सेवा निशिदिन करई। सो तिरिया भवसागर तरई॥
ऐसी धरन धरै धर्मदासू। तबही मिटै कालकी फांसू॥

धर्मदास वचन

धर्मदास विन्ती अनुसारी। हे स्वामी तुम्हरी बलिहारी॥
यही वचन प्रभु मोहि सुनाऊ। मोरे मन इक भर्म समाऊ॥
नारी रूप सकल हम जाना। पुरुष रूप एकहि पहिचाना॥
नारी कहिये सब संसारा। आदि ब्रह्म है पुरुष अपारा॥
आदि पुरुषहमतुमकहँ चीन्हा। दूसर पुरुष कहाँ अब कीन्हा॥

ओ तुम कही सोई हम जानी। नारी रूप सुर्त पहिचानी ॥
दूसर नारि कहां है कीन्हा। यही वचन हम संशय लीन्हा ॥
मैं नररूप आँहु मति हीना। यही भेद सुन भयउ मलीना ॥
तुम तो दयावंत गुरु स्वामी। क्षमिय चूक प्रभु अन्तरयामी ॥
नारी नाम मातु जो कहिये। इनहि भेद कैसे निर्बहिये ॥
नारी नाम बहिन जो आही। तासौं कैसे अंक मिलाही ॥
नारी नाम पुत्री जो होई। तासौं कैसे अंक सजोई ॥

साखी—यह सब भेद बतावहु, सुनहु हो बंदीछोर।
यह संशय प्रभु मेटहु, चरण गहों प्रभु तोर ॥

सद्‌गुरु वचन—चौपाई

कहैं कबीर सुनो धर्मदासू। यह संशय उपजी तुम पासू ॥
आदि पुरुष तब हते अकेला। शब्द स्वरूपी पंथ दुहेला ॥
तब साहिब ऐसा मत कीन्हा। सकल सृष्टिरचिवेचित दीन्हा ॥
मनसा घटते भिन्न निकारी। उत्पति भई तहाँ इक नारी ॥
सोई नारि सकल जग जाया। भग भोगे तैं पुरुष कहाया ॥
भग द्वारे होय बालक आया। यही भांति सब जग भर्मांया ॥
मैं तो एक मतो रच जबही। पुत्र, बंधु पिता भयो तबही ॥
मैं तो एक नारीकर जबही। पुत्रि, बहिन माता भई तबही ॥
भाई बहिन कीन्हा व्योहारा। धर्मराय को यह संसारा ॥
यह संशय महँ मार ले जाई। मार जार सब दुनियां खाई ॥
आपहि पिता आपही पूता। आपहि देव आपही भूता ॥
आपहि नारि रूप औतरिया। आपहि सकल सृष्टि विस्तरिया ॥
आपहि कर्म धर्म उपजावन। आपहि रचै आप विनसावन ॥
तातें भेद बताऊँ तोही। ज्ञानी होय समझ कर लेही ॥
धर्मदास को संशय छूटा। जन्म जन्मके पातक टूटा ॥

ज्ञानी सों कहिये उपदेसा । मूरख सों जिन कहौ संदेशा ॥
संशय कीन्ह सकल जग भंगा । काहु न चीन्हा संशय अंगा ॥

साखी–कहैं कबीर सो बाचि है, गुरू चरण चित दीन्ह ॥
अमर मूल निज शब्द है, हंसा चित गहि लीन्ह ॥

चौपाई

धर्मदास तुम करो विचारा । बिना शब्द नहिं उपजै पसारा ॥
सार शब्द सों सब उपजावा । नारि पुरुष दोई निरमावा ॥
सूरज पुरुष चन्द्र है नारी । यह घटमें द्वै रूप सँवारी ॥
जैसे धातु कनककी एका । सांचा माही रूप अनेका ॥
पाप पुण्य रूपहि सों बांधी । कीन्ह धर्म यह अगम अगाधी ॥
पाप रु पुण्य भर्म है भाई । धर्म राय सब भर्म उपाई ॥
भर्म अमल तबही मिट जाई । सत्य नाम जब रहै समाई ॥
जब लग भर्म अमल है भाई । तब लग नाम बूझ नहिं जाई ॥
बूझ सीख गावै बहु भाँती । सुमरन भर्म करै दिनराती ॥
आप न चीन्हे मूढ़ गँवाँरा । भर्मी भ्रम भूला संसारा ॥
धर्मदास तुम भर्महि छाड़ी । निर्भय होय नाम चित माड़ी ॥
जो तुम भर्म करो जो माहीं । तौ कस हंसन लोक कह जाहीं ॥
भर्म छोड़के भक्ति दृढावहु । यह विधि हंसनलोक पठावहु ॥
तुम कहँ दीन्ह जक्तको भारा । तुम्हरी मुहर चलै संसारा ॥
हाथ तुम्हार जीव सब तरहीं । भवसागर ते हंस उबरहीं ॥
धर्मदास जग पारस देहू । जीव छुड़ाय काल सों लेहू ॥
पारस नाम कहेउ उपदेशा । मूरख सो जिन कहो संदेशा ॥

छन्द–ज्ञानी कहँ यह भेद धर्मनि देहु तुम समुझायकै ।
रहन गहन विवेक बानी कहहु सकल बुझायकै ॥

नाम पारस परस घट महँ काग होय मराल हो ।
अमर लोकहिं बास कर तहँ नाहिं काल कराल हो ॥

सोरठा—करलेहु आप समान, गुरुभृंगी यह जीव को ।
देखकर नाम निशान, रूप बरख पल्टायके ॥

इति श्री अमरमूल ग्रंथ नाममहिमा वर्णन तृतीय विश्राम ॥

धर्मदास वचन—चौपाई

धर्मदास उठ बिनती लाई । तुम पर ताप हंस मुक्ताई ॥
किहिविधिपलटै जिवकी काया । सो समुझाय करौ मोहे दाया ॥
हो सतगुरु तुम अन्तर्यामी । पारस भेद कहो मोहे स्वामी ॥

सतगुरु वचन—चौपाई

कहै कबीर सुन सन्त सुजाना । पारस भेद सुनाऊँ ज्ञाना ॥
ज्ञानी काहिं कहँ शब्द है सारा । यह पारस तें हंस उबारा ॥
पारस पान बालक कहँ दीजे । तातें हंस काल नहिं छीजे ॥
कामिनी कहँ पारस है सेवा । धर्मदास लखियो यह भेवा ॥
यही रहन तुम पंथ चलाओ । जीवन बोध लोक पहुँचाओ ॥
तीनहु विधि यह कहै बुझाई । जो मानैं सो लोक सिधाई ॥
पुरुष होय शब्द नहिं जाना । निश्चय हुइहै नरक निदाना ॥
बालक हो बीरा नहिं पावै । कैसे कै वह लोक सिधावै ॥
कामिनि हो पारस नहिं लेही । गुरु सोई जो पारस देही ॥
कामिनि जो सो पारस लेही । कैसे मुक्ति होय पुनि तेही ॥
यासे गुरु जो अन्तर करई । धर्मराय के फन्दा परई ॥
गुरु नहिं शिष कहँ ज्ञान बतावा । यह गुरुमें फिर धोख समावा ॥
शिष्य जो गुरुसों अन्तर राखा । शिषमहँ धोखा सत हम भाखा ॥
गुरु सोई जो शिष्य समुझावे । शिष्य सोई जो गुरु मन लावे ॥

गुरु कहँ पेट करे अधिकाई । निश्चय नरक जाय रे भाई ॥
तुम सों भेद कही निहतंता । निश्चय वचन सुनो मतिमंता ॥

धर्मदास वचन

धर्मदास बिनवैं कर जोरी । स्वामी सुनिये बिन्ती मोरी ॥
नारी नाम नरक की खानी । सो गुरुको किमि दीजे आनी ॥
सकल नरक नारी ढिग कहिये । सोई नरक गुरु कैसे चहिये ॥
गुरुतो ब्रह्म रूप हम जाना । नर्क भोगे सो कौने ज्ञाना ॥
गुरुकी महिमा अगम बताई । नीच वचन कैसे कहुँ साँई ॥
नीच सोई जो नीची कहई । नीच पंथ सों पार न लहई ॥
ऊँचा होय सो गुरु पद धारा । नीचा छोड़ ऊंच भव पारा ॥
नीचे कर्म काट गुरु दीन्हा । गुरुका वचन मान मैं लीन्हा ॥

दोहा-सो अब मोहि बतावहू, तुम गुरु अगम अपार ।
धर्मदास की बीनती, सुनियो हो करतार ॥

साखी-रहित ज्ञान तुम भाखिया, सत्य शब्द ठहराय ।
व्यभिचारी महँ सत कहौं, कहो गुरू समुझाय ॥

सतगुरु वचन चौपाई

कहैं कबीर सुनो धर्मदासू । अब यह भेद कहौं तुम पासू ॥
हम जानी तुम संशय छूटा । काल कठिन भव तुम कहँ लूटा ॥
काल केरि गति तुम नहिं जाना । झूठी मायामें लिपटाना ॥
जब जाना निज ब्रह्म स्वरूपा । ता कहँ नाहिं रंक अरु भूपा ॥
नाम अमल रस छाके अंका । ताको कहा नरककी शंका ॥
तुम कहँ जीव बुद्धि नहिं छूटा । ताते जमरा फिर फिर लूटा ॥
धर्मरायकी गति नहिं जानी । हर मंदिर उपजाओ आनी ॥
यह बाजी महँ जीव भुलाना । शिवहिसमाधिलगावहि ध्याना ॥
विष्णु रूप काहु नहिं जाना । सुर मुनि नर बूड़े अभिमाना ॥

यही वचनमें सब जग बंध्या । नाम बिना नहिं छूटत फंध्या ॥
झूठी माया सब जग फंदा । फंद कटे बिन नहिं निर्द्वन्दा ॥
अज्ञानी जिव पर है फांसा । नर्क स्वर्ग दोऊ कर आशा ॥
संशय काटनको हम आए । धर्मराय सब दुनियां खाए ॥
ज्ञान सँवाद तुम कहँसमुझाए । तुम कहँ धर्मराय भर्माए ॥
वचन हमारे दोष लगाए । झूठी माया तुम लिपटाए ॥
शिष्य सोई गुरु वचनहि माना । आप ज्ञान बूझे नहिं ज्ञाना ॥
गुरु प्रतीति हृदये नहिं आई । तातें बूड़ी सब दुनियाई ॥
बूड़त जाइ थाँह नहिं पावा । तातें जन्म जन्म भर्मावा ॥
तब सतगुरु भये अन्तरध्याना । धर्मदास मनमहँ पछताना ॥

धर्मदास वचन

दया करौ गुरु पूरन स्वामी । मैं नहिं जाना अंतर जामी ॥
हों अज्ञान तुम मर्म न जाना । जान बूझ भूले अभिमाना ॥
क्षमि अपराध मोर प्रभुराया । मोरे चित जो अन्तर आया ॥
तुम गुरु सतगुरु ब्रह्म समाना । मैं शिव आहुँ महा अज्ञाना ॥
कुवचन वचन बोल जो भाखा । माता पिता हृदये नहिं भाखा ॥
करुणामय गुरु अन्तर्यामी । करहु दया अब मोपर स्वामी ॥
जो नहिं दर्शन पाऊँ आजू । तजौं प्रान मैं तुम्हरे काजू ॥
हे साहिब तुम पथ जो दीन्हा । तातें तुमहि बूझ हम लीन्हा ॥

साखी–धर्मदास बिनखत बदन, करुणा बहुविधि कीन्ह ।
दर्शन बिन अति विकल है, जल बिन तलफत मीन ॥

सतगुरु वचन–चौपाई

तबहिं कबीर दया चित आई । धर्मदास तब दर्शन पाई ॥
दर्शन पाय भयो आनंदा । जैसे चकोर मिलत है चंदा ॥

गहि गुरुचरण बंदगी कीन्हा । चरण धोय चरणामृत लीन्हा ॥
विन्ती कीन्ह चरण चितलाई । महा प्रसाद दीजिये साँई ॥
आमनिको अज्ञा तब दीन्हा । नाना व्यंजन तुरतहि कीन्हा ॥
कंचन थार आरती चारी । सेवा बहुत हृदयमें धारी ॥
सुत नारी सब चरणन लागे । प्रेम प्रतीत भक्ति मन पागे ॥
चरणामृत सबही मिल लीन्हा । दिव्य ज्ञान सब कहँ कर दीन्हा ॥
साहिब चौका बैठे जाई । बहुत भाँति कर आसन लाई ॥
परस थार जब आमनि नारी । सुन्दर बदन प्राण अतिधारी ॥
मार मार प्रसाद लै खावहिं । प्रेमभाव साहिब मन भावहिं ॥
पाय प्रसाद पुनि अचवन लीन्हा । धर्मदास तब विन्ती कीन्हा ॥
दया करहु अब मोपर स्वामी । बन्दी छोड़ वर अनंतर जामी ॥
तब दीन्हऊँ प्रसाद गुसाँई । धर्मदास तब हर्षे मन माँई ॥
जेतक साथ रहे घर नाहीं । वह सब आनंद भये मनमाहीं ॥
आमनि तबहीं पलंग बिछावा । सतगुरु तहां आन पौढावा ॥
धर्मदास तब पंख डुलावैं । आमनि चरण चापि सुख पावैं ॥
सकल साध हिल बंदगी कीन्हा । तन मन धन साहिब कहँ दीन्हा ॥
मेटी सकल जगतकी लाजा । ताते होय जीवको काजा ॥
धर्मनि तहां निछावर करहीं । बार बार विन्ती अनुसरहीं ॥

साखी—यह तन लेव गुसांई, जो होवे हम काज ।
तन मन धन कर निछावर, सुख संपति कुल लाज ॥

सद्गुरुवचन—चौपाई

कर धर सिज्या पर बैठाया । अन्तर गति स्थिर ठहरावा ॥
जोई मुख सौं भीतर देखा । सबहि कसौटी कीन्ह परेखा ॥
साहिब तब ही दाया कीन्हा । मस्तिक हाथआमनिके दीन्हा ॥
जाहु न अपने घरके माहीं । सत्य तुम्हार देखे मन माहीं ॥

यह मन कर्म अकर्म करावे । देहके स्वारथ नाच नचावे ॥
तातें तुम मन थिर हम जाना । काल चरित्र छूटा अभिमाना॥
हमरे देह काम नहिं होई । तुम अहंकार सकुल हम खोई॥
धर्मदास तुम वंश उजागर । हंसन पहुँचावहु सुख-सागर ॥
निश्चय हुई है मुक्ति परवाना । सत्यलोक कहिं देव पयाना ॥
वंश तुम्हार जहां लग होई । इनके हाथ मुक्ति सब होई ॥
वंश ब्यालिस अचल तुम्हारा । तिनके हाथ मुक्ति संसारा ॥
ब्यालिस माहि त्रयोदश भाखा । अंश हमारहु हैं निज शाखा॥
नाम जानेते सबे उबारा । बिना नाम बूड़ा संसारा ॥

धर्मदास वचन

धर्मदास बिन्ती अनुसारी । हे साहिब मैं तुम बलिहारी ॥
हमरे वंश कहँ पारस देई । तुम्हरे दरश बहुर कब लेई ॥
यही अर्ज मेरो सुन लीजे । वंश हमारहु आपनो कीजे ॥
जिहिते मुक्ति होय सब केरा । सो मोहे स्वामी कहो नवेरा ॥

सद्गुरु वचन

तुम्हरे वंश को कहो उपदेशा । जाते होय हंसको भेषा ॥
जो कोई हंस होय जगमाहीं । उबरहिं वंशनकी बांहीं ॥
वंश तुम्हार जे बालक होई । तिनसो पारस ले सब कोई ॥
जा कहँ नाहीं ब्यापै कामा । निशदिन रहे शब्दमें धामा ॥
रहित गहिनसों स्थिर अंगा । मनसा वाचा सत्य प्रसंगा ॥
सत पास को जानैं भेदा । आतम परसैं सूक्ष्में भेदा ॥
ऐसा सज्जत शब्द सनेहा । प्रकट कबीर तासुकी देहा ॥
तिनसों पारस भेद न कीजे । वंश मोर जो शब्द पतीजे ॥
पारस माहिं भेद जो करई । कहैं कबीर सो किहि विधि तरई॥
बालक बोध कै पंथ चलाओ । बिना पंथ सोला नहिं पाओ ॥

बालक तेरे वंशके हाथा । पंथ दीन्ह मैं तिनके हाथा ॥
मुक्ति जान कर राखे गोई । तेहि सम द्रोही और न कोई ॥
शब्द जान कर पन्थ चलावे । देश देश फिर सब समझावे ॥
तौन देश गँवनह कराई । सुर्तन बन्त हंसन मुक्ताई ॥
पुरुष आज्ञा जो मोकहँ दीन्हा । मुक्ति भेदसों सब कहि दीन्हा ॥
सार शब्दका भेद जो पावा । यह सब ज्ञान तोहि समझावा ॥
बिना ना मिट है नहिं संशा । नाम जान सो हमरे वंशा ॥
नाम जान सो वंश करावे । नाम बिना सो मुक्ति न पावे ॥
वंश तुम्हार नाम जब पाई । भवसागरतें लोक सिधाई ॥
नाम न जान करे अहंकारा । सो जिव परि है भवजलधारा ॥
नाम जान सो वंश हमारा । बिना नाम बूड़ा संसारा ॥
विना नाम सबही अभिमानी । नाम प्रचय कोई कोई जानी ॥
नाम निहक्षर कहा बुझाई । अमरमूल महँ देखो आई ॥
निह अक्षर को पावे भेदा । सोई हंसा होय अछेदा ॥

साखी—कहै कबीर विचारके, निःअक्षरको भेद ।
निःअक्षर जो पावहीं, सोई हंस अछेद ॥

चौपाई

निह अक्षर तुम ज्ञान सुनाओ । जम्बू द्वीप हंस मुक्ताओ ॥
ऐसा धरम धरे जो कोई । निश्चय पार पाय है सोई ॥
तुम धर्मदास पन्थके राजा । तुम्हरे हाथ जीव को काजा ॥
यही मता हम तुम कहँ दीन्हा । दूसर कोइ न पावे चीन्हा ॥
अक्षर भेद बसे जिहि अंगा । निस वासर हम ताके संगा ॥
सत्य लोक महँ वासा पाई । अमृत भोजन करे अघाई ॥

छन्द—यही महिमा जीव धरहै, बास करै सतलोक हो ।
काल फन्दा काटके लै, धरो हँसन थोक हो ॥

सुभ्रन सिज्या बास लीन्हो, असन अमृत पावहीं ।
वस्त्र अम्मर पहिरके तिन, जरा मरन नसावहीं ॥

सोरठा-षोडश भान प्रवान, धर्मनि शोभा हंसकी ।
पावो शब्द प्रवान, अम्रलोक वासा कियो ॥

इति श्रीग्रंथ अमरमुल धर्मदास कसोटी, पारस भेद वर्णन-
चतुर्थ विश्राम

धर्मदास वचन चौपाई

धर्मदास तब विन्ती कीन्हाँ । अबलगसाहिबहमनहिंचीन्हा ॥
जब तें दाया भई तुम्हारी । भयो प्रकाश हृदयमें भारी ॥
अमर लोकके हो गुरु वासी । कारण वन आये अविनाशी ॥
मृत्तलोक आये किहि काजा । धर्मराय बड़ पापी राजा ॥

सद्गुरु वचन

धर्मनि सुनो बचन चितलाई । जीवन काज पुरुष पठवाई ॥
सत्यलोक तें जगमें आवा । धर्मराय मोहे देखन धावा ॥
धर्मराय तब पूछी बाता । कवन काज तुम आयेउ ताता ॥
मृतलोक में अब मैं जाऊँ । हंसन काज पुरुष पठवाऊँ ॥
धर्मराय तब बोलन लीन्हा । हमरे देश मुक्ति तुम दीन्हा ॥
मैं तो तीन लोक कर राजा । तुम कस करो जीव करकाजा ॥
यह तो लोक पुरुष मोहे दीन्हा । तुम कस मोहे छुड़ावन लीन्हा॥
अजहुँ भली है जाहु गुसाँई । जीव जीव जन्तु मारो सब ठाई॥
अगम अपार निरंजन देवा । तुम नहिं जानत मोरा भेवा ॥
किहि विधि हंस उतारो पारा । कौन भेद लै करो पसारा ॥
तब हम कहा सुनो धर्मराजा । जानत नाहिं मर्म तुम काजा॥
हम बल एक शब्द का भाई । तेही के बल हंस मुक्ताई ॥

जहां नाम तहां तुम नहिं कोई। बिना नाम है तुम्हरी छोई॥
यह विधि होय हंस परवाना। आवा गमन तासु नहिं जाना॥

धर्मराय वचन

जेतिक नामे सुख सुम्रन करिया। सो सब नाम हमारे धरिया॥
जो कोइ धर्म करही संसारा। सो सब मोर आहि व्यवहारा॥
बहुत भाँति मैं फंदा कीन्हा। शंकर सहित बांध मैं लीन्हा॥
कवन नाम हंसन मुक्ताओ। सो स्वामी मोहे भेद बताओ॥

ज्ञानी वचन

नाम हमार पुरुषके केरा। वही नाम सों हंस उबेरा॥
धर्मराय तुम ताहि न जाना। अपने अवगुण भये बिगाना॥
यही नाम आपन घट लेते। जीवन कष्ट नाहिं तुम देते॥

धर्मराय वचन

परम पुरुष है मोरा नाऊँ। दूसर पुरुष कहां निर्माऊँ॥
मोरे आगे कवन कहावा। सब कहँ मार जार भर्मावा॥
तीन लोक महँ जीव पसारा। उन कहँ मार करो संहारा॥
ब्रह्मा पुत्र हमारो भयऊ। अंतकाल ताही दुख दयऊ॥
शिवसमाधि कीन्हा अहँकारा। प्रलय काल करो जर छारा॥
विष्णु बड़े सबही में अंशा। तिनकहँ मार करो निरवंशा॥
अपने अंश यही गति देहौं। सृष्टि संहार प्रलयकर लैहौं॥
तुम तो आए हंस उबारन। कवन भांति करिहो जगतारन॥

ज्ञानी वचन

धर्मराय कहँ तब समुझाई। तुम जीवनके दुष्ट कहाई॥
जब तुमकीन्ह चोरको काजा। तातें पुरुष मोहिं उपराजा॥
नाम एक मोहे दीन्ह अमोला। वोही नाम जिव बन्दी खोला॥
ठाकुर नाम तुम्हारा होई। तीन लोक ठकुराइ समोई॥

पुरुष नाम तुम दीन्ह बिसारी। आपहि पुरुष रूप विस्तारी ॥
योग सन्तायन हमरो नाऊ। तोहि कारण मोहे निर्माऊ ॥
तुम निज धर्म करौ अहंकारा। आदि ब्रह्म अहे रखवारा ॥

धर्मराय वचन

धर्मराय तब उत्तर दीन्हा। हम कहँ दया पुरुष ने कीन्हा॥
तुमहीं दया करहु मोहि पाहीं। जिहिते मोर रहे जग छाहीं ॥
तुम जेठे हम लहुरे भाई। हम ऊपर तुम काहि पठाई ॥
पुरुष समानहिं तुम कहँ जाना। अपने मन तुम दूसर ठाना ॥
कहौ उपदेश सोइ उपदेशा। जातें ऊजर होय न देशा ॥
पुरुष वचन हम शिरपर मानी। आज्ञा भंग करों नहिं ज्ञानी ॥

ज्ञानी वचन

योग सन्तायन बोलन दीन्हा। यह उपदेश पुरुष तोहि दीन्हा॥
जा जिव पान प्रवाना पावै। ताके निकट काल नहिं जावै॥
जो कोइ जीव होइ है ज्ञानी। ताकी तुम कीजो महिमानी ॥
सार शब्द जो बालक पावे। तासो प्रेम बहुत तुम लावे ॥
यह उपदेश हमारो लीजे। पुरुषके वचन मान शिर लीजे॥
जो इतना नहिं करौ कबूला। तौ तुम सहहु दुःख बहु शूला॥
पान प्रवाना शब्द न होई। जस जानो तस करिहो सोई ॥
इतना धर्मराय जब जाना। जो तुम कहा सोई परवाना ॥
बिन्ती एक हमारी लीजे। नाम सन्देश मोहि कहि दीजे॥

साखी—मैं उपदेश जो पावहूँ, सो सब कहहुँ तुम्हार।
तुमहि पुरुषके अगुवा, हंस छुड़ावनहार ॥

ज्ञानी वचन-चौपाई

तब साहिब जो कहिबे लीन्हा। तुम नहि पावहु नामको चीन्हा॥
जब तुम सत्यलोक महँ रहिये। चौसठ युगलग सेवा करिया ॥

तबै पुरुष आज्ञा तेहि दीन्हा। सत्रह खण्ड राज्य तब दीन्हा॥
तब तुम मान सरोवर जाई। कन्या देख बहुत सुख पाई॥
पुरुष तोहि तब मार निकारा। तब हम भएऊ हंस रखवारा॥
शब्द वार तब पुरुष सम्हारी। तुम्हरे टारे टरत न टारी॥
मूल शब्दका का पावै भेदा। सोई हंसा होय अछेदा॥
सोई भेद तुम नाहिन पावा। कितनौ सेवा कर गुहरावा॥
तुम कुबुद्धि औगुण बड़ कीन्हा। पुरुष आय पेल जो दीन्हा॥
तबतै तुम्हरो भिन्न पसारा। राज पसारेउ यह संसारा॥
हम कहँ दया हंस की आई। दीन्ह पयान लोक तैं भाई॥
बचन हमार मान सिर लीजे। शब्द खोजि अब नाहि करीजे॥
जब तुम पाहौ शब्द ठिकाना। लोक तुम्हार न रहे निदाना॥
सबै जीव सत लोकहि जाई। तुम्हरी नहीं रहै ठकुराई॥
येही मन्त्र हमारो धरहू। शब्द खोज अब नाहीं करहू॥

साखी—महा प्रलय जब होय है, देखि हो लोक हमार।
तब हम तुम कहँ मिलिहिंगे, शब्द दोह टकसार॥

चौपाई

सत्रह खण्ड तबहि मिटि जाई। रहै पुरुष तब शब्द समाई॥
धर्मराय तुम पुरुष के अंशा। मिलहै शब्द मिटै सब संसा॥
इतना वचन धर्म सौं कीन्हा। पीछे जगही प्याना कीन्हा॥
ता पाछे संसारहि आये। पेडरमों बहु जीव छुड़ाये॥
चार सिद्ध पर्वत पर पाये। तिनसों ज्ञान भेद समुझाये॥
चारो सिद्ध काल सों बाचा। दिव्य ज्ञान हृदय महँ साचा॥
ता पीछे तुम्हरे ढिग आए। धर्मदास तुम दर्शन पाए॥

धर्मदास वचन

धर्मदास बिन्ती अनुसारी। हे सतगुरु तुम्हरी बलिहारी॥
अगम ज्ञान तुममोहिं लखावा। हृदय कमल तुम मोर जुड़ावा॥

धन्य भाग्य सतगुरु पगुधारा । अब भयोजीवन सुफल हमारा॥
एक वचन मोहि कहो बुझाई । जिहितें जीव की संशय जाई॥
काल कठिन सो काहु न जाना । सो मोसों कहिये परवाना ॥
जीवत काल चिन्ह जब पावे । तब तुम्हरे सतलोक सिधावे॥
जीवत काल चीन्ह नहिं जाई । तो कैसे सत लोक सिधाई ॥
तुम तो ज्ञान बहुत उपदेशा । बिन देखे सब लगै अन्देशा ॥
दया करो अपनो जन जानी । काल चिह्न पाऊ पहिचानी ॥
बिन चीन्हें नहिं होय उबारा । भवसागर बाकी है धारा ॥
काल कठिन है जगको फंदा । किहि विधिजीवहोयनिरद्वन्दा॥
निरद्वन्दी मोहे करो गुसांई । तो मैं पंथ चलाऊँ जाई ॥

सद्गुरु वचन

साहिब तब कहिबे चितधारा । धर्मदास सुन काल पसारा ॥
काल अमल संशय है भाई । प्रथम काल तुम चीन्हो आई॥
जेतक कर्म करे संसारा । सो सब आहि काल व्योहारा॥
काल ख्याल जानत नहिं कोई । कर विपरीत सबन कहँ सोई॥
दस औतार काल ने छलिया । कालअपबल सबकहँ दलिया॥
मीन स्वरूप काल औतारा । कूर्म स्वरूप महा जो धारा ॥
बारह रूप औतार जो कीन्हा । नरसिंह रूप औतारजोलीन्हा ॥
वामन होके बलि कहँ छलऊ । परशुराम होय क्षत्री दलऊ ॥
राम रूप होय रावन मारा । कृष्ण रूप होयकंस पछारा ॥
बौध रूप जगन्नाथ औतारा । लीला बहुत भांति सम्हारा ॥
दस औतार कालके धरिया । म्लेच्छ मारसतयुगसो करिया॥
इतनी देह धरी युगमाहीं । काल अमल व्यापे तिनपाहीं॥
काल मर्म काहु नहिं जाना । सबकहँ पकर कीन्हे पिसवाना॥
काल पुरुष काहू नहिं चीन्हा । कालपायसबहिन गहिलीन्हा॥

काल पायकर जागहि योगी। कालकहू सुन फिरहिं वियोगी॥
काल पायकर पाप जो करहीं। काल पाय सब पुण्यहि धरहीं॥
काल पायकर सत युरु भयऊ। काल पाय त्रेता है गयऊ॥
द्वापर काल पायकर आवा। कलियुग काल पाय निरमावा॥
कालहि पाय चला सब जाई। काल पाय संसार समाई॥
काल पाय कर भक्ति करावे। काल पायकर लोकहि आवे॥
काल भेद मैं कहा विचारी। धर्मदास तुम ज्ञान सम्हारी॥
काल कालको मर्म न जाना। सत्य पुरुष तैं भय उतपाना॥
अलख निरञ्जन नाम कहावा। पुरुष प्रसंग रूप बनि आवा॥
पुरुष प्रगट जब रूप बतावा। सत्य लोक जब नाम धरावा॥
तबही पुरुष गुप्त होय गयऊ। काल रूप यह मनकर भयऊ॥

साखी—काल काल सब कोई कहै, काल न कीन्ह विचार।
मन थिर होवे शब्द महँ, काल रहे झकमार॥

चौपाई

ना कहुँ आवे ना कहुँ जाई। शब्दहि माहीं सहज समाई॥
जा देखहुँ तैसा है सोई। गुप्त प्रगट वे रहैं समोई॥
गुप्त थे प्रगट एक कर भयेऊ। दुतिय भावकर ज्ञान नशयेऊ॥
दुतिया दुमंत दासी होई। ज्ञान विचार कहां रहो सोई॥
तीन कालसों जो रहे थीरा। सोई पुरुष कायाको बीरा॥
सोई वीर शब्द निज मूला। मंत्र ध्यान सोई स्थूला॥
वही शब्द तैं काल डराई। नातर करि हैं कोट उपराई॥

साखी—दुनिया चेरी काल की, मूरख बूझै नाहिं।
जाकी दुनिया मिट गई, ते आतमब्रह्म समाहिं॥

चौपाई

जैसा है तस कहा न जाई। ज्ञान बिना बूझै नहिं भाई॥
आय ज्ञान तब परगट भयऊ। दुतिया भाव सबै मिट गयऊ॥

दीपक ज्ञान भयो उजियारा । कालतिमिरमिटगा अँधियारा ॥
भय आनन्द गुरु जब पाये । ऊँच नीच सब दूर बहाये ॥
ऊँच नीच सब समकर जाना । ऊँच नीच सब झूठ बखाना ॥
ऊँच नीच सब झूठहि लावे । जब आतम परमातम पावे ॥
झूठा लोग न बूझे कोई । सब संसार झूठ है सोई ॥
समता ज्ञान प्रकाश कराई । और ज्ञान सब झूँठ है भाई ॥
झूँठ सांच संसार समाना । सत्य शब्द नाहीं पहिचाना ॥
झूँठ सांच दोई मिट गयऊ । ज्ञानप्रकाश जाहि घट भयऊ ॥
धर्मदास तुम बूझहु ज्ञाना । काल कर्म सुनहु अब काना ॥
सतगुरु दया जाहि पर होई । अमरमूल कहँ जानै सोई ॥

साखी–अमर मूल कहँ जानई, काल दगा मिट जाय ।
काल परख कर बूझ दे, सब नहि काल समाय ॥

चौपाई

काल तिहकालका भेद सुनाऊँ । धर्मदास मैं तोहि लखाऊँ ॥
निह अक्षरका भेद निज पावै । निह अक्षर माहिं जाय समावै ॥
जो नहि जान निहअक्षर भेदा । ता महँ काल करत है छेदा ॥
निह अक्षर बिन काल न जीते । यज्ञ दान केता कर बीते ॥
योग यज्ञ तप काल पसारा । यज्ञ दान सब काल व्योहारा ॥
काल गती संसार है भाई । बिरला जन कोई लख पाई ॥

साखी–संशय काल शरीर महिं, विषय काल है दूर ।
ताहि लखत कोई संतजन, जार करै सब धूर ॥

चौपाई

जीव बुद्धिसों नाहिन चीन्हा । काल न चीन्हत मतिके हीना ॥
कबहूँ सुख कबहूँ दुख होई । काल जाल जानत नहि कोई ॥
मानस कह मनमाहिं बिचारी । निरालंब होय प्रभुहिं पुकारी ॥

कबहुँ कहै प्रभुने सब कीन्हा। कबहुँ कहत सब मोर अधीना॥
स्वारथ रूप सदा चित लावै। परमारथ कबहुँ नहिं भावै॥

साखी-कहै कबीर धर्मदास सों, तुम सुनियो चितलाय।
काल भेद नहिं जानहीं, मूरख रहे भुलाय॥

चौपाई

जो देखा सो काल पसारा। जो बिनसे सो काल अहारा॥
धर्मदास तुमचित थिर करहु। मनकी डगमग तब परिहरहू॥
भूत भविष्य वर्तमान जो कहिये। यहि बिधि तीनकाल निर्वहिये॥
भूत सबै है कालकी काया। भविष्य होय सोइ जीव कहाया॥
वर्तमान परमातम जानो। यहि विधितीनकाल पहिचानो॥
जोई भूत सोई वर्तमाना। सोई भविष्यत मर्मकर जाना॥
भूत भविष्यत और वर्तमाना। मनथिर भए सबै पहिचाना॥
शब्द मांहि हंसा निरबहई। मन बिच कर्म नामको गहई॥
मनके रूप समानी माया। सब संसार व्याप्त यह छाया॥
मन थिर कर परमातम जाना। यह विधि तत्त्व लेहुपहिचाना॥
काल जाल तैं तेही छूटै। काल विचारै ताहि न लूटै॥
यही भेद धर्मन सुन लीजै। शब्द माहिं बासा तुम कीजै॥
काल ज्ञान संसार बखाना। काल स्वरूप नहीं पहिचाना॥

साखी-इतना भेद सुन लीजिये, काल को ज्ञान बखान।
काल पाय कर होत है, हम सों फिर फिर ज्ञान॥

धर्मदास वचन चौपाई

धर्मदास तब पांयन परई। सतगुरु सों बिन्ती अनुसरई॥
जो तुम कही सोई परवाना। काल पाय कर फिर २ ज्ञाना॥
तुम प्रसाद मुक्ति फल पावा। यह भवसागर बहुर न आवा॥
हम सों ज्ञान कहा फिर होही। सोई बात कहो निज मोही॥

सद्‌गुरु वचन

तब साहिब अस कहिबे लीन्हा। तुम नहिं पाओ ज्ञानको चीन्हा॥
हम तो सत्यलोकके वासी। तहँ नहिं काल बसै अविनाशी॥
मैं जो कहा मृतलोकव्यवहारा। काल पाय सब होत औतारा॥
काल पाय बिनसे संसारा। कालै सब बिनास जग डारा॥
काल कर्म काहु नहिं जाना। जीव जन्तु सब काल समाना॥
कालहि पाय सृष्टि निर्माई। काल पाय फिर माहि समाई॥

साखी—काल पाय जग ऊपजो, काल पाय वर्त्ताय।
काल पाय सब विनसही, काल काल कहँ खाय॥

धर्मदास वचन—चौपाई

यह सुन धर्मदास हर्षाने। सद्‌गुरु रूप हिये पहिचाने॥
तुम साहिब मोहे कीन्ह निहाला। आपन जान कीन्ह प्रतिपाला॥
बिन्ती एक करत संकाई। हे सतगुरु मोहे भाख सुनाई॥
कालहिकी गति कहि समुझावा। अचरज बात मोर मन आवा॥
प्रथम पुरुषकी प्रथमहि काला। मोहि बतावहु भेद रसाला॥

सद्‌गुरु वचन

तब सतगुरु कहिबे अनुसारा। धर्मदास सुन शब्द हमारा॥
प्रथम हते जब शून्य स्वभाऊ। धर्मदास सुन शब्द निर्माऊ॥
शब्दते पुरुष शब्द निर्मावा। यही भेद बिरले जन पावा॥
जाकों कहिये शून्य स्वभाऊ। काल शून्य एकै समुझाऊ॥
काल भेद कोई नहिं जाना। धर्मदास तुम सुनियो ज्ञाना॥
शून्यहि मांहि शब्द उच्चारा। धर्मरायको भयो पसारा॥
प्रथमहि जिन्द रूप इकभयऊ। सत्तर युग सोवत चल गयऊ॥
तब साहिब मोहे आज्ञा दीन्हा। जिन्द जीवकहँ तुम नहिं चीन्हा॥
जिन्द जीव कहँ आन बुलाई। सत्तर युग उन सोय सिराई॥

तब हम जाय शब्द अस बोला । सोवत जिन्द नाहिं चित डोला ॥
का सोवत तोहि पुरुष बुलाई । नहिं जागहि तिहि नींद सुहाई ॥
तब हम तेहि जगावन लागे । जिन्द जाग परम अनुरागे ॥
जगे न नीन्द भर्म बहु आवा । तब हम एक शब्द उपजावा ॥
काल शब्द कहँ टेर पुकारा । सुनकर जिन्द भयो संचारा ॥
काल शब्द सुनजिन्द डराना । तबही आया चरण लिपटाना ॥
काल नाम सुन ऐसा भाई । काल नाम सुन भक्ति कराई ॥
धर्मदास सुन कालको भेदा । काल बिना नहिं करे निषेदा ॥
काल नयन भर देख न कोई । कालहि पढ़ पढ़ गये बिगोई ॥
वेद शास्त्र सुन पंडित कहाई । काल पुरुष सब जीव भर्माई ॥
साधू मिलकर भक्ति कमाई । जातैं काल फांस नहिं आई ॥
काल शब्द ना होतौ भाई । ता काहे को भक्ति कराई ॥
कालके डर तपसी तप साधा । इन्द्री पांच काल डर बांधा ॥
कालहिके डर योग जो करई । कालहि डरते दान जो भरई ॥
कालहि डर भाखे सत जाना । कालहि डर छोड़े अभिमाना ॥
सत्यहि वचन काल डरकहहीं । कालहि डरसे झूठ परिहरहीं ॥
ऐसा डर है कालहि केरा । धर्मदास तुम करहु न बेरा ॥

साखी—ऐसा डर है कालका, सुनहु हो धर्मदास ।
एक नाम कहँ जानके, निडर रहो सुखवास ॥

चौपाई

कालहि डर दुनियां सब बूड़ी । काहु न देखी कालकी मूड़ी ॥
तुम धर्मदास निडर हो रहहु । नाहिन काल झूठ परिहरहु ॥

छन्द—यह भांति पंथ चलाव जगमें हंस लोक पठाइबो ।
ज्ञान गम्य लखायकें फिर शब्दसार लखाइबो ॥
हृदय जेहि पर होय गुरुकी रहत गहन समावही ।
काल कष्ट निवारके सोई पुरुषलोक सिधावही ॥

सोरठा—आप सरीखा जान, ता कहँ शब्द लखाइयो।
धर्मदास लेव मान, यही सिखावन पुरुषको॥

इति श्रीग्रन्थ अमरमूल धर्मराय बाद कालको वर्णन।

पंचम विश्राम

धर्मदास वचन—चौपाई

धर्मदास आनंद समाना। विगसेउ कमल उदे जनु भाना॥
बहुत भांतिसों बिन्ती कीन्हा। मन वच कर्म चरणचित दीन्हा॥
पदरज लीन्हीं तृषा मिटाई। छूछी सीप स्वाती जिमि पाई॥
रंकहि निधी मिलगई जैसे। अहिमणि मिले मगन भय ऐसे॥
चरणामृत वह विधिसों लीन्हा। गुरु चरणनको मैं आधीना॥
अब प्रतीति मोर मन आई। निश्चय वचन मान तुव साँई॥
अबही जाय लोक मैं देखा। ज्ञान गम्यसों पायउ लेखा॥
भक्ति मुक्ति दोनों हम जाना। दया तुम्हार परी पहिचाना॥
जेपर दया तुम्हारी होई। ऐसे पदको पहुँचे सोई॥
हम जानकै मान उपदेशा। बिन सतगुरु नहिं मिटत अँदेशा॥
तुम सतगुरु और सब शिष्या। यही ज्ञान परगट हम देख्या॥
सतगुरु आप और सब वंशा। सत्य पुरुषको तुम निज अंशा॥
तुम्हरे बचन लोक पहिचाना। तुम्हरी दया परी अब जाना॥
यह मन बूझ शब्द है लोका। ज्ञान भयो मिट गये सब शोका॥
लोक अलोक एक कर जाना। तुम्हरे बचन सत्य हम जाना॥
अब मोरे जिव परचय आई। बिन जानै जानै बूड़ी दुनियाई॥
नहि बूड़ौ नाहीं उतराना। यहि पाया हम केवल ज्ञाना॥
एक बचन मैं बूझा साँई। बिन्ती करौं चरण चित लाई॥

तुम सतगुरु मोहिदिय उपदेशा। मैं हंसनसों कहौं सँदेशा ॥
यह तौ बात कही नहिं जाई। जब पावे तब ज्ञान समाई ॥
जब तुम दया करी हियमाहीं। तबहीं पाऊ नामकी छांहीं ॥
कहिये बचन मोर मन भावै। जातैं हंसा लोक सिधावै ॥

सद्गुरु वचन–चौपाई

तब साहिब अस कहिबे लीन्हा। सब कहँ देह शब्दका चीन्हा ॥
जो नहिं पाव शब्द सहदानी। तो कस करहु लोकपहचानी ॥
सब कहँ ज्ञान गम्य कर देहू। शब्द लखाय आपनकर लेहू ॥
प्रथमहि देहु पान परवाना। ता पीछे फिर ज्ञान लखाना ॥
समय जान सब कहौं बिचारी। यही भांति सब जिव निर्वारी ॥
साधुनकी सेवा चित लावै। सो जिव भवसागर नहिं आवै ॥
गुरुकी दया मान सिरलीन्हा। भाव सहित पूजातिन कीन्हा ॥
इतनौ भेद एक नहिं जानी। सो कैसे पुन शिष्य बखानी ॥
ज्ञानवन्त कहँ यह उपदेशा। मूरखसों जिन करहु संदेशा ॥
सार शब्द जाके घट होई। तिहि हंसा सम और न कोई ॥
धर्मदास तुम कहँ नहिं भारा। सबके तारन है करतारा ॥
यह उपदेश कहहु बहु भाँती। माने सोई हंस की जाती ॥
जो नहिं मानै कहा तुम्हारा। सो चल जैहै यम के द्वारा ॥
यमके हाथ परै सो आई। बहता जाय थाह नहिं पाई ॥

साखी–कहै कबीर धर्मदाससों, दीजो पान प्रवान।
यही हंस जो पावहीं, पहुँचे पद निर्वान ॥

धर्मदास वचन–चौपाई

हे स्वामी तुम्हरी बलिहारी। अब चौकाको कहौ बिचारी ॥
कवन शब्दसो आरति साजी। कवन शब्द सतगुरुकी पाँजी ॥

कवन शब्दसों नरियर मोरा । कवन शब्दसों तिनका तोरा ॥
कवन शब्दसों चौका करई । कवन शब्दसों दीपक बरई ॥
कवनै शब्द पान लिख दीन्हा । कवन शब्द प्रसाद जो लीन्हा ॥
कवन शब्द मिष्टान्न चढ़ावा । कवन शब्दसों छत्र तनावा ॥
कवन शब्द पनवारो साजा । धोती कवनै शब्द विराजा ॥
कवन शब्दसों चंदन दीजे । कवन शब्दसों पुहुप चढ़ीजे ॥
दल प्रसाद किहि शब्द बनाई । यही भेद गुरु कहु समुझाई ॥

सद्गुरु वचन

यहै भेद अब तोहिं बताऊँ । चौका साज सकलसमझाऊँ ॥
प्रथमहि तो चौका अनुसारा । सोई शब्द मैं कहौं पसारा ॥
सेत सिंहसन चौका चारी । कंचन थार आरती वारी ॥
तहाँ धनी जीव बैठे आई । लिखनी लिख बहुभाँति बनाई ॥
धर्मदास उठ बिन्ती कीन्हा । चन्द्र सूर्य दोइ साखी दीन्हा ॥
शब्द माहिं बहु भाँति समावा । कदली पत्र जो आन धरावा ॥
अमर शब्द उच्चार कराया । अमर प्रवान अमरभइ काया ॥
अमर प्रवान अमर कर जाना । अमर शब्द बिरले पहिचाना ॥
अमर शब्दका पावै भेदा । कहै कबीर प्रवान अच्छेदा ॥
एक बीज धरती कहँ दीन्हा । पान सुपारी नरियर कीन्हा ॥
सो प्रसाद संतन कहँ आई । सत्त सुकृत के लोक सिधाई ॥
तीन लोक सों भिन्न पसारा । बाहर भीतर शब्द पसारा ॥
दूजी दुर्मत चित सो मेटो । एकहि चीन्ह कबीरहि भेटो ॥
यहि शब्द मिष्टान्न चढ़ावा । कदली पत्र जो आन धरावा ॥
सवा शेर मिष्टान्न मँगावहु । सत्य पुरुष कहँ आनचढ़ावहु ॥
सत्य सुकृत कहँ आन चढ़ाई । दीन भाव कर बिन्ती लाई ॥

धर्मदास वचन

अर्ज एक अब सुनो हमारी। तुम गुरु लीन्हा जीव उबारी॥
शोध देख हम सकल शरीरू। पीरा मेटो बाप कबीरू॥
केते लाख चूक जो परई। किहि कारण नरिअर अनुसरई॥

सद्गुरु वचन

धर्मदास तुम सुनो ये बाणी। ताकर भेद कहौं परवानी॥
सवा लाख चूक जो परई। तिहि कारण नरिअर अनुसरई॥
बहुत भांति सों तत्त्व लगावे। मृत्यलोकमें बहुरि न आवे॥

सुमिरन नरिअर तिलकको

मृत्यु लोक यम को स्थाना। खैंच कबीर ने मारा बाना॥
बान मार जक्त यश लीन्हा। तिलक काढ़ धर्मन कहँ दीन्हा॥

साखी-पाक नारिअर मोरके, हंस उतारो पार।
कंचन कपूर मिलगए,साहिब जीवको करो उधार॥
खिरचा अचवन लेके, यकटक सुमरो ध्यान।
कहैं कबीर धर्मदाससों, सोहं शब्द प्रधान॥

सम्पूर्ण

चौपाई

तबही दीपक आन प्रकाशा। मनो सत्य लोक कियो बासा॥
अग्र शब्द का पावै भेदा। कहे कबीर तब जोत अछेदा॥
तबहि पानका लिखनी नीका। अग्र शब्दका पावे टीका॥
सत्यका अंक तहाँ लिख दीन्हा। मंत्र उचार एक तब कीन्हा॥
सुख सागर मोरो स्थाना। तहँवा सेत चढ़ाये पाना॥
सेत पानका अम्मर काया। सीपमांहि जिम स्वाति समाया॥
भर्मत पवन बिहरत संसारा। निर्मल पवन हंस रखवारा॥
तबहि तिनका वेग तुरावा। जन्म जन्मके पाप बहावा॥

सुम्रन तिनका तुरावेका

असन वसन मन कल्पना, देखो सर्वहि भूत ।
कहे कबीर सतगुरु मिले, मिथ्याके मुख थूँक ॥

सम्पूर्ण

चौपाई

तबै प्रवाना दीजौ जानी । मुक्ति होय हंसा पहिचानी ॥
दहिने छोड़ धर्म स्थाना । बांये दुर्गदानी को थाना ॥
आगे चित्र गुपित्र कौ भारा । नाम सुनायके हंस उबारा ॥
टूटे घाट अठासी कोरी । हंसा उतरै नामकी डोरी ॥

साखी-कितरे वृक्ष कितरै पक्षी, कहां विलमेऊ आय ।
कहैं कबीर जो गुरु मिले, हंस देहि पहुँचाय ॥

चौपाई

दे परवाना हंस बचावा । ज्ञान परम पद घटहि समावा ॥
घट की परिचय कोई पाया । जाते जीत चले यमराया ॥
तब स्नान का शब्द सुनावा । विना शब्द पानी नहिं पावा ॥
बिना शब्द जो पीवे पानी । मानहु मदिरा रुधिर समानी ॥

सुम्रन जल पीवनेका

आगम सरोवर विमल जल, हंसा पिये अघाय ।
काया कंचन मन मगन, कर्म भर्म मिटजाय ॥

सुम्रन स्नानका

सत्य सुकृत के नीर मँगावा । धनीके बालक स्नान करावा ॥
कर स्नान पुनि शीश नवावा । साहिबके चरणन चित लावा ॥
कहैं कबीर सुनौ धर्मदासा । आदि अंत इक ज्योति निवासा ॥

साखी-आदि अंत इक ज्योति है, अमरनाम स्थीर ।
चौदह भुवन नव खण्डमें, एकहि सत्य कबीर ॥

सम्पूर्ण

सुभ्रन प्रसाद मालूम करनेका

निर्भय पदका चौका दीन्हा। शील संतोष ले मज्जन कीन्हा॥
प्रेम प्रतीत परम उजियारा। सत्य सुकृत है जेवनहारा॥
सत्य सुकृत की फिरी दुहाई। जल भयो पाकसंतन सुखदाई॥
सब संतन मिल कियो प्रसादा। जेवैं कर्तार जिवावैं धर्मदासा॥
सब संतन प्रसाद जब कीन्हा। मुक्ति अभयपद कहँ तब चीन्हा॥

साखी—कहै कबीर धर्मदाससों, आरतिको परमान।
ये विधि सेवक जो करे, पावै पद निर्वान॥

धर्मराज वचन चौपाई

धर्मदास विनती कर जोरी। स्वामी सुनिये विनती मोरी॥
कवन वस्तु आरति महँ धरई। कवन शब्द ले सेवा करई॥
सो सब मोहिं कहौ समुझाई। आरति विधि मैं करौं बनाई॥

सद्गुरु वचन

प्रथमहि मंदिर सेत सम्हारा। सुर्त निर्त भक्त चित धारा॥
कञ्चन केर थार बनवाओ। तामें मोती आन धराओ॥
मुक्ता तो अन बेधे होई। ऐसी विधि प्रकार है सोई॥
झारी एक कञ्चनकी होई। ता महँ दाल प्रसाद करसोई॥
नरियर इकसत एक प्रवाना। सवा तीन मन लै मिष्ठाना॥
पाटम्बर धोती तहँ चहिये। दीपमालिका बहुतक लहिये॥
नई वेद तहँ आन धराई। कञ्चन और कपूर मगाई॥
जरी केर तहां छत्र तनावा। पान सहस्र द्वादश बनवावा॥
लौंग सुपारी लायची लीजै। मेवा अष्ट भांति धर दीजै॥
ता पीछे प्रसाद सहिदानी। सुखपूजा साधन कर जानी॥
आरति फल तबही जिव पावै। सवा सेर महाकंद मँगावैं॥
सोना केर कलस धरवाई। तहां प्रवाना लिखे बनाई॥

परमाना बालक कहँ दीजै । हंस रूप ता कहँ कर लीजै ॥
ऐसी आरती धरे धर्मदासू । सोई पावै लोक निवासू ॥
मनमें बहु आनन्द बढ़ाई । आरत फल सोई पुन पाई ॥
अपने स्वार्थ आरती करई । भवसागर तैं कैसे तरई ॥

धर्मदास वचन

धर्मदास बिनती अनुसारा । तुम सतगुरु मोरे करतारा ॥
ऐसी विधि आरति नहिं करई । सो जिव किम भवसागर तरई॥
कलि में जीव दरिद्री होई । द्रव्य बिना किमि भक्तिसँजोई॥
जिहि विधि होय हंस मुक्ताऊ । सो मोहे स्वामी भेद बताऊ ॥

सद्गुरु वचन

तब साहिब अस कहिबे लीन्हा । यही मती हम तुम कहँ दीन्हा॥
एतिक विधि जापै नहिं होई । सहज भाव आरति करै सोई॥
सवा सेर मिष्टान्न मँगावै । नरियर इक तहँ आन चढ़ावै॥
सवा सौ पान कहैं परवाना । लौंग लायची एही बँधाना ॥
धोती एक आन तहँ धरई । सतगुरु केर निछावर करई ॥
साधन सों वह प्रेम बढ़ावै । सत्य रूप होय ज्ञान सुनावै ॥
ज्ञान गम्य कर शब्द बुझावै । सन्तन सों बहु प्रेम बढ़ावै ॥
पांचों पद ताही महँ लावै । साधन की सेवा मन लावै ॥
ऐसी बिधि सों आरति करै । सो प्राणी भवसागर तरै ॥

धर्मदास वचन

जो इतना नहिं करै कडिहारा । ताको मोसो कहो विचारा ॥
हे साहिब मोहे कहो पुकारी । बन्दी छोड़ जाउँ बलिहारी ॥

सद्गुरु वचन

जो इतना नाहीं बन आवै । सो कडिहार पार किमि पावै॥
बारह आरति जो नहिं करै । दो आरति सेवाचित धरै ॥

फागुन और भादों परवाना। दो आरति नहिं छोड़ सुजाना॥
साधन को परवाना देई। वर्ष रोज के कर्म नसाई॥

साखी–पान प्रवाना पावही, सतगुरु महिमा दान।
तबही हंसा सत्य है, और झूठ सब ज्ञान॥

चौपाई

धर्मदास मैं तुमहिं सुनाऊं। आरति भेद ज्ञान समझाऊं॥
अक्षर सार आरती सोई। बिन अक्षर सब गए बिगोई॥
अक्षर भेद जान परसंगा। ताके काल रहे नहिं संगा॥
आरति बहुत भांति सो करई। अक्षर भेद हिये नहिं धरई॥

साखी–अक्षर भेद जाने नहीं, बातें कहै बनाय।
ताको कहो न मानिये, आपन जीव नशाय॥

चौपाई

आरति भक्ति औ अक्षर सारा। और सकल सब झूठ पसारा॥
जा कहँ अक्षर परिचय होई। आरति फल पावत है सोई॥
मूल शब्द घट मांहि विराजे। शून्य शिखर अक्षर धुन साजे॥
ताकी महिमा तुले न कोई। ऐसा साधू विरला होई॥
सो कडिहार जो अक्षर जाना। और गुरू सब झूठ बखाना॥
गुरू सोई जो अक्षर जाना। बिन अक्षर मूरखसम जाना॥
कडिहार वही जीवन कहँ तारे। अक्षर बिन जिव नरकहि डारे॥
जो गुरु दगा शिष्य कहँ देता। नरक परे गुरु शिष्य समेता॥
अक्षर बिन गुरु आरति करई। धर्मराय के फन्दा परई॥
इतना भेद न जानत प्रानी। पेटके कारण ज्ञान बखानी॥
जैसे ठगिया करे ठगिहारी। जैसे जानहु सो कडिहारी॥
अक्षर की परिचय नहिं पावे। आपहि आप जो गुरू कहावे॥

छन्द–कडिहार सोई सांच है, जिन शब्द सों परिचय करी ।
सूर्त निर्त समेट के सोई, नाम निह अक्षर धरी ॥
रहन शूरे ज्ञान पूरे, पंथ परमारथ लही ।
दुष्ट मित्र समान यकचित, दुतिया भाव न चित गही ॥
सोरठा–सद्गुरु सिन्धु कबीर, उन पटतर अब को लहै ।
सुनियो धर्मनि धीर, सरिता सब कडिहार हैं ॥
इति श्रीग्रंथ अमरमूल चौका बंधन वर्णन

षष्ठ विश्राम

धर्मदास वचन–चौपाई

यह सुन धर्मदास हर्षाना । जिमि पंकज विकसे लखि भाना ॥
हे सद्गुरु मोपर दया कीन्हा । जन्म स्वार्थ अब मैंने चीन्हा ॥
धर्मदास कहैं कर जोरी । स्वामी सुनिये विन्ती मोरी ॥
यक संशय मोरे घट मांही । कौनउ विधि सों छूटत नाहीं ॥
मृतलोक में पाखंड धर्मा । कैसे जीव होय निह भर्मा ॥
तुम सतगुरु निजज्ञान सुनाया । शिष्य पाखण्ड तजै नहिं माया ॥
सो मोहे सतगुरु भेद बताओ । तासो जीव होय मुक्ताओ ॥

सद्गुरु वचन

धर्मदास तुम सुनो विचारी । पाखण्डी गति सब निर्वारी ॥
सत्य शब्द घट माहिं समावे । ता लग सब पाखंड कहावैं ॥
तुम जानतहो शब्द प्रवाना । विना ज्ञान नहिं शब्द समाना ॥
पाखण्ड जिव मुक्ति न होई । किती उपाय करे पुनि सोई ॥
पाखण्ड जाके हृदये होई । सोई हंसा कर मुक्ति कर बिगोई ॥
जप तप ज्ञान बहुत कर आना । नेम धर्म बहुतक लिपटाना ॥
इतना कष्ट कीन्ह अधिकाई । तौ पाखण्ड भेट नहिं जाई ॥

ज्ञान शब्द घट मांहि समाना। सो पावेगा पद निर्वाना॥
माथे तिलक गले जयमाला। हिय पाखंड न मिले गुपाला॥

साखी—कहैं कबीर बिचारके, सुनियो हो धर्मदास।
सत्य शब्द जिहि घट बसे, तहँ पाखंड विनास॥

चौपाई

धर्मदास तुम सत्त के जानहु। पाखण्ड भर्म हृदयमत आनहु॥
जाको मन पाखंड सों राता। सोई नरक कहँ निश्चय जाता॥
पाखंड हिये भक्ति ना होई। सत्य वचन मानो घट सोई॥
दान देय औ पूजा करई। पाखंड धर्म जीव नहिं तरई॥
योग यज्ञ तीरथ फिर आवे। पाखंडी जिव ठौर न पावे॥
धर्मदास निश्चय सुन लीजे। सत्य शब्द में वासा कीजे॥

साखी—धर्मदास सुन लीजिये, सत्य शब्द उपदेश।
विना सत्य पहुँचे नहीं, सत्य लोक निज देश॥

चौपाई

सत्य शब्द सतपुरुषहि जानो। नाम बिना सब झूठ बखानो॥
नाम छोड़ नहिं औरहि जानो। निर्गुण सर्गुण एकहि मानो॥
निर्गुण सर्गुणतें नाम नियारा। जो चीन्हें सो हंस हमारा॥
जहँ देखे तहँ शब्द स्वरूपा। बोलन हारको अचरण रूपा॥
अचरज बात कहन की नाहीं। बिन सतगुरु नहिं पावे थाहीं॥

साखी—निह अक्षर निज पावही, मिटि हैं सकल अँदेश।
निह अक्षर जाने बिना, घटही में परदेश॥

धर्मदास वचन—चौपाई

धर्मदास बिनती अनुसारा। अर्ज एक सुनिये करतारा॥
सकल भेद गुरु मोहि बतावा। बिना ज्ञान भेद नहिं पावा॥

ज्ञान रूप कहे सों कहिये । ज्ञान भेद कैसे के लहिये ॥
बिन सतगुरु को भेद बतावे । किहिविधि मनकी संशय जावे ॥

सद्गुरु वचन

ज्ञान शब्द सत गुरुसों पावे । विन सतगुरु को भेद बतावे ॥
ज्ञान नाम है बीज स्वरूपा । विना ज्ञान सो यह को रूपा ॥
ज्ञान बीज प्रथम अनुसारा । ज्ञान बीजतें सकल पसारा ॥
ज्ञान बीज सों द्वीप निर्मांया । अमी अंकूर ज्ञान उपजाया ॥
प्रथमहि तहां पुरुष को मूला । जिहिं तें भये सकल स्थूला ॥
सोलह सुत जबभय उतपानी । ज्ञान बीज तैं सबकी खानी ॥
तुम सहज धर्मबल जोरा । धर्मराय को माथा तोरा ॥
सुतंनाम ज्ञानी अनुसारा । धर्मलोक तैं दीन्ह निकारा ॥
विषम सरोवर आन विराजा । अति अहँकार महाबल गाजा ॥
भाँति भाँतिके बाजन बाजा । रंग छत्तीसों होत अवाजा ॥
पांच तत्त्व गुण तीन बनाया । तातें सकल सृष्टि निर्मांया ॥
जात पांच यहि तें उतपानी । ब्राह्मण क्षत्री शूद्र बखानी ॥
ब्रह्मासों जब जाति पसारा । चार वर्ण कीन्हें निरधारा ॥
मुखसों ब्राह्मण कीन्ह उचारा । भुज सों क्षत्री कीन्ह पसारा ॥
जंघसों वैश्य करी उतपानी । पांव सो शूद्र कीन्ह सहिदानी ॥
चार वर्ण को सकल पसारा । वर्तमान वर्तैं संसारा ॥
ब्राह्मण धर्म ब्रह्मको जाना । तातैं ब्राह्मण वेद बखाना ॥
ब्राह्मण जानौ शूद्र समाना । बिन जाने बूड़े अभिमाना ॥
गायत्री जप हैं दिनराती । समुझत नहीं ज्ञानकी पाँती ॥
गायत्री जप कर अभिमाना । हमसम और कोइ नहिं आना ॥
संध्या तर्पण औ षट कर्मा । वेद विचार साध शुचि धर्मा ॥
सुमति विचारकै ज्ञान बखानै । धर्म विधान कथा बहु आने ॥

पिण्डा पार तर्पण करि दीन्हा। आपन मन अहंकार बड़ कीन्हा॥
पित्र भक्ति कीन्ही ज्योनारा। मन मैं कीन्ह बहुत अहंकारा॥
हम तो पित्र भक्ति लवलाई। हम सम भक्त और नहिं भाई॥
हम सम नाहिं कोइ कुलीना। पित्र भक्ति बहुतक लवलीना॥
जेंवहि ब्राह्मण पुण्य बड़ होई। कुटुम समान और नहिं कोई॥
वेद शास्त्र पढ़ ज्ञान जो जाना। भाषा ज्ञान सुने नहिं काना॥
साधु संत जो द्वारे आई। तिनकहँ देखै बहुत रिसआई॥
इन तो नष्ट कर्म बढ कीन्हा। मूंड़ मुड़ायके टोपी दीन्हा॥
जाति पांतिकी लज्जा त्यागी। निस दिन फिरहिं ब्रह्म अनुरागी॥
तातें इनहिं न मानत कोई। पेटके कारण जाति बिगोई॥
जाति समान न और बिचारा। जातें ब्राह्मण जाति सम्हारा॥
यह सब मत ब्राह्मणने कीन्हा। जातैं सृष्टि कर्ममें दीन्हा॥
जिन प्रभु रचा सकल संसारा। तिनहि बिसार बूड अहंकारा॥
प्रभुहि छोड़ अन्ल चित बासी। जन्म अनेक फिरहिं चौरासी॥
ब्राह्मण प्रभुकी भक्ति न जानी। ब्रह्मरूप नाहिन पहिचानी॥
मुनिवर स्मृति पढके राता। ज्ञान हीन मिथ्या मद माता॥
ब्राह्मण तो ऐसहि चलि गएऊ। ब्रह्म धर्म काहू नहिं गहेऊ॥

साखी–ब्रह्म भेद जानैं नहीं, बहुत करै अभिमान।
तातें ब्राह्मण बूड़हीं, कहैं कबीर बखान॥

चौपाई

क्षत्री धर्म सुनौ व्यवहारा। गौ ब्राह्मण त्रियको रखवारा॥
गाय मार दैत्यन सब खाई। क्षत्री धर्म सबै नस जाई॥
ब्राह्मण से भरवावत पानी। क्षत्री धर्म कहाँ रहु जानी॥
आनकी त्रिया आन घर जाई। द्रव्य आन को आन लुटाई॥
न्यायहु पै ठाढा नहिं होई। क्षत्री धर्म सहज ही खोई॥

धर्म न चल न गुरुकहँ माने । अपने मन महँ ज्ञान बखाने ॥
जो गुरु मिलै तौ ज्ञान लखावै । बहुरि न योनि संकट आवै ॥
एक नाम को करै नवेरा । चारों वर्ण तासु के चेरा ॥
एक धर्म कहँ बिनवै प्रानी । चार वर्ण साधन कहँ जानी ॥
साधुन की सेवा नहिं करई । बहु अभिमान हिये में धरई ॥

साखी–भक्त रूप चीन्हत नहीं, चाल चलै कछु आन ।
क्षत्री गए अभिमानमें कहैं कबीर निदान ॥

चौपाई

तातें परसराम औतारा । उन क्षत्रिनको कीन्ह सँहारा ॥
बारन बूढ़न के भए काला । क्षत्री मार विप्र प्रतिपाला ॥
मूर्ख लोग सब करें बखाना । सत्य भक्ति परचित नहिं आना ॥
कोटिन हत्या क्षत्री करई । तिनकी लोग बड़ाई धरई ॥
क्षत्री धर्म को होय निवाहा । तौ नहिं छोड़ै कालको चाहा ॥
धर्मराय तिन करै संहारा । जारे वार करै जर छारा ॥
क्षत्री सोइ क्षमा जिहिं आवै । परजा दुखी आप दुख पावै ॥
वैश्य धर्म अब वेद बखाने । विष्णु जान मन और न काने ॥
भूखा देख दया चित धरई । वैश्य धर्म व्यवहारहि करई ॥
तीरथ व्रत करै विधि नाना । प्रभुकी भक्ति नहीं चित आना ॥
जैनी जीव करै प्रतिपाला । जैननामगत आहि रिशाला ॥
पानी छान पिये दिन राती । नहिं ज्योनार करै निशिपांती ॥
हरिप्रतीत मन माहिन आनै । सूखे काठ सों मन चितठानै ॥
भक्ति रूप न्यारो धर्मदासू । जासौं मिटै कालकी फांसू ॥
जीव श्वास ना धर्म चलावै । नाटक चेटक ज्ञान बतावै ॥
लिंग पुजावै घर घर जाई । कामिनि सों बहु प्रेम बढ़ाई ॥
कामिनी काम न चितसौं छूटे । यहि विधि घर यम निशिदिन लूटे ॥

जप तप माया कीन्ह खुआरा । ऐसे जीव अटक यमद्वारा ॥
पारसनाथ पूजा मन लाई । बहुत भाँति सों पूजहि जाई ॥
पारसनाथ परम गुरु ज्ञानी । ताकी नहिं पावैं सहदानी ॥
ताके कर्म काट सब जाई । सतगुरु चरण रहै लवलाई ॥
जब सतगुरु की दाया होई । अक्षर भेद पाय नहिं सोई ॥
ब्राह्मण क्षत्री वैश्य बखाना । अक्षर भेद नहीं पहिचाना ॥

साखी–अक्षर भेद जानैं नहीं, करे बहुत अभिमान ।
वैश्य सबै वे नष्ट हैं, सत्य वचन परमान ॥

चौपाई

चार वर्णमें शूद्र अधीना । सेवा कर सबसों लवलीना ॥
इतनी भक्ति सतगुरु की पाई । चार वर्णमहँ सो अधिकाई ॥
ब्राह्मणकी सेवा अनुसारैं । काम क्रोध औ लोभ निवारैं ॥
क्षत्री सों बहु करै मिताई । नित नये प्रेमसहित अधिकाई ॥
वैश्य धर्महीं विधि कर पूजे । सत्य धर्म दाया चित कीजे ॥
ऐसे शूद्रहि ब्रह्म बखाना । ब्रह्मलोक में सेवा माना ॥
कलियुग शूद्र धर्म अधिकारा । तीन धर्म को भयो सँहारा ॥
धन्य शूद्र जो सेवा करई । गुरुके चरण हृदय महँ धरई ॥

साखी–यह तो करनी शूद्रकी, सुनियो हो धर्मदास ।
सतगुरुके चरण जो सेवई, सत्य लोक महँ वास ॥

चौपाई

धर्मदास तुम शूद्र औतारा । जाते सतगुरु भक्ति चित धारा ॥
तुम्हरे पीछे ब्राह्मण तरि हैं । तुम्हरे पीछे क्षत्रि उबरि हैं ॥
चारों वर्ण मुक्ति घर जैहैं । जो तुम्हरो चरणोदक लैहैं ॥
कबहुँ न जल आवैं तेई । मुक्ति पदारथ पावें जेई ॥

साखी–जो प्राणी जन्मत भये, शूद्र सकल संसार ।
कह कबीर जब बाचि हैं, करिहैं ब्रह्म विचार ॥

चौपाई

यह तुम सुनहु वर्णनका लेखा । मुक्ति भेद करहु विवेका ॥
तुम्हरे शिष्य शब्द जो पावैं । बिना शब्द नहिं शिष्य कहावैं ॥
शब्द भेद जो पावैं अंगा । ताको काल नहीं परसंगा ॥
बिन अक्षर सबकहँ दुख होई । येही विधि सब जाय बिगोई ॥
और सकल यमको द्वारा । तिनको धर्मराय जो मारा ॥

धर्मदास वचन

धर्मदास विन्ती कर जोरी । स्वामी सुनियो विनती मोरी ॥
तुम्ही दयाल हो अन्तर्यामी । करहु कृपा अब मोपर स्वामी ॥
तुम्हरे वचन मुक्ति हम पाई । हमरे वंश कस मुक्ति न आई ॥

सद्‌गुरु वचन

तब कबीर जो कहिबे लीन्हा । अब मैं कहौं वंशकर चीन्हा ॥
जिहि विधि मुक्ति होय रे भाई । सब अब तुम्हैं कहौं समुझाई ॥
प्रथमहि विधि वंश ज्ञान मन लावै । सहज समाधि परम पद पावै ॥
निर्मोही हो जगसों रहई । मोह प्रीति मन हर्ष न करई ॥
जो मानै तौ अति भल जाना । नहिं मानै तौ समता ज्ञाना ॥
जो कोइ नाम कबीरहि लेही । तिनसो कछू न अन्तर देही ॥
आपा छोड़ नाम लव लावै । देह छोड़ सतलोक सिधावै ॥
जो मनमें करि है अहँकारा । निश्चय बूड़ै सब परिवारा ॥
सत्य भक्ति सत्यही मन लावै । आप तरै जीवन मुक्तावै ॥
जो कोई माया आन चढ़ाई । साधुन कहँ सब देय खवाई ॥
सत्य वचन सबही सों भाषै । सत्यनाम मनमें अभिलाषै ॥
कबहुँ न क्रोध कर मनमांही । जो बोलै सो नामकी छांही ॥

ज्ञान विचारे शब्द सुनावै। सब जीवन कहँ लोक पठावै ॥
तुम्हरे वंश जो आगे होई। तिनके गर्व बहुँत मन सोई ॥
गर्वके किये भक्ति नहिं होई। बिना भक्ति सब जाँय बिगोई ॥
सात पिढ़ी लग गर्व गुमाना। आठै पिढ़ी भक्ति परवाना ॥
पावै सार शब्द परवाना। तब पुनि पावै लोक ठिकाना ॥
सात बाल जो तुम्हरे होई। तब लग रहे अभिमान समोई ॥
शब्द पेल के करहिं धिगाई। पंथहि मेट अपंथ चलाई ॥
आठे वंश तबै औतारा। तिनसों होय पन्थ उजियारा ॥
वे गुरु आय करैं संसारा। तीन लोकमहँ बास पसारा ॥
स्वर्ग माहि नामी जिहि आही। धर्मराय तिनकी सुधि पाहीं ॥
तब अपना वह दूत पठाहीं। बहुतक छल करहै तिनपाही ॥
सार शब्द सों निकट न जाई। भागे दूत रहै पछताई ॥
वंश तुम्हार केर यह लेखा। बिना नाम नहिं होय विवेका ॥
जा कहँ अमर नाम मिलगयऊ। सो प्राणी निहसंशय भयऊ ॥
अमरशब्द जो घट परकाशा। तहँवा है हमरो निज वासा ॥

छन्द–जो अमरनाम न पाय है, सो अध है पछताय।
जन्म जन्मत कष्ट बहुतक, जरा मरन समाय हो ॥
हंस वंशन हंस पंगत, कही सब दरसायके।
यह रहन रहै सो लोक पहुँचै, कहैं कबीर समझायके ॥

सोरठा–दीन्ह जक्त को राज, धर्मन तुम्हरे वंश कहँ।
करेहि जीव को काज, सत्यनाम समझायके ॥

इति श्रीग्रंथ अमरमूल चारवर्णवर्णन वंशमहिमावर्णन

सप्तमविश्राम

धर्मदास बचन चौपाई

धर्मदास कहे कर जोरी। स्वामी सुनये विन्ती मोरी ॥
जो तुम कही सोई परवाना। गुरुके वचन सत्य हम जाना ॥
हम जानी पुरुष रु गुरु माहीं। तुमहिं पुरुष कुछ अंतर नाहीं ॥
हमरे दिल यह पारख आई। तुम्हरी दया हंस मुक्ताई ॥
हमरे बालक तुम्हरे पाछे। तुम्हरी दया नाम मिल आछे ॥

सद्‌गुरु वचन

तब साहिब अस कहि समुझाई। वंश तुम्हार मुक्ति घर जाई ॥
जो कोइ बालक होय तुम्हारा। तिनसों भक्ति होय उजियारा ॥
पंथ माहिं जे बालक आवैं। ते तुम वंशन माथ नवावैं ॥
तिनसों भक्ति मर्यादा होई। सार शब्द चलि है निज सोई ॥
नाँद केरि बालक जो होई। तिनको मुक्ति नाम सो सोई ॥
नाँदके बालक शब्दहिं जाना। भवसागर तज लोक पयाना ॥
बिन्दके बाल रहें अरुझाई। मान गुमान और प्रभुताई ॥
सत्य शब्द जिहि बालक जानी। सोई पावै लोक सहिदानी ॥
जेहो बाल प्रवाना पावा। तिन कहँ जानहु वंश स्वभावा ॥

साखी—हमरे बालक नामके, और सकल सब झूठ।
सत्य शब्द कहँ जानही, काल गहे नहिं खूंट ॥

चौपाई

धर्मदास सुन शब्द पसारा। बिना शब्द नहिं उतरहि पारा ॥
बिना शब्द तुम मुक्ति न पाओ। केतो ज्ञान गम्य फैलाओ ॥
वंश हमार शब्द निज जाना। बिना शब्द नहि वंशहि माना ॥
धर्मदास निर्मोह हिय गेहू। वंशकी चिन्ता छांड़ तुम देहू ॥
तुम तो भयऊ शब्द समाना। यही बचन तुम चित नहिं आना ॥

तुमहि कही अस बस्तु गुसांई। मैं बूझों यह संशय जाई॥
तुम्हरी दया आज जो पाऊं। तौ सब बालक लोक पठाऊं॥

सद्गुरु वचन

तब साहिब अस कहि समुझाई। बिना नाम नहिं लोक पठाई॥
नाँद बिन्दके बालक दोई। बिना नाम कोई मुक्ति न होई॥
के तौ पढ़ै गुणै औ गावै। बिना नाम भव भटका खावै॥
हमरे माया मोह न होई। सब संसार सत्य कर सोई॥
धर्मदास तुम बड़े हो ज्ञानी। यह संशय कस मन महँ आनी॥
गुरु को भार सबन कर होई। तुम मनमें पछताव न कोई॥
तारन तरन सत्य हम सोई। बिन सतगुरु बूड़ा सब कोई॥
सतगुरु तौ सब सृष्टि उबारा। तुम बालक अब कौन है भारा॥
तुम जिन चिन्तामनमहँ करहू। सद्गुरु नाम हृदय महँ धरहू॥
एक काल आवे जब भाई। सबै सृष्टि यह लोक सिधाई॥
जहँ लग जीव जन्तु सब कहिये। तहँ लग सब सद्गुरु महँ लहिये॥
सबै भार सद्गुरुके कांधे। पार लगावहिं यम नहिं बांधे॥
यमका अमल छूट जब जाई। सद्गुरु शरण जीव जब आई॥

साखी—कहै कबीर बिचारकै, सुनियो हो धर्मदास।
अमरमूल जो जान है, ताको सब परकाश॥

धर्मदास वचन—चौपाई

धर्मदास बिनवैं कर जोरी। स्वामी सुनिये बिनती मोरी॥
तुम्हरे कहे जगत तर जाई। कौन मतासों लोक सिधाई॥
ज्ञान दिव्य जो घट नहिं होई। सोइ कवन बिधि लोकसमोई॥
तब मैं जानो ज्ञान तुम्हारा। सकल सृष्टिको होय उबारा॥

कहै कबीर तबै समुझाई। यह संशय तुम कवन कराई ॥
तुम तौ आपन हंस उबारो। जीवन शोच कहा निर्धारो ॥
सतगुरु लीन्ह जगतको भारा। तेई करि है सृष्टि उबारा ॥
जापर गुरु चितवैं चितलाई। ताकर हंस बिगोय न जाई ॥
जब यह सृष्टि कीन्ह परकाशा। हंस अनंत सतलोक निवासा॥
अबहूँ अनंत लोक कहँ जाई। सत्यलोक महँ जाय समाई ॥
तुमको संशय कछू न भाई। आपन हंस करो मुक्ताई ॥

साखी—सतगुरु तारनहार हैं, कहैं कबीर बिचार।
तुम क्या शंका करत हौ, आपन करौ उबार ॥

धर्मदास वचन—चौपाई

धर्मदास विनवे कर जोरी। विनती साहिब सुनिये मोरी ॥
तुम शिर आहि जक्तको भारा। सब जीवन को करो उबारा ॥
हमको नाहिं गुरुवाई दीजे। आपन भार आप शिर लीजे॥

सद्गुरु वचन

तब सतगुरु अस बचन उचारा। तुम कहँ दीन्ह जक्तको भारा ॥
तुम्हरे मुहर चले संसारा। अक्षर अक्षर करै पुकारा ॥
तुम्हरे कहे खोज जो करई। अक्षर पाय हंस निस्तरई ॥
जो नहिं मानै कहा तुम्हारा। सो चल जैहैं यमके द्वारा ॥
धर्मदास बिनती अनुसारी। हे सतगुरु तुम्हरी बलिहारी ॥
तुम तो सत्य लोकके वासी। किहि कारन आये अविनासी॥
मृत्यु लोक मैं कवनै काजा। धर्मराय बड़ पापी राजा ॥
तहँवा कवन काज पगुधारा। सो मोहिं स्वामी कहो विचारा॥
तुम साहब सत पुरुष कहाए। मृत्यु लोक में काहे आए ॥

सद्गुरु वचन

तब साहिब बोले बिहसाई । अब यह ज्ञान सुनो मन लाई॥
जब नहिं हते शून्य वे शून्या । तब नहिं हते पाप औ पुन्या॥
तब नहिं धरती गगन अकाशा । मेरु मन्दर नाहीं कैलाशा ॥
तब नहिं चन्द्र सूर्य औतारा । तब नहिं शेष सकल विस्तारा॥
तब नहिं इन्द्र कुबेर समोई । वायु वरुण तहँवां नहिं कोई ॥
सात वार पन्द्रह तिथि नाहीं । आदि अंत नहिं कालकी छाहीं॥
तब नहिं ब्रह्मा विष्णु महेशा । आदि भवानी गौरि गणेशा॥
आदि पुरुष तब हते अकेला । उनके संग हता नहिं चेला ॥
आप पुरुष अस कीन्हो साजा । शब्दहि माहि लोक उपराजा॥
प्रथमहि शब्द सुर्त अनुसारा । तेहि पीछे सब द्वीप सवाँरा ॥
तेहि पीछे पुन मूल बनावा । तेहि पीछे सोहं उपजावा ॥
ता पीछे अचिन्त जो कीन्हा । ते पीछे अक्षर रच लीन्हा ॥
ता पीछे कूर्महि निर्मयऊ । ताहि भार पृथ्वीको दयऊ ॥
तब जल रंग सूर्त इस भाखा । सप्त पातालके नीचे राखा ॥
जिहितें भयो जलको विस्तारा । सकल सृष्टि को भयो पसारा॥
तिहि तें तेज तत्त्व अनुसारा । जेहिं गुण तें काल औतारा ॥
पांच तत्त्वतें सब निर्मावा ।तीनों गुण तिहि माहिं समावा॥
तीनों गुण स्वरूपके धामा । ब्रह्मा विष्णु महेश्वर नामा ॥
रज गुण तैं ब्रह्मा उतपानी । सतगुरु भाव विष्णु कर जानी॥
तमगुण शिव संहार पसारा । इतने भयो सकल संसारा ॥
तेजके गुणहि काल उतपानी । तासों भये जीव दुखदानी ॥
तातैं पुरुष दया चित आई । हंसन कारण मोहिं पठाई ॥
यातैं मृत्यु लोकहि आए । धर्मदास तुम दर्शन पाए ॥
तुम जीवनके बन्द छुड़ाये । सुमरन सत्य नाम समुझाये ॥

तुम्हरे हाथ सृष्टि तरजाई । सार शब्द हम तुम्हें लखाई ॥
या कारण संसारहिं आये । नाम पान सों हंस बचाये ॥
जो तुम कहौ कहा अस कीन्हा । आज्ञा मान पुरुषकी लीना ॥
पुरुष शब्द तें जीव उबारा । तुम कहँ कवन बात कर भारा॥
यह चरित्र कछु कहा न जाई । अचरज खेल पुरुष निर्माई ॥
आपहि पुरुष आपही काला । आपहि काल कीन्ह वे हाला॥
आपहि सकल सृष्टि निर्माई । आपहि न्याव करै सब कोई॥
आपहि कर्म कुकर्म बखानै । आपहि आपन आप पहिचानै॥
यही ज्ञान धर्मन सुन लेहू । इत उन चित जप मत देहू ॥
जिमि बालक मंदिरहि सवाँरा । आपहि भेंट आपहि हारा ॥
माता सों तब रुदन कराई । मंदिर अब मम देहु बनाई ॥
एही खेल बिधाता कीन्हा । यही मता कोई बिरिले चीन्हा॥
धर्मदास तुम सत्यहि मानो । हमरो बचन झूठ जिन जानो॥
यह चरित्र मैं तुम्हें सुनावा । लीला पुरुष केर समुझावा ॥
आपहि पुरुष आपहि नारी । आपहि काम विषय अधिकारी॥
आपहि सृष्टि कीन्ह उतपानी । आपहि कर्म धर्म लपटानी ॥
कर्म भर्म आपहि उपजाई । आपहि स्तुति कीन्ह बड़ाई ॥
आपहि निंदक आपहि ज्ञानी । आपहि धर्म अधर्म बखानी ॥
आपहि अपनी स्तुति करई । आपहि मूर्ख चतुरता धरई ॥
आप कुलीन आपहि अकुलीना । आप धनाढ्य आपही दीना॥
सतकुल आपहि असत बनाया । आपहि सत्य असत्य समाया॥
यह तो भेद पाय है सोई । सतगुरु मिले जाहि कहिं होई॥
येही भेद धर्मनि लेव जानी । निर्मल जलगंगा सम मानी ॥
यहै ज्ञान मैं तुम्हैं सुनावा । बिरला जन बूझै यह भावा ॥
यही बात गुप्त तुम राखहु । हमरी बात अंत जिन भाखहु॥

जो कोइ शब्दका खोजी होई। ता कहँ भेद बतावहु सोई ॥
इक मन इक चित जाकर होई। ना कह ज्ञान न भाषहु सोई ॥
दुतिया मन जाही कर भाई। तासौं राखो भेद छिपाई ॥
जो गुरु सों कोइ अन्तर राखा। धर्मराय मुगदर सोइ चाखा ॥

साखी–गुरुकी महिमा अगम है, अकह कही नहिं जाय।
गुरु पद रज हियमें धरे, सत्यलोक कहँ जाय ॥

चौपाई

सत्यलोक सतगुरुकौ बासा। ब्रह्म कीन्ह गुरु मांहि निवासा ॥
गुरुके चरण रहै लवलाई। ताकी महिमा वर्णि न जाई ॥
गुरु औ शब्द एक कर जाना। ताकी त्रास धर्म भय माना ॥
जो कोई यह भेद न जाने। धर्मराय ता कहँ सन्माने ॥
आतम ज्ञान जाहि कहँ होई। ताकौं काल न चापै कोई ॥
ऐसी धरण धरो धर्मदासू। भवसागर तैं होउ उदासू ॥
सकल पसारा शून्य समाना। शून्यहि माहीं शब्द बखाना ॥
शून्य शिखरकी डोरी पावै। देह छोड़ सतलोक सिधावै ॥

धर्मदास वचन

धर्मदास कह सुनौ गुसांई। आतम ज्ञान गम्य नहिं पाई ॥
आतम ज्ञान मोहिं समुझाऊ। जासों सकल हंस मुक्ताऊ ॥

सद्गुरु वचन

धर्मदास यह मता अपारा। ताकर जो मैं कहौं विचारा ॥
तब साहिब दया चितलाई। आतम ज्ञान तुम्हैं समुझाई ॥
गम्य अगम्य ज्ञान जब पावे। आतम ज्ञान तब घटहि समावे ॥
सत्य शब्द जब रहै समाई। सबही ठाम लोक है भाई ॥
शत्रु मित्र एकहि कर जाना। सांच झूठ एकहि कर माना ॥
सांच झूठ दोनों मिट गयऊ। दिव्य ज्ञान जाके घट भयऊ ॥

आपहि गुरु आपही शिष्या । आपहि पाय आपही दिख्या ॥
आपहि आप लगावे लेखा । आपहि व्यापे अगम अलेखा ॥
आपहि स्वर्ग नर्क भर्मावे । आप ज्ञानि हिय मुक्ति समावे ॥
आपहि दाता आपहि भुक्ता । आपहि अकृत आपही कृत्ता ॥
आपहि जन्म मरण उपजावे । आप मृत्यु ह्वै लोग रुवावे ॥
आपहि जिन्दा जग उपजावा । आपहि आशा तृष्णा लावा ॥
आपहि आप धर्म है काला । दोहू दीन ज्ञान तब चाला ॥
आपहि कुल अरु आपहि जाती । आपहि मूरत, आपहि पाती ॥
आपहि डाल आपही बेला । आपहि गुरु आपही चेला ॥

साखी—कहैं कबीर विचारके, आपहि सकल पसार ।
आप आप महँ रम रहै, आपहि सत्य अधार ॥

धर्मदास वचन—चौपाई

धर्मदास कहैं सुनो गुसांई । यहै भेद तुम मोहि सुनाई ॥
ऐसा शब्द जो मोहि सुनावा । जन्म मरणकी त्रास मिटावा ॥
एक वचन मैं बूझौं सांई । सोहं शब्द तुम मोहि सुनाई ॥
तुम जो कहेऊ ब्रह्म समाना । जीवरूप किमि होय अज्ञाना ॥
कबहुँ अज्ञान रूप ह्वै बर्तै । ज्ञानी होय ज्ञान पुनि कर्तै ॥
कबहु कहै यह ब्रह्म समाना । कहुँ राजा कहुँ भिक्षुक जाना ॥
कबहुँ जीव स्वभाव उपजावे । कबहुँ ब्रह्महो सबहि बुझावे ॥
ब्रह्म एक काहे अस कीन्हाँ । साहिब मोहि बतावहु चीन्हाँ ॥
कहैं कबीर सुनो धर्मदासू । यह सब भेद कहौं तुम पासू ॥

सद्गुरु वचन

ब्रह्म रूप है बीज समाना । पारब्रह्म अंकूर प्रमाना ॥
ताही माहिं पत्र दोय कीन्हा । एक शक्ति एकै सब चीन्हा ॥
डार पात तब प्रकृति समाना । मूलवृक्ष ईश्वर सम जाना ॥

ता महँ पांच डार निर्मावा । आकाशादि तेज उपजावा ॥
प्रथमहिं वायु रूप जो कीन्हा । वायुके मध्य तेज धर दीन्हा ॥
तेजके मध्य नीर निर्माया । जैसे बीजसे वृक्ष जमाया ॥
ऐसे उत्पति सबकी होई । धोकामें सब गये बिगोई ॥
सद्गुरु जा कहँ दाया कीन्हा । सकल भेद ते पावैं चीन्हा ॥
तत्त्व मांहि निहतत्त्व लखावे । हद्द मांहि अनहद कहँ पावे ॥
अनर्थ मेंटके अर्थ बतावे । लघु दीरघ पूरा समझावे ॥
पूर्णज्ञान जाही घट होई । सतगुरु भेदको पावे सोई ॥
ब्रह्मज्ञान बिन मुक्ति न होई । कैसे संत कहावे सोई ॥
जाकी महिमा कही न जाई । ज्ञान गम्य तैं शब्दहि पाई ॥
शब्द सार निर्मोलक पावैं । सो हंसा सतलोक सिधावैं ॥

साखी–सो पहुँचे सतलोक कहँ, काल मर्म नहिं जान ।
ते हंसा अवरन भये, सत्यपुरुषके ध्यान ॥

धर्मदास वचन–चौपाई

धर्मदास कहे सुनो गुसांई । आप अपन पर सब बिसराई ॥
सतगुरु जापै दाया कीन्हाँ । तिन पायो निज बिजको चीन्हा ॥
सूक्षम रूप परश जन आवे । लघुता बिले दीर्घ पद पावे ॥
लघुता मति प्रभु आवस कैसे । समझ परे घट कहिये तैसे ॥

सद्गुरु वचन

कहँ कबीर सुन सुकृती बानी । यह घट समझ लेहु सहिदानी ॥
सूक्षम रूप शब्द कर आही । सतगुरु मिलहिं लखावहिं ताही ॥
सुर्त निर्त जब शब्द समाना । अहंकार मन केर बिलाना ॥
दीन भाव गति तबही आई । सब घट आतम एक समाई ॥
पूरण ज्ञान जाहि घट होई । तब यह भेद पाय है सोई ॥
ज्ञानी महिमा एही जाना । सब घट आतम एक समाना ॥
सो हंसा सतलोक सिधावे । दुबिधा भाव सबे बिसरावे ॥

छन्द–भाव दूसर तजहु धर्मनि, एक ब्रह्म विचारके ।
इमि जीव जगमें देखिये, जलबिन्दु लहर सम्हाँरके ॥
परमातमासों आत्मा, जिमि भानु किरण प्रकाश हो ।
उलट कर जब आप चीन्हें, भाव दूसर नाश हो ॥
सोरठा–जिमि तिल मध्ये तेल, कंचन औ आभूषणा ॥
जीव ब्रह्म इमि मेल, पुहुप मध्य जिमि बासना ॥

इति श्री अमरमूल आत्मज्ञान वर्णन

अष्टम विश्राम

धर्मदास वचन–चौपाई

अर्ज एक अब करौं गुसाँई । कृपासिन्धु मोकहँ समुझाई ॥
जीव सीव कर भेद न जाना । कैसे ज्ञान करौं परवाना ॥
जीव सीव कर भेद बताओ । यहै ज्ञान मोकहँ समझाओ ॥

सद्गुरु वचन

धर्मदास सुनियो चितलाई । जीव सीव मैं कहौं बुझाई ॥
पांच तत्त्व गुण तीन सो साजा । ताजे सृष्टि कीन्ह उपराजा ॥
शुद्ध सतोगुण सीव कहावै । रज तम मिश्रित जीव बनावै ॥
सत रज तम तीनों सो न्यारा । पारब्रह्म सबही तें पारा ॥
पारब्रह्म अस कीन्ह समाजा । त्रिगुण रूप करसृष्टि उपराजा ॥
उपजा सृष्टि गुणकी खानी । ताते जीव बुद्धि कर जानी ॥
रज तम सत्त्व एक है भाई । बिना ज्ञान भूली दुनियाँई ॥
तत्त्व ज्ञान जाके घट होई । जीव सीव कहँ जानै सोई ॥
बिना तत्त्व जाने नहिं कोई । केतो यत्न करे नर लोई ॥
भर्म भर्म भूला संसारा । आप न चीन्हाँ भूल संसारा ॥
सब अभिमान छूट जब जाई । ब्रह्म भेद कहँ पावै भाई ॥

ब्रह्म ज्ञान जाके घट होई । मरम पुरुष कहँ जाने सोई ॥
सत्य शब्दका मर्म जिन जाना । और सकल जग झूठ बखाना ॥
सबमे ब्रह्म रहौ भर पूरी । बाहर भीतर तत्त्व हजूरी ॥
दूजा काहु न देखे कोई । सत्य शब्द जाके घट होई ॥
जाको सद्गुरु दाया कीन्हा । सो पावेगा शब्दका चीन्हा ॥
अगम भेद लख पावै जोई । सतगुरु सांच और सब छोई ॥
सतगुरु महिमा ही लख पाई । सो सत लोक पहुँचि है जाई ॥
यहे ज्ञान धर्मन करहु सुन लेहू । सब कहँ सत्य शब्द कह देहू ॥
मिथ्या ज्ञान करहु उपदेशा । तो नहिं पावहु लोक संदेशा ॥
जो तुम काज आपना चाहू । तौ जीवन कहँ सत्य लखाहू ॥
जो कोइ शब्द सुनैं तुम पासा । सोई करि है लोक निवासा ॥
जाके सत्य ज्ञान घट भयऊ । यारै प्रीति निज घर कहँ गयऊ ॥
अनमोलिक हीरा निज जाना । ताका मोल वहीं परमाना ॥
सोहं सम निर्मोलक भयऊ । साहिब सेवकइक मिल गयऊ ॥
कञ्चन और आभूषण जाई । ऐसे ब्रह्म जीव मिलजाई ॥
दूजा भाव न एका रहिया । संशय मेट अमर पद लहिया ॥
अमर मूल अमर पद भई काया । अमर शब्द जिन हंसन पाया ॥
अमर शब्द सतगुरु सों पावै । बिन सतगुरु सब मूल गँवावै ॥
कहैं कबीर सुनो धर्मदासू । ऐसा भेद करो परकासू ॥
यहे भेद संसार सुनावहुँ । सब जीवन कहँ लोक लेजावहुँ ॥
तुम कहँ दीन्ह जक्त कडिहारी । तुम्हरी बांह उतर भवपारी ॥
जा कहुँ तुम बकसो सहिदानी । सो कडिहार जक्त महँ जानी ॥
जापर दाया तुमने कीना । सोई जीव मुक्ति कहँ चीना ॥
मुक्ति भेद जब पावै प्राणी । सतगुरुनेक सदा उतपानी ॥
रजगुण तमगुण त्याग कराई । सतगुण धर्महिं परसैं भाई ॥
सतगुण धर्म कर पावै भेदा । कहँ कबीर सोइ हंस अछेदा ॥

धर्मदास वचन

धर्मदास विन्ती अनुसारी । हे सतगुरु मैं तुम बलिहारी ॥
सतगुण धर्म मोहि समुझाई । जिहितें मन संशय चलिजाई॥

सद्गुरु वचन

धर्मदास चित केहु विचारी । सतगुरु धर्म कहौं निरवारी ॥
प्रथमहि भोजन सब परिहरही । रजगुण भोजन मध्यम करही॥
उत्तम तंडुल आन भरावै । बार छानके तहां मँगावै ॥
उत्तम चौका दीन्ह बहुभांती । शब्द बोल मल कीन्हों स्वाँती॥
दुग्ध खांड घृत असन करावा । तासौं कहिये सतगुण भावा॥
जितनी क्षुधा होय घट प्रानी । लेव अहार सोई अनुमानी ॥
शब्द बोले परसाद चढ़ावै । भाजी बने तो अति मनभावै॥
भाजी नहीं तौ जलभर आना । गुरुकहँ देय अधिक सुखमाना ॥
ऊगुर लेय बहुत मन मानी । यह विधि कहिये सात्त्विक ज्ञानी॥
तीसर भाग अभ्यागत देई । तब प्रसाद पवित्र करलेई ॥
अभ्यागत नहिं आपही पावै । राजस धर्म नर्क कह जावै ॥
सतगुरु धर्म छूट जब जाई । राजस तामस आन समाई ॥
सतगुण धर्म करो प्रतिपाला । निश्चय पावे लोक रसाला ॥
चैतन्य पुरुषमें जाय समाई । दुविधा भाव सबै मिट जाई॥
रजगुण तमगुण सतगुण कहिये । सब मिट जाय ज्ञान जो पइये
सब कहँ भर्म भूत करडारा । झूठी बात भेट औटारा ॥
सबै ब्रह्म ना दूसरे कोई । दूजा भर्म मिट गये सोई ॥
वेद शास्त्र सब कहै बखानी । वचन विलास कहैं सब ज्ञानी॥
छऊ शास्त्र मिल झगरा कीन्हा । ब्रह्म रूप काहू नहि चीन्हा ॥
चीन्हें तौ जो दूसर होई । भर्म विवाद करैं सब कोई ॥
एकै ब्रह्म अखंडित कहई । खंडित ज्ञान महँ निसदिन रहई॥

ताकी बात कहत परवाना । झूठ न छोड़े मूर्ख अज्ञाना ॥
मूरख किमि कर कहिये भाई । ब्रह्म सकलमें रहा समाई ॥
आपहि मूरख आपहि ज्ञानी । आप कथा सब कहै बखानी ॥
आपहि ऊँच नीच दिखलावे । ज्ञानी होय जगत समुझावे ॥
आपहिं बूझ आपही नाहीं । आप आपमहँ सकल समाहीं ॥
आपहि सुम्रिन करे बनाई । जप तप ज्ञान आप ठहराई ॥
स्वर्ग नर्क सब आपहि बासा । बाजीगर ह्वै करे तमासा ॥
आप तमासा आप भुलाया । आपहिं हैं सब माहिं समाया ॥
आप आप को चीन्हे नाहीं । आपहि ज्ञानी आप समाहीं ॥

साखी–आप आपको चीन्हकै, आप ब्रह्म हो जाय ।
आप न चीन्हैं आप कहँ, परो भर्म महँ जाय ॥

चौपाई

अकह कहन कहि नहिं जाई । आप अकथ हो कथा सुनाई ॥
आपहि मनका रूप बनाया । दूया होके जगत दिखाया ॥
ऐसा भाव विधाता कीन्हा । ताते कोइ न पावै कीन्हा ॥

साखी–आप आपको चीन्हकै, सब संशय मिटजाय ।
कहैं कबीर निर्दोष भये, ब्रह्म स्वरूप समाय ॥

चौपाई

जबहि ब्रह्मरूप कहँ जाना । तब संसार झूठ कर जाना ॥
कितहुँ न देखे दूजा नाऊ । सब घट ब्रह्म जो रहा समाऊ ॥
जाहि ज्ञान अनुभव परगासा । सकल कर्मको भयो तब नाशा ॥
कर्म धर्म जो दोउ मिटये । ना कहुँ गये ना कहूँ आये ॥
जैसा रहा तैसा है सोई । बीचको भर्म मेट सब खोई ॥
कर्म भर्म की छूटी आशा । एकै नाम करहु विश्वासा ॥
नाम छोड़कै और न जाने । तीरथ ब्रत कछु मन नहिं आने ॥

आपहि तीर्थ आपहि देवा । आपहि आप लगावै सेवा ॥
आपहि मूरत पिंड बँधावै । आप जन्त्रि ह्वै जन्तर लावै ॥
आपहि महिमा सबकी कीन्हा । आपहि निन्दक मिथ्या कीन्हा॥

साखी-आप सकल जग व्यापिया, आपहि अलख अपार ।
आपहि जग उपजावही, आपहि दस औतार ॥

चौपाई

आपहि देव दैत्य संहारा । आप युद्ध कीन्ह असरारा ॥
आपहि महाभार्थ करवाया । पांडोंको शुभ ज्ञान सुनाया ॥
आपहि कौरव पांडव भयऊ । आपहि होय सबनसों कियऊ ॥
आपहि है अहंकार स्वरूपा । आपहि रय्यत आपहि भूपा ॥
आपहि चाकर हो सेवा लावा । आप पंडित हो वेद पढ़ावा ॥
आपहि भला बुरा अनुसारा । आप अमीर न्याव निबेरा ॥
आप ले आवै आपहि खाई । आप अतीत आप सिवकाई ॥
आपहि न्याव आपहि बादा । आपहि तीता आपहि वादा ॥
आपहि खाटा मीठा भयऊ । आपहि सर्वस्वाद कर लयऊ ॥
आपहि लघु दीरघ हो देखा । आपहि दूर निकट हो लेखा ॥
आपहि सकलौ वेद पुराना । आपहि पोथी आप बखाना ॥
आपहि छऊ शास्त्र बनावा । वाद विवाद कर ज्ञान सुनावा॥
आपहि जीत आपही हारा । आपहि तरे आपही तारा ॥

साखी-ऐसी महिमा ब्रह्मकी कहत कही नहिं जाय ।
जो कोइ यह मति समझ है, तेही ब्रह्म समाय ॥

चौपाई

ब्रह्म अखण्ड खण्ड नहिं होई । खंडित ब्रह्म ध्यावे सब कोई ॥
आप कहैं हैं ब्रह्म अखंडा । आपहि खंडित कह सबखंडा ॥
आपहि मनुष्य रूप कहावै । आपहि दूजा भाव स्वभावै ॥

आप अवचन वचन नहिं आवै । आप वचन कहि सब समुझावै॥
आप अरूप रूप नहिं कोई । आपहि सकल स्वरूप है सोई ॥
आपहि निर्गुण रूप जो कहिये । ज्ञानगम्यतें यह मत लहिये ॥
आपहि ज्ञान मुक्तिके दाता । आपहि दाता आपहि मुक्ता ॥
कहैं कबीर सुनो धर्मदासा । ऐसा ज्ञान घट करौं प्रकाशा ॥

धर्मदास वचन

धर्मदास बिनती अनुसारी । हे साहिब मैं तुम बलिहारी ॥
यह मत मोहक अगम लखावा । हृदय कमल अब आन जुड़ावा॥
एक बात मैं बूझहुँ साईं । सोइ कहौ जिहि संशय जाई ॥
तुम सब ब्रह्म कहो समुझावा । मोरे मन निश्चय यह आवा॥
औरन सों कह कहो गुसाँई । यह तौ ज्ञान कहौं नहिं जाई ॥
मैं जाना सब तुम्हरी दाया । और जीव नहिं शब्द समाया॥
ताकर मोहे कहौ उपदेशा । सो हंसन सों कहौं सन्देशा ॥

सद्गुरु वचन

धर्मदास तुम ज्ञान सुनाऊँ । जो मानैं सो सन्त स्वभाऊ ॥
जो नहिं माना शब्द तुम्हारा । फिर पछतै है बारम्बारा ॥
धर्मदास तुम आपन सोधो । तब तुम सकल सृष्टिपर बोधो॥
जो तुम्हरो मन थिर नहिं होई । तबलग पंथ चलै नहिं कोई ॥

साखी—जब मन कहँ परबोध हु, सकल भर्म मिटजाय ।
एक नाम कहँ सेवहु, आवागमन मिटजाय ॥

चौपाई

धर्मदास मैं कहौं नवेरा । जासों हंस मुक्त होय तेरा ॥
मुक्ति होय सत नामहि पावै । बहुरि न योनी संकट आवै ॥

धर्मदास वचन

धर्मदास कहैं सुनो गुसांई। मुक्ति वस्तु सो मोहि सुनाई॥
तुम तौ मुक्ति भर्म कर डारा। तुमते पायँउ ज्ञान भंडारा॥
मुक्ति करौ जो बन्धा होई। यह तौ हंस निबन्धक सोई॥
नहिं कोई बन्धा नहिं कोइ छूटा। संशयके बस सब जग लूटा॥
तुम्हरी दाया सो हम जाना। मुक्ति अमुक्ति दोउ भर्माना॥

सद्गुरु उवाच

अब तुम्हारे जिव निश्चय आई। हम जाना तुम सिखहौ भाई॥
निज मन्त्रहि जानहु धर्मदासा। अब कह बूझहु सत्त विलासा॥
जो कहिये सो वचन विलासा। यह तौ साखी पद परकासा॥
ग्रन्थ कहेउ सब जगत प्रबोधा। जो बूझे सो पावे सोधा॥
जो बूझे ग्रन्थनकी वानी। तब पावे गम निज सहिदानी॥
जब पावे शब्दहि कर लेखा। तब जानहु जैसे सब धोखा॥
धोखा योग यज्ञ तप कीन्हा। धोखा दान पुण्य सब लीन्हा॥
धोखा कर्म करे संसारा। धोखा कोटिन ज्ञान पसारा॥
धोखा पुरान सकल जहाना। धोखा शास्त्र वेद मत ठाना॥
धोखा साखी पद है भाई। धोखा कह सब ज्ञान सुनाई॥
धोखा प्रथम सांच कर माना। समझे धोखा सबे नसाना॥
जस निर्गुण तस सर्गुण माना। निर्गुण सर्गुण एक समाना॥
अगुण सगुण दोनों मिट गयऊ। आदिब्रह्म सौ परिचय भयऊ॥
धर्मदास यह मति सुनि लेहू। धोखा ज्ञान चित्त मत देहू॥
प्रथमहि भक्त रूपकर ज्ञाना। ता पीछे फिर तत्व समाना॥
जबही तत्त्व समाना भाई। तबही जीव लोक कहँ जाई॥
जबही सत्त्व हृदे महँ आवे। धोखा रूप सबे मिट जावे॥
जब तुम अपना तत्त्वहि जानौ। गुरु औ शिष्य दोउ पहिचानो॥

तुमही शिष्य गुरु हो सोई। तुम गुरुही शिष्य सब कोई॥
गुरु अरु शिष्य एककर जाना। दूजा भाव सो सबै बिलाना॥
दूजा भाव बसत है जाके। नहीं शिष्य नाहीं गुरु ताके॥

साखी-गुरु शिष्यकी महिमा, कहैं कबीर बिचार।
अमरमूल जो जान हो, उतरौ भौजल पार॥

चौपाई

तुम कहँ शब्द दीन्ह टकसारा। सो हंसन सों कहो पुकारा॥
शब्द सार का सुम्रन करिहै। सहजे सत्यलोक निस्तरिहै॥
सुम्रन का बल ऐसा होई। कर्म काट सब पलमहँ खोई॥
जाके कर्म काट सब डारा। दिव्य ज्ञान सहजै उजियारा॥
जा कहँ दिव्यज्ञान परकाशा। आपहिमें सब लोक निवासा॥
लोक अलोक शब्द हैं भाई। जिन जाना तिन संशय जाई॥
तत्त्व सार सुम्रन है भाई। जातें यमकी तपन बुझाई॥
सुम्रन सों सब कर्म बिनाशा। सुम्रन सों दिव्यज्ञान प्रकाशा॥
सुम्रन सो जैहैं सतलोका। सुम्रन सों मिटे है सब धोका॥
धर्मन सुम्रन देहु लखाई। जासों हंस सबै मुक्ताई॥
गुरु धोबी सिख कपड़ा जानी। सुम्रन साबुन है परवानी॥
बस्तर को तब मैल नसाई। तैसे ज्ञान हिये दर्साई॥
हृदे ज्ञान परकट जब होई। कर्म भर्म सब मिटगए दोई॥
ज्ञान दीप जबही परकाशा। मोहे तिमिरको भयो विनाशा॥
सत्य पुरुष महँ जाय समाना। हंस पुरुष एकहि कर जाना॥
दुतिया धोखा मिट तब गयऊ। एक रूप महँ एकसम एऊ॥

धर्मदास वचन

धर्मदास बिन्ती अनुसारी। हे सतगुरु तुम्हरी बलहारी॥
एक बात अब बूझौं साई। जिहितें मनकी संशय जाई॥

तुम तौ एक एक ठहरावा । एक महातम निज हम पावा ॥
सत्य लोक का कहौ ठिकाना । केतक है बिस्तार प्रमाना ॥
केतक ऊँच नीच है भाई । सो मोहि साहिब देहु बताई ॥
केतक लंबा औ चकराई । सो सब लेखा कहु समुझाई ॥

सद्गुरु वचन

कहैं कबीर सुन सुकृत वानी । लोक कथा सब सुन बिलछानी ॥
सब विस्तार तोहि समझाऊं । लेखा नहीं अलेख लखाऊं ॥
कहिये तो लेखा हो भाई । अलेखा बात मुख कही न जाई ॥
जासों कहिये अगम अपारा । ताको अंश न पावहिं पारा ॥
जहँ लेखा तहँ परलय होई । अलेख अंत न पावहि कोई ॥
एक समय ऐसो धर्मदासा । अपने चित्तको कहौ प्रकाशा ॥
जब हम सत्यलोकमें रहिया । सो वृत्तान्त तुहे नहिं कहिया ॥
सत्यलोक तें आगे गयऊ । अचरज तहँवा देखत भयऊ ॥
सो अचरज अब कहौ न जाई । तुम पूछो तौ देहुँ बताई ॥
ऐसी बात ताहिं काहू जानी । तुम ना काहू फिर पूछी आनी ॥
धर्मदास प्राण हित मोरा । सुनहु ज्ञान यह दीप अंजोरा ॥
केतक सत्यलोक में देखा । पुरुष प्रमाण न जात बिशेखा ॥
ऐसा लोक यही व्यवहारा । ऐसहि रूप तहँ पुरुष सवाँरा ॥
तहवाँ देख सुर्त सौं जाई । जिन मोहिं दीन्हा अगम लखाई ॥

साखी—अनंत काल तहँ देखऊ, सत्यलोक विस्तार ।
गिन्ती कहँ लग कीन्हिये, धर्मदास निर्धार ॥

चौपाई

गिन्ती कहाँ गिनौ निज धामा । को वर्णै सो पुरुष प्रवाणा ॥
गिन्ती की मर्याद मिटाई । सार शब्द सब घटन समाई ॥

साखी-जौ कछु गिन्ती आवही, ताकौ है सब नाश।
परै न गिन किम गीनिये, ऐसा शब्द प्रकाश॥

चौपाई

वचन भेद कर कथा सुनावा। जिहितें तुम्हरा मनपति आवा॥
ब्रह्म अखण्ड लेख किमि जानी। खंडित कर किमि ज्ञान बखानी॥
तहँ लगि सुनी सो माया जानी। जो देखा सो भर्म बखानी॥
कहिये जो तौ दुतिया होई। दुनिया भर्म मेंट सब कोई॥
एक ब्रह्म दुतिया नहिं कोई। कैसे दुतिया कहिये सोई॥

साखी-नहिं उत्पति नहिं प्रलय, नहिं आवे नहिं जाय।
नहिं गिन्ती अनगिनत वह, बूझ कै शब्द समाय॥

चौपाई

तब हम आगे दीन्ह पयाना। जहँ देखा तहँ हंस समाना॥
अक्षर एक हम सब में देखा। भाव अनेक कहो का लेखा॥
तब हम चले आप स्थाना। ऊर्ध्वलोक सो कीन्ह पयाना॥
मारगमें अचरज एक देखा। ताका अब मैं कहौं बिवेका॥
अद्‌भुत लीला वर्णि न जाई। कहे सुने सौं को पतिआई॥
धर्मदास मैं तुमहिं सुनाऊँ। अकथ कथा कथ ज्ञान बुझाऊँ॥
तहँवां देख कबीर कर लोका। असंख्य कबीर कर देखा थोका॥
हम जाना की हमहि कबीरू। जहँ देखा तहँ कबीर शरीरू॥
तब अपने चित कीन्ह बिचारा। एकहि रूप सकल बिस्तारा॥
दूजा और आय नहिं कोई। सब घट रमैं कबीर समोई॥

साखी-हम कबीर हम कर्ता, सकल सृष्टि धर्मदास।
दूजा और न देखिये, सत्य शब्द परकास॥

चौपाई

नहीं कबीर नहीं धर्मदासा । अक्षर एक सकल घट वासा ॥
सत्य पुरुष वाही सों कहिये । आदि अन्त अक्षर गह रहिये ॥
अक्षर मूल और सब डारा । शाख रमैनी पत्र पसारा ॥
कथा जोकहि-कहि ज्ञान सुनावा । यही भांति संसार बुझावा ॥
जिन बूझा तिन धोखा माना । सकलबात मिथ्याकर जाना ॥

साखी– कहै कबीर यह मनहि है, मतका सकल पसार ।
चिन्ह यह मन कहँ बुझिया, आवागमन निवार ॥

धर्मदास वचन–चौपाई

धर्मदास विनती करजोरी । बंदिछोर सुन विन्ती मोरी ॥
निश्चय ज्ञान मोहिं समुझायो । निश्चयसकलहमतुमसों पायो ॥
सो यह बात अब बूझौं सांई । सो साहिब मोहिं देहु बताई ॥
आवागमन कवन विधि होई । बन्दी छोर सुनावहु सोई ॥

श्रीसाहिब कबीर वचन

तब साहिब कहिबे अनुसारा । कहौं विचार तासु व्यवहारा ॥
पांच तत्त्वका पुतरा बनावा । तामहँ परगट आप समावा ॥
त्रिगुण आतमा रूप बनाई । दुख सुख ताहि सबै भुगताई ॥
इन महँ मन राजा कर दीन्हा । तातें जीव बुद्धि गह लीन्हा ॥
आपन रूप आपनहिं चीन्हा । तातें आवागमन कर लीन्हा ॥
ना कोइ आया ना कोई गया । मनके मते जन्मतें भया ॥
मनही ज्ञानी मूरख कहिये । मनही ब्रह्मरूप यह लहिये ॥
मनका है यह सकल पसारा । मनही पाप पुण्य बिस्तारा ॥
मनही मोह काम उपजावै । मनही आशा तृष्णा लावै ॥

मनही देहरा देव पसारा। मनही पूजे पूजन हारा॥
मनही नार पुरुष कर जाना। मनहि पुत्र मन बाप बखाना॥
मनही राजा रय्यत कहिये। मनहि दिवान मनहि मिलि रहिये॥

साखी–कहैं कबीर यह मनहि है, मनका सकल पसार।
मन चीन्हे ते अमर हैं, गह निहअक्षर सार॥

चौपाई

कहँलग कहिये मनकी बानी। झूठ पसारा मनहिं बखानी॥
एक ब्रह्म सब घटहि समाई। नहिं कहुँ आवै नहिं कहुँ जाई॥
मनकी वृत्ति यह कथा सुनावा। मनही वेद पुरान पढ़ावा॥
मनहि शास्त्र शुभ घड़ी विचारी। उत्तम मध्यम कह निर्वारी॥
मनही भाव वृत्त सब करई। मनके भाव योग तप धरई॥
मनके भाव यज्ञ जो कीन्हा। मनके भाव दान जो दीन्हा॥
मनके भाव प्रतिग्रह लेई। मनके भाव तुला सब देई॥
यह सब है मन केर खुटाई। सतगुरु मिस सब कर्म छुटाई॥

साखी–यह सब मनकी दौर है, मनका सकल पसार।
ज्ञान चीन्ह मन अचल है, कहैं कबीर विचार॥

चौपाई

मनकी कथा कहेउ प्रसंगा। अचरज बात कहेउ सब रंगा॥
यह मत तौ हम तुमसों कहिया। ज्ञानी होय कोइ कोई लहिया॥
इक अक्षर का यह है लेखा। ज्ञानी हों सोइ शब्द विवेका॥
धर्मदास अक्षर दृढ जानो। दूजा भाव न मनमहँ आनो॥
दूजा कहिये मनका भाऊ। ताते सत्य ज्ञान समझाऊ॥
झूठा है मन का पैसारा। ताते चित महँ शब्द सँभारा॥

साखी–कहैं कबीर विचारकै, सुनियो सन्त सुजान ।
हम तुम कहँ निज भाखऊ, सत्य शब्द परवान ॥

चौपाई

धर्मदास सुन सत्य सँदेशा । सत्य शब्द कहियो उपदेशा ॥
जाके पास होय दिव्य ज्ञाना । सोई पावहि पद निर्वाना ॥

छंद–निर्वान पद कहँ पाय है सोई ज्ञान दीपक उर धरै ।
अज्ञान तमको नाश कर परकाश आतमको करै ॥
जिमि भानु है आकाशमें प्रतिबिम्ब सब घट देखिये ।
ब्रह्म जीव है भेद इतनो धर्मदास विवेकिये ॥

सोरठा–सत्य नाम परवान, कहैं कबीर विचारकै ।
पहुँचै लोक ठिकान, यहै भेद जो पावही ॥

इति श्री अमरमूल, जीव सीव भेद लोकवर्णन

नवम विश्राम

धर्मदास वचन–चौपाई

धर्मदास उठ पांयन परई । सतगुरुसों विनती अनुसरई ॥
सत्यलोक मोहे बरन सुनावा । बचन तुम्हारे सब लखि पावा ॥
तुम तौ कहैं अवचन है सोई । चरचा शब्द कहौ किमि होई ॥
जब तुम शब्द जो कहि समुझावा । वचन भावमें सब जो आवा ॥
अवचन बात वचनकिमिकहिये । सो मोहे स्वामी भेद बतइये ॥
प्रथमहि तौ तुम शब्द सुनावा । ता पीछे फिर ज्ञान दृढावा ॥
और तुम कहे वचन अनलेखा । हम सेवक किमि करैं विवेका ॥
एक वचन कहिये समुझाई । जिहिते चित्त अन्त नहिं जाई ॥

साहिब कबीर-वचन

तब कबीर अस कहिबे लीन्हा। ज्ञान भेद सकल कहि दीन्हा ॥
धर्मदास मैं कहौं विचारी। जिहितें निबहै सब संसारी ॥
प्रथमहि शिष्य होय जो आई। ता कहँ पान देहु तुम भाई ॥
जब देखहु तुम दृढ़ता ज्ञाना। ता कहँ कहहू शब्द प्रवाना ॥
शब्द मांहि जब निश्चय आवै। ता कहँ ज्ञान अगाध सुनावै ॥
अनुभवका जब करै विचारा। सो तौ तीन लोकसों न्यारा ॥
अनुभव ज्ञान प्रगट जब होई। आतमराम चीन्ह है सोई ॥
शब्द निहशब्द आप कहलावा। आपहि बोल अबोल सुनावा ॥
आपहि चुप जो बोलत रहिया। आप वचन अवचन जो कहिया॥
आप गुरु ह्वै शब्द सुनावै। आप शिष्य ह्वै सुर्त समावै ॥
आहि गुरू शिष्य जो होई। देखैं सुनैं आपही सोई ॥

साखी-देखैं सुनैं कहैं सबै, आपहि रूप अपार।
आप न चीन्है आप कहँ, भूला सब संसार ॥

चौपाई

यह मति हम तौ तुम कहँ दीन्हा। बिरला शिष्य कोइ पावै चीन्हा॥
धर्मदास तुम कहो सन्देशा। जो जस जीव ताहि उपदेशा ॥
बालक सम जाकर है ज्ञाना। तासों कहहू वचन प्रवाना ॥
जा कहँ सूक्ष्म ज्ञान है भाई। ता कहँ सुम्रन देहु लखाई ॥
ज्ञान गम्य जा कहँ पुनि होई। सार शब्द जा कहँ कहु सोई ॥
जा कहँ दिव्य ज्ञान परवेशा। ता कहँ तत्व ज्ञान उपदेशा ॥
अनुभव ज्ञान जाहि कहँ होई। दूसर कितहु न देखै सोई ॥
उग्र ज्ञान जा कहँ परकाशा। आतमराम घटमाहि निवासा ॥
आतमरामकी परचय होई। आपहि आतमराम है सोई ॥

दूजा कितहुं न देखहि भाई । आप रहा सब ठांव समाई ॥
यही भांति तुम जग समुझावो । जो समुझै तेहिं लोक पठावो ॥
आत्मारामकी परिचय पाई । ताके निकट लोक है भाई ॥
हम तौ एक लोक कहँ दीन्हा । अनंतलोक घट नाहीं चीन्हा ॥
अनंतलोककी परिचय पावै । कहँ कबीर भव बहुरि न आवै ॥
एक बचन तो देउँ लखाई । जिहि तैं तुम्हरो संशय जाई ॥
एक समय सत लोकहि रहिया । सत्य पुरुष इक मोसन कहिया ॥
हे कबीर हम तुम हैं एका । दूजा भाव मति राखहु ठेका ॥
सुर्त स्वरूप तुम्हारा भाई । शब्द रूप हमही निर्माई ॥
सुरत शब्द निकट इक भाखा । पर्दा अंतर कछू न राखा ॥
ब्रह्म स्वरूप मोहिं कहँ जानौ । केवल ब्रह्म स्वरूप बखानौ ॥
शब्द मोहिं यक सुर्त उतपानी । सो मोकों तुम निश्चय जानी ॥
धर्मराय है मेरो अंशा । सो निज जानहु हमरो वंशा ॥
आदि भवानी रूप बनावा । तामें निश्चय जाय समावा ॥
तीनों गुण हैं मोर प्रकाशा । पांच तत्व महँ मोर निवासा ॥
जीवन रूप कियो हम भाई । आतम रूप जु हमहिं बनाई ॥
पांच तत्त्व परकट हम कीन्हा । निश्चय वास तहां हम लीन्हा ॥
आपहि सों सब रूप अवतारा । राम कृष्ण परकट संसारा ॥
यह सब रूप मोर है सांचा । इनहि चीन्ह सो यमसों बाँचा ॥
यम माहीं है मोरो रूपा । सब पृथ्वीमह मोर स्वरूपा ॥
चौरासी लख योनी कीन्हा । आप वास योनीमहँ लीन्हा ॥
हम से दूसर नाहिन कोई । भर्म मांह सब रहे समोई ॥
भर्म रूप हम सृष्टि बनाई । भर्म मांहि सब रहे समाई ॥
सुर नर मुनिगण यक्ष अपारा । राची सृष्टि भर्म व्यवहारा ॥

इतने भर्म न छूटत भाई। ब्रह्मादिक से रहे भुलाई ॥
हे कबीर हम तुमसों कही। निश्चय जान बात यह सही ॥
पुरुष बात यह मोहि सुनाई। सो मैं तुम कहँ आन जनाई ॥
धर्मदास निरखहु निज नैना। निश्चय जान परख मम बैना ॥

धर्मदास वचन

धर्मदास विनवै कर जोरी। साहिब सुनहू विनती मोरी ॥
यहै कथा तुम मोकहँ भाखी। दूसर और कवन है साखी ॥

सतगुरु वचन

तब कबीर बोले अस बानी। सत्य बात यह सुनियो ज्ञानी॥
यहै कथा हम त्रेता भाखी। मधुकर विप्र ताहिकर साखी ॥

साखी—यहै कथा त्रेता कही, मधुकर सों समुझाय।
और न दूजा जानही, धर्मदास सुन भाय ॥

धर्मदास वचन—चौपाई

अमृत कथा मोहि समुझावा। हृदयकमल मम आन जुड़ावा॥
सतगुरु समरथ की बलिजाऊँ। बहुर न भवसागर महँ आऊँ॥
अस्तुति कवन एकमुख करऊँ। सतगुरु चरण हृदयमहँ धरऊँ॥
गद गद गिरा नयन भरदयऊ। अहो नाथ मोहि बड़सुख भयऊ॥
बहुत अनंद भयउ मन माहीं। अचरज सुख कछु कही न जाहीं॥
बचन सुधा रविकिरण समूहा। मम संशय यामिनिगत जूहा ॥
बहुत अनंद भयउ हियमाहीं। ब्रह्म अनंद कहो नहिं खाहीं ॥
विनती एक सुनो गुरु ज्ञानी। तुम महिमाकिमिकहौंबखानी ॥
जो अब दाया करो गुसांई। सोई शब्दमहँ रहौं समाई ॥

श्रीसाहिब कबीर वचन

कहैं कबीर सुनो धर्मदासू। हम तुम एक शब्दमहँ बासू ॥
दूसर भाव नहीं है आशा। सोई कबीर सोई धर्मदासा ॥

एक रूप धर्मदास कबीरा। लख चौरासी एक शरीरा॥
काया बीर नाम है धीरू। सब घट रहैं समाय कबीरू॥
जो बोलत सो शब्दप्रवाना। शब्दहि रूप कबीर समाना॥
शब्दहि रूप कबीर कहाई। शब्द रूप ह्वै रहै समाई॥
निजही शब्द कबीर है सारा। जाका है निज सकल पसारा॥
एकै रूप शब्द पुन एका। एक भाव दुतिया नहिं देखा॥
एकहि हम तुम एक शरीरा। एक शब्द है मति के धीरा॥
एको रूप एकै अनुहारी। एकहि पुरुष सकल विस्तारी॥

साखी–रंग रूप सब एक है, एकहि सकल पसार।
एक जान सोइ एकहै, दूजा यह संसार॥

बिनती एक करौं कर जोरी। सतगुरु संशय मेटहु मोरी॥
जो तुम ऐसा ज्ञान सुनावा। हृदयकमल मम आन जुड़ावा॥
इक संशय उपजी मन माहीं। चार कर्म देखे जिमि पाहीं॥
कर्म ज्ञान कहे सब कोई। कर्म करे सो निश्चय होई॥
कर्म सकल जीवन कहँ फाँसा। कर्म संग यह भयो बिनाशा॥
कर्म करै तैसा फल पाई। ऊँच नीच योनिन भरमाई॥
काल पाय कोइ ज्ञान बिचारा। काल पाय सब कर्म सँचारा॥
ऐसी कथा सुनी सब ठाई। सोइ कहौं जिहि संशय जाई॥
तुम तो एक एक ठहरावा। दूसर भाव कवन उपजावा॥
सब घट ब्रह्म एक ठहराई। तौ किमि कष्ट सहैंजिव आई॥
जो तुम कहौ सब ब्रह्म समाना। कोई जीव होहिं अज्ञाना॥
जो कहिये सब एकहि आई। तौ कस ज्ञान कथा अब गाई॥
एक ब्रह्म तौ सब घट चीन्हा। गुरु शिष्य काहे कहँ कीन्हा॥
यह तो आप आप ठहराई। काहे का तुम पंथ चलाई॥

जो असकहो सकल प्रभु कीन्हा। ज्ञान गम्य कैसे कै चीन्हा ॥
काहे कहँ तुम कथा सुनाई। काहे कहँ अब ज्ञान बताई ॥
का कहँ गुरु शिष्य कहावा। कर्म अंक काहे फल पावा ॥
को बूझे अरु कवन बुझावै। कवन गुरूको शिष्य कहावै ॥

साखी-यह संशय गुरु मेटहू, बिनती सुनो हमार।
बलिहारी तुव नामकी, क्षणमें लीन्ह उबार ॥

साहिब कबीर वचन चौपाई

तब सद्गुरु बोले इक बानी। अचरज बात लेहु पहिचानी ॥
कर्म रेख तुम पूछेउ आई। सो सब कथा तुम्हैं समझाई ॥
मात पिता मिल कर्म कमावा। ताही कर्म देह बनि आवा ॥
ब्रह्मलोक सों जब जिव आवा। कर्म रहित निर्मल पद पावा ॥
जलनिधि वारी मेघ लै आई। बून्द बून्द निर्मल हर्षाई ॥
भूमि परी डाबर पहिचानी। इमि जीवहि माया लपटानी ॥
पवन लगे निर्मलता होई। माया मलिन दूर सब खोई ॥
जल कहँ पवन जीव कहँ ज्ञाना। ज्ञान भयेते कर्म नसाना ॥
कर्मनसे निर्मल पद पावा। ज्योंका त्यों तब आप कहावा ॥
आप चीन्ह भव जलतें न्यारा। तन छूटे पहुँचे दरबारा ॥
जब जन्मा तब कर्मका लेखा। तन छूटा तब आंखन देखा ॥
जन्म मरनतेंथिर नहिं कीन्हा। ऐसी विधि है कर्मको चीन्हा ॥
जाहि समय जैसी बनि आई। ताहि समय तैसा है भाई ॥
तिहितैं कर्म काल ठहराना। सब शास्त्रिनमिलकीन्ह बखाना ॥
जीव रूप ताहीसौं जानी। आपको आप नहीं पहिचानी ॥
तातें ज्ञान सुनायऊ आई। जीव बुद्धि जातैं मिट जाई ॥
गुरु शिष्य यह कारण आई। कर्म अंक लिखनी मिट जाई ॥
तातें पंथ चलाएउ आई। यह कारण हम ज्ञान सुनाई ॥

एही तें है सकल पसारा। याहीतें है सब व्यवहारा ॥
आतम राम चीन्ह जब पावा। सकल पसारा मेंट बहावा ॥
आतम परमातम मिल जाई। जैसे सरिता सिन्धु समाई ॥
जब लग यह चीन्हें नहिं आतम। तब लग नहिं मिलिहै परमातम॥
शब्द बिना आतम दृग हीना। सद्गुरु संघ यही कहि दीना ॥
शब्द नेत्र जबही लख पावा। सद्गुरु मिलनिज घरहि सिधावा॥
ऐसी मति जाही घटहोई। हँस हिरंमर कहिये सोई ॥
तिनकहँ जानहु हमहिं स्वभाऊ। हमहुँ नहीं कछु ताहिं दुराऊ ॥
धर्मदास यह बूझहु ज्ञाना। जातें हंस होय निर्वाना ॥
जा कहँ आतम ज्ञान प्रकाशा। वही कबीर वही धर्मदासा ॥
आतम राम देख जिन पाई। आप आप सब ठांव समाई ॥
जब देखा तब आप समाना। ब्रह्म छोड दूसर नहिं आना ॥
सोहं सोहं सत्य कबीरा। शब्द मंत्र है प्रकट शरीरा ॥
यहां ग्रंथ में मंत्र सुनावा। चारहि वेदका मूल बतावा ॥
षटें शास्त्र मिलकरहिं विचारा। प्रकट ब्रह्म यह ज्ञान विचारा ॥

साखी– ऐसा ज्ञान जब ऊपजे, सुनहु हो धर्मदास ।
परकट ब्रह्म स्वरूप है, एक नाम विश्वास ॥

चौपाई

यहै ग्रंथ सब सुनै सुनावै। निश्चय प्रेम भक्ति को पावै ॥
जो ज्ञानी ह्वै बूझै ज्ञाना। निश्चय ह्वै है ब्रह्म समाना ॥
चार पदारथ को फल होई। निश्चय जानहु यहमत सोई ॥
ऐसो ज्ञान अखंडित भारी। अमरमूल में कहेऊँ विचारी ॥

साखी–अमरमूल यह ग्रंथ है, सकल ज्ञान भंडार ।
सुनत अमर पद पावहीं, कहैं कबीर विचार ॥

धर्मदास वचन

धर्मन हियमें अतिही हर्षेउ। गद्‌गद गिरा नयन जल बर्षेउ॥
सतगुरु चरण रहे हियमाहीं। भानु उदय पङ्कज विकसाहीं॥
मोह निशा व्याकुल अतिभारी। तामहँ सोवत नाहिं सम्हारी॥
गुरु दयाल मोहिं लीन्ह जगाई। आवागमन रहित घर पाई॥
अब सन्देह रहा कछु नाहीं। शब्द तुम्हार बसा हियमाहीं॥
स्तुति कहा तुम्हारी कीजे। अमृत कथा श्रवण भर पीजे॥

छन्द–तुम आदि ब्रह्म अपार सतगुरु, जीवकारण आयऊ।
काट फन्दा सकल यमके, अमरलोक पठायऊ॥
भवसिंधु कठिन कराल भारी, पार काहू ना लयो।
तुम कृपा गोपद जान सोई, पार धर्मनि कर दयो॥

सोरठा–दीन्हों मोहि लखाय, परमातम आतम सकल।
अमरमूल समुझाय, अमर वस्तु गुरु दीन्हेऊ॥

इति श्रीग्रन्थ अमरमूल धर्मदास सम्बोधन विज्ञात मतवर्णन

दशम विश्राम सम्पूर्ण

इति अमरमूल ग्रन्थ समाप्त